स्वाध्याय स्वमन्थन स्वावलम्बन

उत्तर प्रदेश राजर्षि टण्डन मुक्त विश्वविद्यालय, प्रयागराज

उत्तर प्रदेश सरकार का एकमात्र मुक्त विश्वविद्यालय

।। सरस्वती नः सुभगा मयस्करत् ।।

MAAH-111 (N)

प्राचीन भारत का राजनीतिक इतिहास (550 ई. से 1200 ईस्वी तक)

Political History of Ancient India (550A.D. to 1200A.D.)

शान्तिपुरम् (सेक्टर-एफ), फाफामऊ, प्रयागराज - 211013

www.uprtou.ac.in

टोल फ्री नम्बर- 1800-120-111-333

कुलपति
उत्तर प्रदेश राजर्षि टण्डन मुक्त विश्वविद्यालय
प्रयागराज

सन्देश

प्रयागराज की पवित्र भूमि पर भारत रत्न राजर्षि पुरूषोत्तम दास टण्डन के नाम पर वर्ष 1999 में स्थापित उत्तर प्रदेश राजर्षि टण्डन मुक्त विश्वविद्यालय, प्रयागराज उ0प्र0 का एकमात्र मुक्त विश्वविद्यालय है। यह विश्वविद्यालय उ0प्र0 जैसे विशाल जनसंख्या वाले राज्य में उच्च शिक्षा के प्रत्येक आकांक्षी तक गुणात्मक तथा रोजगारपरक उच्च शिक्षा के अवसर उपलब्ध कराने में निरन्तर अग्रसर एवं प्रयत्नशील है। तत्कालीन देश की सामाजिक एवं आर्थिक परिस्थितियों में एक वैकल्पिक व नवाचारी शिक्षा व्यवस्था के रूप में भारत में मुक्त एवं दूरस्थ शिक्षा प्रणाली का पदार्पण हुआ था, परन्तु वर्तमान परिस्थितियों तथा तकनीकी का सार्थक प्रयोग करते हुये मुक्त एवं दूरस्थ शिक्षा आज की सर्वोत्तम पूरक शिक्षा व्यवस्था के रूप में स्थापित हो चुकी है।

वर्तमान शिक्षा प्रणाली के सामने व्याप्त पाँच मुख्य चुनौतियों - (i) पहुँच (Access), (ii) समानता (Equity), (iii) गुणवत्ता (Quality), (iv) वहनीयता (Affordability) तथा (v) जवाबदेही (Accountability) को केन्द्र में रखकर घोषित देश की राष्ट्रीय शिक्षा नीति (NEP-2020) के प्रस्तावों को क्रियान्वित करने में उत्तर प्रदेश राजर्षि टण्डन मुक्त विश्वविद्यालय कृत संकल्पित है। उ0प्र0 की माननीय राज्यपाल एवं कुलाधिपति श्रीमती आनंदीबेन पटेल जी की सद्इच्छाओं के अनुरूप उत्तर प्रदेश राजर्षि टण्डन मुक्त विश्वविद्यालय, शैक्षिक दायित्वों के साथ-साथ सामाजिक दायित्वों के निर्वहन में भी लगातार नवप्रयास कर रहा है। चाहे वह गाँवों को गोद लेकर उनके समग्र विकास का प्रयास हो या ग्रामीण महिलाओं, ट्रान्सजेन्डर व सजायाफ्ता कैदियों को शुल्क में छूट प्रदान कर उनमें आत्मविश्वास जागृति व उच्च शिक्षाा के प्रति अलख जगाने का प्रयास हो।

राष्ट्रीय विकास को बढ़ावाा देने के लिए शिक्षा एक मूलभूत जरूरत है। ज्ञान-विज्ञान एवं तकनीकी के क्षेत्रों में हो रहे तीव्र परिवर्तनों व वैश्विक स्तर पर रोजगार की परिस्थितियों में आ रहे परिवर्तनों के कारण भारतीय युवाओं को विभिन्न क्षेत्रों में गुणवत्तापूर्ण शैक्षिक अवसर उपलब्ध कराने पर ही भारत का भविष्य निर्भर करेगा। इसीलिए विभिन्न क्षेत्रों में सफलता हेतु शिक्षा को सर्वसुलभ, समावेशी तथा गुणवत्तापरक बनाना समसामयिक अपरिहार्य आवश्यकता है। कोविड-19 संक्रमण काल ने परम्परागत शिक्षा को और भी सीमित कर दिया है जबकि कोविड-19 के संक्रमण काल में तथा कोविड-19 के बाद भी मुक्त एवं दूरस्थ शिक्षा व्यवस्था ही एकमात्र पूरक एवं प्रभावी शिक्षा व्यवस्था के रूप में सार्थक सिद्ध हो रही है। ऐसी स्थिति में विश्वविद्यालय का दायित्व और भी बढ़ जाता है। इस दायित्व को एक चुनौती स्वीकार करते हुए विश्वविद्यालय ने प्राचीन तथा सनातन भारतीय ज्ञान, परम्परा तथा सांस्कृतिक दर्शन व मूल्यों की समृद्ध विरासत के आलोक में सभी के लिए समावेशी व समान गुणवत्तायुक्त शिक्षा सुनिश्चित करने तथा जीवन पर्यन्त शिक्षा के अवसरों को बढ़ावा देने के लिए अपने शैक्षिक कार्यक्रमों में प्रमाणपत्र, डिप्लोमा, परास्नातक डिप्लोमा, स्नातक, परास्नातक तथा शोध उपाधि के समसामयिक शैक्षिक कार्यक्रमों की संख्या तथा गुणात्मकता में वृद्धि की है।

शैक्षिक कार्यक्रमों में संख्यात्मक वृद्धि, गुणात्मक वृद्धि तथा रोजगारपरक बनाने के साथ-साथ प्रत्येक उच्च शिक्षा आकांक्षी तक पहुँच सुनिश्चित करने के लिए अध्ययन केन्द्रों व क्षेत्रीय केन्द्रों के विस्तार के साथ-साथ प्रवेश, परीक्षा, प्रशासन तथा परामर्श (शिक्षण) में आनलाइन व्यवस्थाओं को सुनिश्चित किया गया है। विश्वविद्यालय कार्यप्रणाली में पारदर्शिता तथा जवाबदेही सुनिश्चियन की दृष्टि से तकनीकी के प्रयोग को बढ़ायाा गया है। 'चुनौती मूल्यांकन' की व्यवस्था सुनिश्चित करने का कार्य किया गया है, तो शिक्षार्थी सहायता सेवाओं में भी वृद्धि की जा रही है। शिक्षार्थियों की समस्याओं के त्वरित निस्तारण हेतु शिकाायत निवारण प्रकोष्ठ को सुदृढ़ करने के साथ-साथ पुरातन छात्र परिषद को गतिशील किया गया है।

शोध और नवाचार के क्षेत्र में अग्रसर होते हुए विश्वविद्यालय अनुदान आयोग (UGC) नई दिल्ली तथा माननीय राज्यपाल एवं कुलाधिपति, उ0प्र0 की अनुमति से विश्वविद्यालय में शोध कार्यक्रम पुनः प्रारम्भ किया गया है तथा वर्ष पर्यन्त समसामयिक विषयों पर व्याख्यान, सेमिनार, बेबिनार तथा आनलाइन संगोष्ठियों आदि की श्रृंखला भी प्रारम्भ की गयी है। विभिन्न क्षेत्रों में रिसर्च प्रोजेक्ट सम्पादन पर भी ध्यान केन्द्रित किया गया है। पुस्तकालय को अत्याधुनिक तथा सुदृढ़ बनाने हेतु कदम उठाये गये हैं। शिक्षकों व कर्मचारियों के स्वास्थ्य तथा कल्याण की योजनायें क्रियान्वित की गयी है। वर्तमान की विषम परिस्थितियों के दृष्टिगत विश्वविद्यालय ने मुख्यमंत्री तथा प्रधानमंत्री राहत कोष में अंशदान देने का भी प्रयास किया है।

भौतिक अधिसंरचना की दृष्टि से विश्वविद्यालय निजी स्रोतों से ही निरन्तर आत्मनिर्भरता की ओर बढ़ा है। विश्वविद्यालय के शिक्षकों, परामर्शदाताओं, क्षेत्रीय समन्वयकगण, अध्ययन केन्द्र समन्वयकगण तथा कर्मचारियों की एकता व कर्मठता ही वह ऊर्जा पिण्ड है जिसके बल पर विश्वविद्यालय जीवंत व प्रकाशवान है। मुझे विश्वास है कि इसी ऊर्जा पिण्ड की सहायता से यह विश्वविद्यालय देश, प्रदेश तथा समाज को अपनी सेवाओं व योगदान प्रदान कर और अधिक समृद्ध, सुदृढ़ और गौरवशाली बनाने में अपनी भूमिका अदा कर सकेगा। मैं समस्त विश्वविद्यालय परिवार के प्रति आदर व आभार व्यक्त करती हूँ।

प्रो. सीमा सिंह
कुलपति

उत्तर प्रदेश राजर्षि
टण्डन मुक्त
विश्वविद्यालय, प्रयागराज

प्राचीन इतिहास एवं पुरातत्त्व

MAAH-111 (N)

प्राचीन भारत का राजनीतिक इतिहास
(550 ई. से 1200 ईस्वी तक)

Political History ofAncient India
(550A.D. to 1200A.D.)

पाठयक्रम

इकाई 1	: पूर्व मध्यकाल में उत्तर भारत की राजनीतिक दशा	3
इकाई 2	: पुष्यभूति वंश–प्रभारक रवर्धन, राज्यवर्धन एवं हर्षवर्धन	20
इकाई 3	: अरबों की सिन्ध–विजय	36
इकाई 4	: त्रिकोणात्मक संघर्ष–राष्ट्रकूट वंश, पाल साम्राज्य, गुर्जर–प्रतिहार साम्राज्य	47
इकाई 5	: पाल वंश–स्रोत एवं प्रारम्भिक इतिहास गोपाल, धर्मपाल एवं देवपाल	60
इकाई 6	: गुर्जर–प्रतिहार वंश–स्रोत एवं प्रारम्भिक इतिहास– नागभट्ट प्रथम, मिहिरभोज प्रथम	72
इकाई 7	: सुल्तान महमूद गजनवी का आक्रमण	87
इकाई 8	: गाहड़वाल वंश–स्रोत एवं प्रारम्भिक इतिहास– गोविन्दचन्द्र, विजयचन्द्र एवं जयचन्द्र	106
इकाई 9	: सेन वंश–स्रोत एवं प्रारम्भिक इतिहास–विजयसेन, बल्लालसेन एवं लक्ष्मणसेन के उत्तराधिकारी	118
इकाई 10	: कलचुरि वंश–स्रोत एवं प्रारम्भिक इतिहास– गांगेयदेव, विक्रमादित्य एवं कर्ण	129
इकाई 11	: परमार वंश–स्रोत एवं प्रारम्भिक इतिहास–मुंज एवं भोज	142
इकाई 12	: चन्देल वंश–स्रोत एवं प्रारम्भिक इतिहास– हर्ष, यशोवर्मा, धंग,गण्ड एवं विद्याधर	157
इकाई 13	: गुजरात का चौलुक्य वंश–स्रोत एवं प्रारम्भिक इतिहास–मूलराज, जयसिंह सिद्वराज एवं कुमारपाल	172
इकाई 14	: चाहमान वंश–स्रोत– सिंहराज, विग्रहराज चतुर्थ एवं पृथ्वीराज तृतीय	185
इकाई 15	कश्मीर के राजवंश–स्रोत–कल्हण की राजतरंगिणी– कार्कोट वंश, उत्पल वंश एवं लोहार वंश	200

MAAH-111 (N)

प्राचीन भारत का राजनीतिक इतिहास (550 ई. से 1200 ईस्वी तक)

Political History of Ancient India (550A.D. to 1200A.D.)

परामर्श समिति

प्रो.सीमा सिंह	कुलपति, उ.प्र.राजर्षि टण्डन मुक्त विश्वविद्यालय,प्रयागराज
कर्नल विनय कुमार	कुलसचिव, उ.प्र.राजर्षि टण्डन मुक्त विश्वविद्यालय,प्रयागराज

पाठयक्रम निर्माण समिति (अध्ययन बोर्ड)

प्रो.सन्तोषा कुमार	निदेशक, समाज विज्ञान विद्याशाखा, उ.प्र.राजर्षि टण्डन मुक्त विश्वविद्यालय,प्रयागराज
प्रो.जे.एन.पाल	पूर्व आचार्य, प्राचीन इतिहास संस्कृति एवं पुरातत्व विभाग, इलाहाबाद विश्वविद्यालय,प्रयागराज
प्रो.हर्ष कुमार	आचार्य, प्राचीन इतिहास संस्कृति एवं पुरातत्व विभाग, इलाहाबाद विश्वविद्यालय,प्रयागराज
प्रो.राजकुमार गुप्ता	आचार्य, प्राचीन इतिहास संस्कृति एवं पुरातत्व विभाग, प्रो.राजेन्द्र सिंह (रज्जू भैया) विश्वविद्यलय,प्रयागराज
डॉ.सुनील कुमार	सहायक आचार्य, प्राचीन इतिहास,समाज विज्ञान विद्याशाखा, उ.प्र.राजर्षि टण्डन मुक्त विश्वविद्यालय,प्रयागराज

लेखक	**इकाई**
डॉ. विनोद यादव	सहायक आचार्य, प्राचीन इतिहास राजकीय महाविद्यालय,मंगरौरा, प्रतापगढ़ (1,3, 5,6,7 इकाई)
डॉ.सुबास चन्द पाल	सहायक आचार्य, प्राचीन इतिहास(संविदा) समाज विज्ञान विद्याशाखा,उ.प्र.रा.ट.मु.वि.वि.,प्रयागराज (4,6,8,9,10,11,12,13,,14,15 इकाई)

सम्पादक

डॉ.जितेन्द्र सिंह नौलखा,	सह आचार्य, प्राचीन इतिहास संस्कृति एवं पुरातत्व विभाग, इलाहाबाद विश्वविद्यालय,प्रयागराज

पाठयक्रम समन्वयक

डॉ.सुनील कुमार	सहायक आचार्य, प्राचीन इतिहास, समाज विज्ञान विद्याशाखा, उ.प्र.राजर्षि टण्डन मुक्त विश्वविद्यालय, प्रयागराज

(c) **उत्तर प्रदेश राजर्षि टण्डन मुक्त विश्वविद्यालय, प्रयागराज**– **211021** **मुद्रित वर्ष**– जनवरी, 2024

ISBN : 978-81-19530-91-5

सर्वाधिकार सुरक्षित। इस साम्रगी के किसी भी अंश को उ.प्र.राजर्षि टण्डन मुक्त विश्वविद्यालय,प्रयागराज की लिखित अनुमति के बिना किसी भी रूप में मिमियोग्राफी (वक्रमुद्रण) द्वारा या अन्यथा पुनः प्रस्तुत करने की अनुमति नहीं है।

नोट : पाठय साम्रगी में मुद्रित साम्रगी के विचारों एवं आकड़ों आदि के प्रति विश्वविद्यालय, उत्तरदायी नहीं है।

प्रकाशन–उत्तर प्रदेश राजर्षि टण्डन मुक्त विश्वविद्यालय, प्रयागराज

प्रकाशक– कुलसचिव, कर्नल विनय कुमार उत्तर प्रदेश राजर्षि टण्डन मुक्त विश्वविद्यालय,प्रयागराज

मुद्रक– मेसर्स चन्द्रकला प्राइवेट लिमिटेड, 42/7 जवाहर लाल नेहरू रोड, प्रयागराज–211002

इकाई 1 पूर्व मध्यकाल में उत्तर भारत की राजनीतिक दशा

इकाई की रूपरेखा

1.0 प्रस्तावना

1.1 उद्देश्य

1.2 राजपूतों की उत्पत्ति

1.3 उत्तर भारत के महत्वपूर्ण राजवंश

1.3.1 कन्नौज का साम्राज्य

1.3.2 गुर्जर प्रतिहार वंश

1.3.3 गहड़वाल वंश

1.3.4 पाल एवं सेन वंश

1.3.5 चौहान या चाह्वान वंश

1.3.6 गुजरात का चालुक्य या सोलंकी वंश

1.3.7 हिन्दू शाही राज्य

1.3.8 चन्देल वंश

1.3.9 कश्मीर के राजवंश

1.3.10 मालवा का परमार वंश

1.3.11 कलचुरि चेदि वंश

1.3.12 मेवाड़ का राजवंश

1.3.13 अरबों और तुर्कों के भारत पर आक्रमण

1.4 सारांश

1.5 शब्दावली

1.6 बोध प्रश्न

1.7 सन्दर्भ ग्रन्थ

1.0 प्रस्तावना

'पूर्व मध्यकाल' शब्द प्राचीन काल तथा मध्य काल के अंतर्वर्ती काल का

सूचक है। भारतीय इतिहास में लगभग 650 ई0 से 1200 ई0 तक के समय को 'पूर्व मध्यकाल' कहा जाता है। पूर्व मध्यकालीन समाज में एक विशेष वर्ग का उदय हुआ, जिसे 'सामंत' कहा जाता है। यह समाज का सबसे शक्तिशाली वर्ग था। सम्राट हर्ष की मृत्यु के पश्चात उत्तर भारत छोटे– छोटे राज्यों में बँट चुका था। हर्ष के बाद उत्तर भारत में जिन शक्तियों का उदय हुआ, उन्हें राजपूत शासक की संज्ञा प्रदान की जाती है। पूर्व मध्यकाल में उत्तर भारत पर जिन राजपूत राजवंशों ने शासन किया उनके नाम इस प्रकार हैं, जैसे–गुर्जर प्रतिहार वंश, गहड़वाल वंश, पाल एवं सेनवंश, चौहान वंश, चालुक्य या सोलंकी वंश, हिन्दूशाही राज्य, चन्देल वंश, कश्मीर के राजवंश, मालवा का परमार वंश, कलचुरि चेदि वंश, मेवाड़ का राजवंश आदि। भारतीय इतिहास के इसी काल में भारत पर अरबों और तुर्को का आक्रमण हुआ और अंततः तुर्कों ने विजयश्री को प्राप्त किया। तुर्कों के विजय प्राप्त करने और उनकी सत्ता स्थापित होने के साथ ही पूर्व मध्यकाल की समाप्ति होती है और भारतीय इतिहास में मध्य काल की शुरुआत होती है।

1.1 उद्देश्य

प्रस्तुत इकाई में पूर्व मध्यकाल में उत्तर भारत की राजनीतिक दशा पर विस्तृत सामग्री उपलब्ध करायी गयी है, जिसके अध्ययन से शिक्षार्थी को उक्त काल में उत्तर भारत की राजनीतिक स्थिति को समझने में अवश्य ही सहायता मिलेगी। इस इकाई में उत्तर भारत में पूर्व मध्यकाल में शासन करने वाले राजवंशों का संक्षिप्त परिचय इस आशय के साथ प्रस्तुत किया गया है कि शिक्षार्थी उत्तर भारत की राजनीतिक दशा का समग्र रूप से अध्ययन कर सके।

1.2 राजपूतों की उत्पत्ति

'राजपूत' शब्द संस्कृत के 'राजपूत्र' शब्द से बना है। प्रारम्भ में 'राजपुत्र' शब्द का प्रयोग राजा के पुत्र राजकुमार के अर्थ में किया जाता था, जो बाद में सैनिकों तथा छोटे–छोटे जमीदारों के लिए किया जाने लगा। पूर्व मध्यकाल के उत्तरार्द्ध में 'राजपूत' शब्द शासक वर्ग के लिए पर्याय बन गया। राजपूतों की उत्पत्ति का प्रश्न विभिन्न विद्वानों के बीच विवाद का विषय रहा है। इस विषय में विभिन्न विद्वानों ने अपने अलग–अलग मत प्रस्तुत किए हैं। इस सम्बन्ध में मुख्य रूप से दो तरह के विचार प्रस्तुत किए जाते हैं। एक मत के अनुसार राजपूतों को विदेशी आक्रमणकारियों जैसे–शक, कुषाण, हूण आदि की सन्तान माना जाता है, जबकि इसके विपरीत कुछ विद्वान ऐसे हैं जो यह बताते हैं कि राजपूत प्राचीन भारतीय बाह्मण या क्षत्रिय कुलों से उत्पन्न हुए हैं।

राजपूतों की विदेशी उत्पत्ति का समर्थन करने वाले विद्वानों में कर्नल टॉड का नाम प्रमुखता से लिया जाता है। टॉड के अनुसार राजपूत विदेशी सीथियन जाति से उत्पन्न हुए हैं। कर्नल टॉड ने अपनी पुस्तक– 'ANNALSANDANTIQUITIES OF RAJASTHAN" में यह कहा है कि राजपूत शक, कुषाण और हूण आदि विदेशी लोगों से ही उत्पन्न हुए हैं और उन्हीं की सन्तान हैं। अपने मत के समर्थन में टॉड महोदय ने यह बताया है कि इन विदेशी आक्रमणकारियों और राजपूतों के रीति–रिवाज और सामाजिक–धार्मिक मान्यताओं में काफी समानता है, जैसे कि रहन–सहन और वेश–भूषा में समानता, घोड़े का महत्व, यज्ञों का प्रचलन, युद्ध देवता की उपासना, शस्त्र पूजा आदि। इन मान्यताओं और समानताओं के आधार पर उन्होंनें यह सिद्ध करने का प्रयास किया है कि राजपूतों की उत्पत्ति इन विदेशियों से ही हुई है।

कर्नल जेम्स टॉड के मत का समर्थन विलियम क्रुक ने भी किया है। क्रुक के अनुसार राजपूतों के अनेक गोत्रों की उत्पत्ति शक, कुषाण आक्रमणों और उससे भी ज्यादा श्वेत हूणों के आक्रमणों के कारण हुई है। इनके अनुसार गुर्जर जाति भी विदेशी थी जो हूणों के आक्रमण के समय भारत आयी, जिसने यहाँ के लोगों के साथ वैवाहिक सम्बन्ध स्थापित किए और उनसे विभिन्न राजपूत कुलों का जन्म हुआ। कालान्तर में इन्हीं राजपूत कुलों ने प्राचीन सूर्यवंशी और चन्द्रवंशी क्षत्रियों से अपना सम्बन्ध स्थापित कर लिया। डॉ0 स्मिथ भी राजपूतों की विदेशी उत्पत्ति के मत का समर्थन करते हैं। इनके अनुसार उत्तर–पश्चिमी भारत की राजपूत जातियों–प्रतिहार, परमार, चाह्मान और चालुक्य आदि की उत्पत्ति शक तथा हूणों से ही हुई है। डॉ0 ईश्वरी प्रसाद और डॉ0 भण्डारकर ने भी राजपूतों की विदेशी उत्पत्ति के मत का समर्थन किया है। इनका मानना है कि राजपूत निम्न क्षत्रिय कुलों के वंशज नहीं हैं। अपितु विभिन्न विदेशी आक्रमणकारियों को भारतीय समाज में सम्मिलित किए जाने के फलस्वरूप इनका आविर्भाव मालूम पड़ता है।

राजपूतों की उत्पत्ति के विदेशी मत का खण्डन कुछ भारतीय विद्वानों एवं इतिहासकारों ने किया है, जिनमें गौरीशंकर, हीराचन्द्र ओझा और सी0 वी0 वैद्य का नाम प्रमुख है। इन विद्वानों ने अपने मत के समर्थन में निम्नलिखित तर्क प्रस्तुत किए हैं।

1. कर्नल टॉड ने सीथियनों तथा राजपूतों के मध्य जो समानताएं बतायी हैं वह कल्पना पर आधारित है। ऐसी प्रथाएं भारत में पूर्व से ही प्रचलित थीं।
2. क्रुक के विचारों की पुष्टि किसी भी ऐतिहासिक प्रमाण से नहीं होती है।

3. चन्दबरदाई कृत पृथ्वीराजरासो में वर्णित अग्निकुल का सिद्धान्त ऐतिहासिक नहीं, बल्कि कल्पना पर आधारित लगता है।

वस्तुतः पृथ्वीराज चौहान के राजकवि चन्दबरदाई ने राजपूतों की उत्पत्ति के सम्बंध में एक रोचक अग्निकुण्ड का सिद्धान्त बताया है। उसके अनुसार जब परशुराम ने पृथ्वी से सभी क्षत्रियों का समूल नाश कर दिया तब धर्म की रक्षा तथा व्यवस्था आदि बनाए रखने के लिए वशिष्ठ ने राजस्थान स्थित आबू पर्वत पर एक यज्ञ किया, जिसके परिणाम स्वरूप चार योद्धा उत्पन्न हुए और उनके वंशज परमार, प्रतिहार, चौहान और चालुक्य कहलाए। इस कथा से पता चलता है कि भारतीयों ने विदेशी जाति के योद्धा लोगों को शुद्धिकरण द्वारा भारतीय वर्ण व्यवस्था में सम्मिलित किया होगा। इस मत से भी राजपूतों की विदेशी उत्पत्ति के मत को समर्थन मिलता है। पं0 गौरीशंकर ओझा ने भी अपने ग्रन्थ 'राजपूताना के इतिहास' में उपर्युक्त मत का खण्डन करते हुए लिखा है कि केवल कुछ समानताओं के आधार पर राजपूतों को विदेशी जाति का कहना समीचीन प्रतीत नहीं होता है। राजपूतों की भारतीय उत्पत्ति के मत का समर्थन करने वाले विद्वानों में डॉ0 आर. सी. मजूमदार तथा अन्य इतिहासकार यह मानते हैं कि अधिकांश राजपूत वंश कुछ प्राचीन क्षत्रिय या बाह्मण कुलों के वंशज हैं। जिन्होंने समय के साथ अपनी स्थिति मजबूत कर ली। इनका मानना है कि रीति–रिवाज, परम्पराओं और शारीरिक बनावट के आधार पर राजपूतों को विदेशी साबित करना न्याय नहीं है। यद्यपि कुछ विदेशियों को हिन्दूधर्म में दीक्षित कर उन्हें निम्न क्षत्रियों के रूप में मान्यता प्रदान की गयी, परन्तु यह प्रमाणित नहीं किया जा सकता कि सम्राट हर्ष की मृत्यु के पश्चात उत्तर भारत की शासन सत्ता निम्न कुल के क्षत्रियों के हाथ में कैसे चली गयी।

बाणभट्ट के ग्रंथ हर्षचरित तथा पुराण ग्रंथों में 'राजपुत्र' शब्द का प्रयोग राजा के पुत्रों के लिए किया गया है। संभव है कि यही राजपुत्र शब्द आगे विकृत होकर राजपूत बन गया और राजपुत्रों को ही 'राजपूत' कहा जाने लगा। कालान्तर में निम्न क्षत्रियों के रूप में मान्यता प्राप्त उत्तर–पश्चिम और पश्चिमी भारत के राजवंश, जो कि विदेशी थे, शासक वर्ग का होने के कारण वे भी अपने को राजपूत कहने लगे होगें और धीरे–धीरे राजपूत शब्द शासक वर्ग का पर्याय बन गया। डॉ. आर. सी. मजूमदार ने विभिन्न राजपूत कुलों की वंशावलियों के माध्यम से अपने मत को प्रमाणित करने का प्रयास किया है। उनके अनुसार मेवाड़ के गुहिल राजपूत वंश के संस्थापक बप्पा रावल को

ब्राह्मण कहा गया है। इसी प्रकार गुर्जर–प्रतिहार वंशका संस्थापक हरिश्चन्द्र भी ब्राह्मण ही था। चन्देलों की उत्पत्ति ऋषि चन्द्रात्रेय से बतायी जाती है। बादामी के चालुक्य क्षत्रिय थे तथा परमार वंश के लोग अपने को राष्ट्रकूटों का वंशज कहते हैं।

इस प्रकार उपर्युक्त तथ्यों के निरूपण से वर्तमान समय में राजपूतों की विदेशी उत्पत्ति के सिद्धान्त को स्वीकार नहीं किया जाता है। बल्कि यह माना जाने लगा है कि पूर्व मध्यकालीन उत्तर भारत में शासन करने वाले इन राजपूत कुलों में यद्यपि कि कुछ विदेशी भी थे जिन्हें हिन्दू धर्म में दीक्षित कर क्षत्रियों के रूप में स्थान दिया गया, लेकिन पूर्व मध्यकालीन उत्तर भारत में शासन करने वाले राजपूत वंश के अधिकांश लोग प्राचीन भारतीय ब्राह्मण कुल या क्षत्रिय कुलों के ही वंशज थे।

1.3 उत्तर भारत के महत्वपूर्ण राजवंश

सम्राट हर्ष की मृत्यु के फलस्वरूप उसके साम्राज्य का पतन हो गया और उसका स्थान छोटे–छोटे राज्यों ने ले लिया। हर्ष की मृत्यु के पश्चात् भी कन्नौज का महत्व बना रहा और यशोवर्मा ने कन्नौज का शासन प्राप्त किया। यशोवर्मा के समकालीन कश्मीर के शासक ललितादित्य ने सम्पूर्ण उत्तर भारत को जीतकर उसी आदर्श को स्थापित करने का प्रयास किया। 8वीं शताब्दी के मध्य में पश्चिमी भारत में गुर्जर– प्रतिहार, बंगाल में पाल और दक्षिण में राष्ट्रकूट वंश की शक्ति का उत्थान हुआ तथा इनमें से प्रत्येक ने कन्नौज में अपनी सत्ता स्थापित करने का प्रयास किया। हर्ष की मृत्यु के बाद भी कन्नौज जिसे 'महोदयश्री' के नाम से जाना जाता था, वैभव एवं शक्ति का केन्द्र बिन्दु बना रहा और उत्तर भारत के समस्त शासक उस पर अपना आधिपत्य स्थापित करने का प्रयास करते रहे। यही कारण है कि अरब लोग सिन्ध और मुल्तान पर अधिकार स्थापित कर लेने के बावजूद भारत के अन्दर प्रवेश करने में सफल नहीं हुए। लगभग 1000 ई0 के बाद भारत अपने आन्तरिक सामाजिक तनाव, नैतिक और धार्मिक पतन तथा राजनीतिक विकेन्द्रीकरण को रोकने में सफल नहीं हो सका और ऐसे में तुर्कों के आक्रमण हुए तथा यहाँ के शासक उनका मुकाबला नहीं कर सके। फलस्वरूप भारत में मुस्लिम सत्ता की स्थापना हो गयी। पूर्व मध्यकालीन उत्तर भारत में शासन करने वाले महत्वपूर्ण राजवंशों का संक्षिप्त विवरण नीचे प्रस्तुत किया जा रहा है–

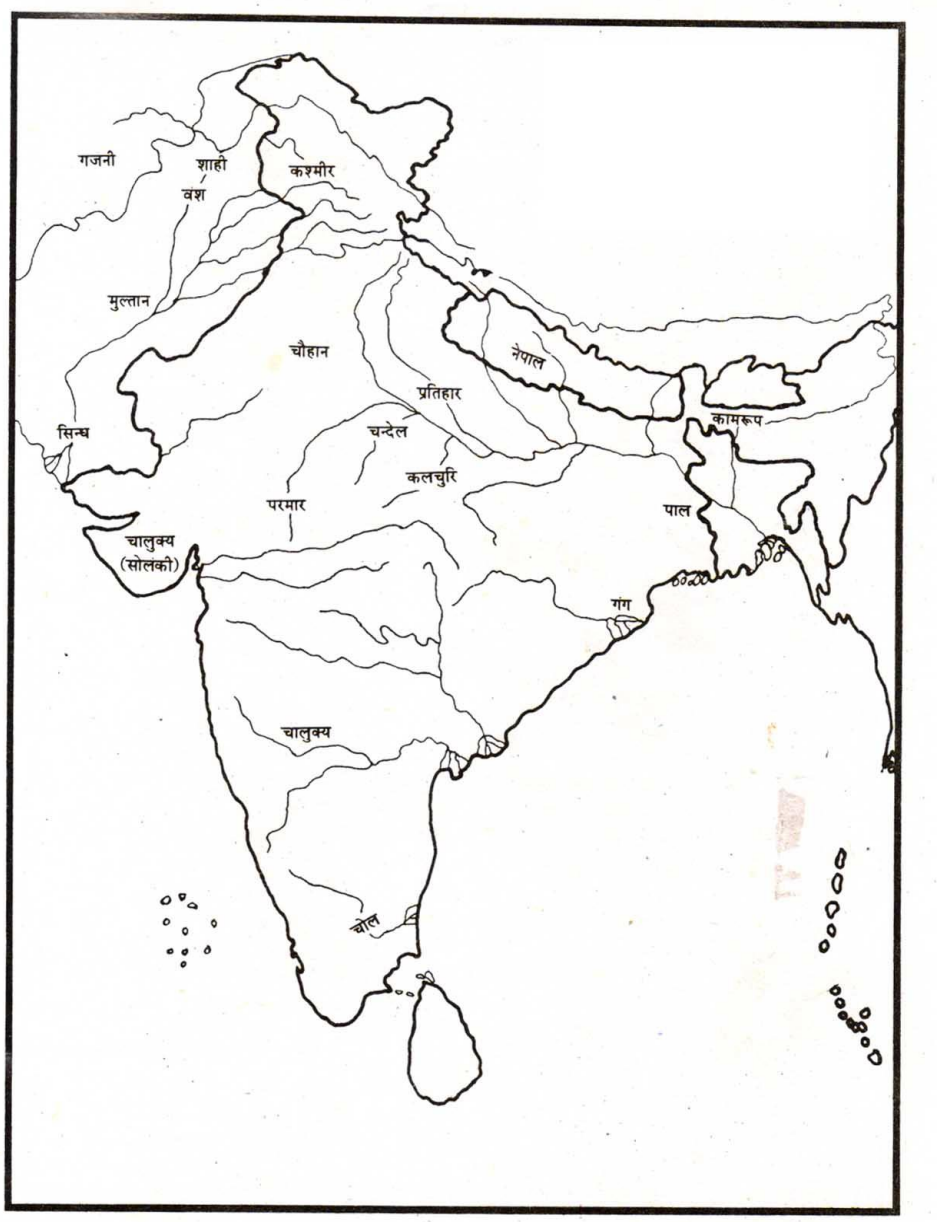

पूर्व मध्य कालीन भारत

1.3.1 कन्नौज का साम्राज्य

सम्राट हर्ष की मृत्यु के बाद यशोवर्मा (लगभग 690ई0 –740ई0) कन्नौज का शासक बना। यशोवर्मा के शासन काल की घटनाओं की जानकारी का प्रमुख स्रोत उसके दरबारी कवि वाक्पति का ग्रंथ 'गौडवहो' है। 'गौडवहो' प्राकृत भाषा का ग्रंथ है। जिसमें यशोवर्मा की विजयों का वर्णन किया गया है। इस ग्रंथ में यशोवर्मा की उपलब्धियों को अतिश्योक्ति पूर्ण ढंग से प्रस्तुत किया गया है। परन्तु इसके अध्ययन से ऐसा प्रतीत होता है कि निस्सन्देह वह एक

शक्तिशाली शासक था। यशोवर्मा ने मगध और बंगाल को जीत लिया। सिन्ध को विजित करने के पश्चात् अरबों ने कन्नौज की ओर एक सेना भेजी जिसे यशोवर्मा ने पराजित कर दिया। चालुक्य शासक विजयादित्य के अभिलेख से पता चलता है कि यशोवर्मा ने विजयादित्य के पिता विनयादित्य के साथ युद्ध किया था। कल्हण की पुस्तक राजतरंगिणी में यशोवर्मा और ललितादित्य के मध्य हुए लम्बे संघर्ष तथा यशोवर्मा की पराजय का उल्लेख है। इस पराजय के पश्चात् भी यशोवर्मा जीवित रहा, परन्तु उसकी शक्ति क्षीण हो चुकी थी। यशोवर्मा के पश्चात् उसके तीन उत्तराधिकारी शासक हुए, परन्तु उनका शासन अल्प समय तक रहा। कन्नौज के शासक यशोवर्मा का उत्थान जितनी तेजी से हुआ। उसी प्रकार से उसका पतन भी हो गया। उसकी उपलब्धियों को देखने से स्पष्ट पता चलता है। कि वह एक महान योद्धा और सम्राट था जिसने एक बड़ा साम्राज्य स्थापित कर कन्नौज को अपनी राजधानी बनाया। यशोवर्मा स्वयं विद्वान था और विद्वानों का आश्रयदाता भी था। वाक्पति के अतिरिक्त संस्कृत के महान कवि एवं नाटककार भवभूति उसके दरबार में निवास करते थे। भवभूति ने तीन प्रसिद्ध नाटक ग्रंथों मालतीमाधव, उत्तररामचरित और महावीरचरित की रचना की थी।

कन्नौज में यशोवर्मा के वंश के पश्चात् आयुध नामधारी शासकों का शासन स्थापित हो गया। इस वंश में कुल तीन शासक हुए– वज्रायुध, इन्द्रायुध और चक्रयुध। इनके समय पश्चिमी भारत में प्रतिहार, पूर्व में पाल और दक्षिण में राष्ट्रकूट वंश शक्तिशाली बन चुका था और इन सभी तीनों ने कन्नौज पर अपना शासन स्थापित करने का प्रयास किया। कन्नौज पर शासन स्थापित करने के लिए पाल, प्रतिहार और राष्ट्रकूट शासकों के मध्य जो संघर्ष हुआ, उसे त्रिपक्षीय अथवा त्रिकोणात्मक संघर्ष के रूप में जाना जाता है।

1.3.2 गुर्जर– प्रतिहार वंश

गुर्जर–प्रतिहार वंश का संस्थापक नागभट्ट प्रथम था, जिसने 730ई0 से 756ई0 तक शासन किया। ग्वालियर अभिलेख के अनुसार नागभट्ट प्रथम अरबों को सिन्ध से आगे बढ़ने से रोकने में सफल रहा। राष्ट्रकूट शासक दंतिदुर्ग के हाथों इसे पराजित होना पड़ा। नागभट्ट के उत्तराधिकारी कक्कुक तथा देवराज के बाद वत्सराज (775–800ई0) एक महत्वाकांक्षी शासक हुआ। वत्सराज ने राजस्थान का मध्य भाग तथा उत्तर भारत का पूर्वी भाग जीतकर अपने राज्य में मिला लिया। कन्नौज पर अधिकार स्थापित करने के क्रम में वत्सराज ने पाल वंश के शासक धर्मपाल को पराजित किया। परन्तु राष्ट्रकूट

शासक ध्रुव से पराजित हुआ। वत्सराज के पुत्र तथा उत्तराधिकारी नागभट्ट द्वितीय (800–833ई0) ने प्रतिहार वंश की शक्ति तथा प्रतिष्ठा को पुनःस्थापित किया। इसी वंश के शासक भोज के ग्वालियर लेख से पता चलता है कि नागभट्ट द्वितीय ने आन्ध्र, सिन्ध, विदर्भ तथा कलिंग के शासकों को पराजित कर उन पर अधिकार स्थापित कर करने के लिए चल रहे त्रिपक्षीय संघर्ष में उसने पाल शासक धर्मपाल के साथ युद्ध किया और मुंगेर के समीप हुए एक युद्ध में उसे पराजित किया। संभवतः चक्रायुध तथा धर्मपाल के आमंत्रण पर राष्ट्रकूट शासक गोविन्द तृतीय ने उत्तरी भारत का विजय अभियान शुरू किया और प्रतिहार शासक नागभट्ट द्वितीय को पराजित किया। राष्ट्रकूट शासक गोविन्द तृतीय के वापस चले जाने के पश्चात् पाल शासक धर्मपाल और देवपाल ने उत्तर भारत में अपनी स्थिति मजबूत कर ली। मालवा और गुजराज के प्रदेश नागभट्ट के अधिकार से निकल गए। नागभट्ट द्वितीय के बाद उसका पुत्र रामभद्र (833–836ई0) शासक हुआ। इसके बाद मिहिर भोज (836–885ई0) प्रतिहार वंश का महत्वपूर्ण शासक हुआ। मिहिर भोज के पश्चात् महेन्द्रपाल प्रथम (885–910ई0) और महीपाल (912–944ई0) शासक हुए। महीपाल के शासन के अंतिम वर्षो में प्रतिहार वंश की शक्ति दुर्बलता की ओर अग्रसर होनी आरम्भ हो गयी और धीरे–धीरे आगामी लगभग 100 वर्षों से कम समय में ही प्रतिहार साम्राज्य का पतन हो गया।

1.3.3 गहड़वाल वंश

प्रतिहार वंश के पतन और महमूद गजनवी के आक्रमण के कारण कन्नौज का वैभव नष्ट हो गया था। कन्नौज के वैभव तथा समृद्धि को वापस लाने का श्रेय गहड़वाल वंश के शासकों को दिया जाता है। इस वंश के पहले शासक चन्द्रदेव ने राष्ट्रकूट शासक गोपाल को पराजित कर कन्नौज और उसके आस–पास के क्षेत्र पर अपना आधिपत्य स्थापित कर लिया। चन्द्रदेव ने लगभग 1080–85ई0 से 1100 ई0 तक शासन किया। चन्द्रदेव के पुत्र तथा उत्तराधिकारी मदनचन्द्र अथवा मदनपाल के बारें में विशेष जानकारी उपलब्ध नहीं है। मदनचन्द्र का पुत्र तथा उत्तराधिकारी गोविन्दचन्द्र (1114–1154ई0) योग्य तथा महन्वाकांक्षी शासक सिद्ध हुआ। गोविन्दचन्द्र ने पालों से मगध को छीना तथा मालवा क्षेत्र पर अधिकार कर लिया। इसने कश्मीर के शासक जयसिंह सिंहराज तथा दक्षिण के चोल शासकों से मित्रता पूर्ण सम्बंध स्थापित किए। गोविन्दचन्द्र के पश्चात् विजयचन्द्र (1154–1170ई0) तथा जयचन्द्र (1170–1194ई0) इस वंश के महत्वपूर्ण शासक हुए। जयचन्द्र इस वंश का अंतिम शासक था, जिसे मुहम्मद गोरी के हाथों चन्दावर के युद्ध में पराजय

झेलनी पड़ी और इसके राज्य पर तुर्कों का अधिकार हो गया।

1.3.4 पाल एवं सेन वंश

सम्राट हर्ष के समकालीन शासक शशांक के पश्चात् बंगाल में पाल वंश का शासन आरम्भ हुआ। धीरे–धीरे इस वंश की गणना उत्तर भारत के एक प्रमुख और शक्तिशाली राजवंश के रूप में की जाने लगी। पाल वंश की स्थापना बौद्ध धर्म के अनुयायी गोपाल ने 750ई0 में किया था। जिसने 770ई0 तक शासन किया। गोपाल के बाद उसका पुत्र तथा उत्तराधिकारी धर्मपाल पाल वंश की गद्दी पर आसीन हुआ। धर्मपाल ने 770 ई0 से 810 ई0 तक राज्य किया और कन्नौज पर अधिकार स्थापित करने के लिए त्रिपक्षीय संघर्ष में भी भाग लिया तथा आंशिक सफलता भी प्राप्त की। धर्मपाल के बाद देवपाल (810–850 ई0) पाल वंश का शासक बना। देवपाल एक योग्य एवं महत्वाकांक्षी शासक सिद्ध हुआ। देवपाल के उत्तराधिकारी निर्बल साबित हुए, जिसके कारण उनके समय में पाल साम्राज्य पतन की और अग्रसर हो गया।

पालवंश के शासकों के पश्चात् बंगाल पर सेन वंश के शासकों का आधिपत्य रहा। इस वंश के शासक कर्नाटक के ब्राह्मण वंश से सम्बन्ध रखते थे, जो बाद में क्षत्रिय बन गए थे। इसी कारण इस वंश के शासक अपने को 'ब्रहमक्षत्रिय' कहते थे। इस वंश का संस्थापक सामन्तसेन नामक व्यक्ति था। इस वंश का प्रथम और महान शासक विजयसेन (1095–1158 ई0) हुआ। यह एक महत्वाकांक्षी और साहसी शासक था। जिसने एक छोटी सी जागीर को बंगाल के बड़े राज्य में परिवर्तित कर दिया। विजयसेन के पश्चात् बल्लालसेन (1158–1178 ई0) और लक्ष्मणसेन (1178–1205 ई0) सेन वंश के महत्वपूर्ण शासक हुए। लक्ष्मणसेन के समय में ही बंगाल पर बख्तियार खिलजी का आक्रमण हुआ और सेन वंश की राजधानी नदिया पर तुर्कों ने अधिकार का लिया। इस प्रकार सेन वंश अपने पतन की ओर अग्रसर हो गया।

1.3.5 चौहान या चाह्वान वंश

राजपूत राजवंश के शासकों में चौहान वंश का महत्वपूर्ण स्थान है। चौहान वंश की अनेक शाखाओं में से सातवीं शताब्दी ई0 में स्थापित शाकंभरी का चौहान वंश, जिसका संस्थापक वासुदेव था, विशेष ख्याति अर्जित किया। वासुदेव के बाद सामंत पूर्णतल, जयराज, विग्रहराज प्रथम, चन्द्रराज, गोपेन्द्रराज और दुर्लभराज प्रथम शासक हुए। आठवीं शताब्दी के अंतिम तीन दशकों में दुर्लभराज प्रथम प्रतिहारों का सामंत था। दुर्लभराज के उत्तराधिकारी

गोविन्दराज प्रथम ने प्रतिहार शासक नागभट्ट द्वितीय के दरबार में सम्मान प्राप्त किया। गोविन्दराज के पश्चात् क्रमशः चन्द्रराज द्वितीय, गूवक द्वितीय, चन्दन और वाक्पति राज ने कुछ समय तक शासन किया। दसवीं शताब्दी के प्रारम्भ में वाक्पतिराज प्रथम ने अपने को प्रतिहारों के आधिपत्य से मुक्त कर लिया। इसके पुत्र सिंहराज ने अपनी शक्ति का विस्तार किया और 'महाराजाधिराज' की उपाधि धारण किया। सिंहराज के पश्चात् इस वंश में विग्रहराज द्वितीय, दुर्लभराज द्वितीय, गोविन्दराज तृतीय, विग्रहराज तृतीय, पृथ्वीराज प्रथम और अजयराज आदि शासक हुए। अजयराज ने ही अजमेर नगर को बसाया था। अजयराज के बाद अर्णोराज शासक बना। अर्णोराज की हत्या उसके पुत्र जगदेव ने कर दी और शासक बन बैठा, परन्तु वह अधिक समय तक शासन नहीं कर सका। जगदेव के छोटे भाई विग्रहराज चतुर्थ 'वीसलदेव' ने उसे सिंहासन से उतार कर स्वयं चौहान वंश की बागडोर अपने हाथ में ले लिया। विग्रहराज चतुर्थ के पश्चात् उसका पुत्र अपरगांगेय शासक बना, परन्तु उसका शासन अल्पकालीन सिद्ध हुआ। इसके कुछ समय उपरान्त पृथ्वीराज तृतीय ने चौहान वंश की शासन सत्ता को संभाला, जिसे 'रायपिथौरा' की संज्ञा प्रदान की गयी है। यह चौहान वंश का अंतिम शक्तिशाली शासक था। मुहम्मद गोरी के साथ हुए 'तराइन के द्वितीय युद्ध (1192ई0) में पृथ्वीराज चौहान की पराजय हुई, तत्पश्चात उसके राज्य पर गोरी ने अधिकार कर लिया। इस प्रकार दिल्ली पर तुर्कों का अधिकार हो जाने के बाद चौहान वंश का भी पतन हो गया।

1.3.6 गुजरात का चालुक्य या सोलंकी वंश

चालुक्य वंश की अनेक शाखाओं गुजरात के चालुक्य वंश का विशेष महत्व है। इस वंश के आरम्भिक शासक मूलराज प्रथम (941–994 ई0) ने गुजरात के बड़े भाग को जीतकर'अन्हिलवाड़' को अपनी राजधानी बनाया। मूलराज के बाद उसका पुत्र चामुण्डराय शासक बना, परन्तु इसका शासन अल्प समय तक रहा और इसने अपने पुत्र बल्लभराज को सिंहासन सौंप दिया तथा खुद तीर्थयात्रा पर चला गया। बल्लभराज के पश्चात् दुर्लभराज राजा बना, परन्तु यह अधिक समय तक शासन न कर सका और अपने भतीजे भीमराज प्रथम के पक्ष में सिंहासन त्याग दिया। भीमराज प्रथम (1022–1064 ई0) के समय महमूद गजनवी ने सोमनाथ के मंदिर को लूटने के लिए आक्रमण किया। भीमराज प्रथम उसके आक्रमण से डरकर भाग खडा हुआ और महमूद गजनवी ने अपने अभियान में सफलता प्राप्त की। भीमराज के बाद उसका पुत्र कर्ण(1064–1094ई.) चालुक्य वंश की गद्दी पर आसीन हुआ।

कर्ण के पश्चात् जयसिंह सिद्धराज (1094–1145 ई0) इस वंश का महान शासक हुआ। इसने शाकम्भरी के चौहानों, मालवा के परमारों , बुन्देलखण्ड के चन्देलों तथा कल्याणी के चालुक्यों के साथ युद्ध किए तथा सभी में सफलताएं प्राप्त किया। इसके कुछ समय पश्चात् कुमार पाल (1145–1172 ई0)इस वंश का महत्वपूर्ण शासक बना। इसने अपने शत्रुओं को पराजित कर अपने राज्य की सीमाओं को सुरक्षित किया। कुमारपाल की मृत्यु के पश्चात् उसके भाई महीपाल का पुत्र अजयपाल (1172–1176 ई0) शासक बना, परन्तु कुछ समय पश्चात ही इसकी हत्या कर दी जाती है तथा इसका पुत्र मूलराज द्वितीय सिंहासन प्राप्त करता है। मूलराज द्वितीय ने 1178ई0 में आबू पर्वत के निकट मुहम्मद गोरी को पराजित किया था। 1178ई0 में ही मूलराज द्वितीय की मृत्यु हो गयी और उसका भाई भीमदेव द्वितीय (1178–1239ई0) सिंहासन पर आसीन हुआ। इसके समय में इसके राज्य पर तुर्कों ने आक्रमण किया परन्तु सफलता नहीं मिली। कालान्तर में गुजरात का राज्य भी दिल्ली सल्तनत का अंग बन गया।

1.3.7 हिन्दू भााही राज्य

काबुल घाटी तथा गांधार प्रदेश में लम्बे समय से एक तुर्की शाही वंश शासन कर रहा था। इस वंश के अंतिम शासक लगतूर्मा को उसका ब्राह्मण मन्त्री कल्लार सिंहासन से हटाकर स्वयं शासक बन बैठा और हिन्दूशाहीं राज्य की नींव डाली। इस प्रकार नौवीं शताब्दी के उत्तरार्द्ध में हिन्दूशाही वंश की स्थापना हुई। कल्लर ने तुर्कों के आक्रमण के भय के कारण अपनी राजधानी काबुल से हटाकर सिन्धु नदी के दाहिने तट पर स्थित 'उदभाण्डपुर' को राजधानी बनाया। कल्हण की राजतरंगिणी में कल्लर को उत्तर भारत का एक यशस्वी सम्राट कहा गया है। कल्लर के पश्चात श्रीसामन्त उसके बाद कमलुक या कमालू तत्पश्चात भीम शासक बनता है। 10वीं शताब्दी के अंतिम समय में जयपाल हिन्दू शाही राजवंश के सिंहासन पर आसीन हुआ। जयपाल एक कुशल शासक सिद्ध हुआ, इसका राज्य सरहिन्द से लेकर मुल्तान और कश्मीर तक फैला हुआ था, जिसमें पश्चिमी पंजाब, उत्तर–पश्चिम सीमाप्रान्त और पूर्वी अफगानिस्तान सम्मिलित था। हिन्दूशाही राजवंश के शासकों–जयपाल, आन्नदपाल, त्रिलोचनपाल और भीमपाल को महमूद गजनवी के साथ निरन्तर युद्ध करना पड़ा। परन्तु ये शासक तुर्कों के लगातार हो रहे आक्रमण को रोकने में असफल रहे और 11वीं शताब्दी के प्रथम चरण में महमूद गजनवी ने उनके राज्य को अपने राज्य में मिला लिया।

1.3.8 चन्देल वंश

प्रारम्भिक चन्देल शासक कन्नौज के प्रतिहार शासकों के सामन्त थे। 9वीं

शताब्दी के प्रारम्भ में नन्नुक ने चन्देल वंश की स्थापना की। नन्नुक के बाद वाक्पति तथा उसके बाद जयशक्ति अथवा 'जेजाक' चन्देल वंश के शासक बने। इसी के नाम पर चन्देल प्रदेश को जेजाकभुक्ति नाम से जाना जाने लगा। जयशक्ति के बाद उसका भाई विजयशक्ति राजा बना। चन्देल वंशी शासक हर्ष (900–925 ई0) के उत्तराधिकारी यशोवर्मन (925–950ई0) के समय चन्देल वंश की प्रतिष्ठा काफी बढ़ गयी थी। यशोवर्मन ने त्रिपुरी के कलचुरि राजा युवराज प्रथम तथा परमार राजा सीयक द्वितीय को पराजित कर अपने राज्य की सीमा चेदि तथा मालवा तक बढ़ा लिया। खजुराहो अभिलेख के अनुसार यशोवर्मन ने कश्मीर तक अपना विजय अभियान किया था। राजा धंग (950–1002ई0) यशोवर्मन का पुत्र तथा उत्तराधिकारी था। इसकी गणना महानतम शासकों में की जाती है। धंग ने हिन्दूशाही शासक जयपाल को सुबुक्तगीन के विरूद्ध सहायता भेजी थी। धंग के पश्चात उसका पुत्र गंड (1002–1019ई0) शासक हुआ। इसी के पुत्र विद्याधर ने कन्नौज के भगोड़े शासक राज्यपाल की हत्या कर दी थी। विद्याधर के पश्चात विजयपाल, कीर्तिवर्मा और मदनवर्मा शासक हुए। तत्पश्चात 1165ई0 में परमर्दिदेव चन्देलवंश का शासक बना, जिसे पृथ्वीराज चौहान ने युद्ध में पराजित किया था। इसके कुछ समय बाद कुतुबुद्दीन ने आक्रमण करके बुन्देलखण्ड के अधिकांश भाग पर अधिकार कर लिया।

1.3.9 कश्मीर के राजवंश

कश्मीर का राज्य झेलम और उसकी सहायक नदियों के मध्य पर्वतों की सुन्दर घाटियों के बीच स्थित था। यहाँ पर आठवीं शताब्दी के मध्य काल में कार्कोट वंश का शासक ललितादित्य मुक्तापीड़ शासन कर रहा था। इसके समय कश्मीर राज्य की बहुमुखी प्रगति हुई। ललितादित्य ने कन्नौज के शासक यशोवर्मन को पराजित करने के साथ ही काबुल तक की विजय प्राप्त करते हुए अपने साम्राज्य को मजबूत बनाया। उसके द्वारा निर्मित कश्मीर का मार्तण्ड मंदिर अत्यधिक प्रसिद्ध है। ललितादित्य के दो पुत्रों ने अल्प समय तक शासन किया। उसका प्रपौत्र जयपीड (779–810ई0) इस वंश का एक महत्वपूर्ण शासक हुआ। इसने मगध राज्य को विजित करने का असफल प्रयास किया।

9वीं शताब्दी के मध्य में कश्मीर पर उत्पल वंश का शासन प्रारम्भ हो गया। अवन्तिवर्मा (885–888ई) इस वंश का पहला शासक था। अवन्तिवर्मा के पश्चात शंकरवर्मा सिहासनारूढ़ हुआ। इस वंश का अंतिम शासक शूरवर्मा द्वितीय था 939ई0 में इसकी मृत्यु हो गयी। इसकी मृत्यु के पश्चात यशस्कर

राजा चुना गया। यशस्कर ने कुल 9 वर्षों तक शासन किया। इसके पुत्र तथा उत्तराधिकारी संग्रामदेव की हत्या उसके मंत्री पर्वगुप्त के द्वारा 949 ई0 में कर दी गयी। पर्वगुप्त के पश्चात उसका पुत्र क्षेमगुप्त (950–958 ई0) शासक बना। इसका विवाह लोहार वंश की राजकुमारी रानी दिद्दा से सम्पन्न हुआ। कश्मीर के इतिहास में रानी दिद्दा का नाम एक सफल शासिका के रूप में दर्ज है। अपनी मृत्यु से पूर्व दिद्दा ने अपने भांजे संग्रामराज को अपना उत्तराधिकारी नियुक्त कर दिया था। संग्रामराज ने हिन्दूशाही शासक त्रिलोचनपाल को महमूद गजनवी के विरूद्ध सहायता प्रदान की थी। 1021ई0 में महमूद गजनवी ने कश्मीर को जीतने का असफल प्रयास किया। संग्रामराज कश्मीर का एक योग्य एवं शक्तिशाली शासक था। इसके पश्चात एक के बाद एक अयोग्य शासक हुए, जिसके कारण कश्मीर का राज्य मुस्लिमों के अधिकार में चला गया।

1.3.10 मालवा का परमार वंश

राष्ट्रकूट राजवंश के सामंत रहे उपेन्द्र कृष्णराज ने अवसर पाकर 9वीं शताब्दी के आरम्भ में मालवा के परमार वंश की स्थापना की और धार को अपनी राजधानी बनाया। उपेन्द्र कृष्णराज के बाद वैरिसिंह, सीयक प्रथम, वाक्पति प्रथम तथा वैरिसिंह द्वितीय नाम के चार शासकों ने बारी–बारी से शासन किया, परन्तु इनके बारें में अधिक जानकारी नहीं मिलती है। इनके पश्चात हर्षसिंह सीयक (949–973 ई0) राजा बना। इसने प्रतिहारों की दुर्बलता का लाभ पाकर अपने साम्राज्य का विस्तार किया।

हर्ष सिंह के राज्य त्याग के उपरान्त उसका पुत्र तथा उत्तराधिकारी वाक्पति मुंज (973–998 ई0) राजा बना। मुंज एक महत्वाकांक्षी तथा शक्तिशाली शासक सिद्ध हुआ। उसने कलचुरि, हूण और चालुक्य शासकों के विरूद्ध युद्ध किया और सफलता अर्जित किया। मुंज अत्यन्त पराक्रमी, कुशल प्रशासक तथा विद्या प्रेमी शासक था। इसके समय परमार राज्य का चतुर्मुखी विकास हुआ। उसकी राजसभा में पद्मगुप्त, दशरूपक के लेखक धनन्जय आदि कवि एवं विद्वान विराजमान रहते थे। मुंज के पश्चात उसका भाई सिन्धुराज शासक बना, परन्तु वह अल्प कालीन शासक रहा। भोज परमार (1000–1055 ई0) इस वंश का महान शासक था। राजा बनने के पश्चात राजा भोज ने अनेक युद्व किया। भोज का चालुक्य शासक जयसिंह के साथ शत्रुतापूर्ण व्यवहार रहा। भोज ने हिन्दूशाही शासक आनन्दपाल को महमूद गजनवी के विरूद्ध सहायता प्रदान की। भोज ने अपने जीवनकाल में उत्तर भारत में हो रहे मुस्लिम आक्रमण का सफलता पूर्वक प्रतिरोध किया। भोज एक विद्वान शासक था, जिसने विभिन्न

विषयों पर कुल 23 ग्रंथों की रचना की थी। भोज के पश्चात जयसिंह प्रथम परमार वंश की गद्दी पर आसीन हुआ। जिसने मालवा पर कुछ वर्षों तक सफलतापूर्वक शासन किया। जयसिंह के बाद मालवा के परमार वंश में जो शासक हुए थ, वे अपेक्षाकृत अपने पूर्ववर्ती शासकों से निर्बल सिद्ध हुए, जिसके कारण धीरे–धीरे इस साम्राज्य का पतन हो गया और मालवा का राज्य दिल्ली सल्तनत का अंग बन गया।

1.3.11 कलचुरि चेदि वंश

कलचुरि के चेदि राजवंश का संस्थापक कोक्कल प्रथम (845–888ई0) था। कलचुरियों का राज्य चन्देल राजवंश के राज्य के दक्षिण में स्थित था। कोक्कल ने सिन्ध प्रदेश के अरबों की सेना को पराजित किया था। कोक्कल ने त्रिपुरी (म0 प्र0) को अपने साम्राज्य की राजधानी बनाया। गांगेयदेव (1019–1041ई0) कोक्कल द्वितीय का पुत्र तथा उत्तराधिकारी था। इसने अपने साम्राज्य को बाहरी आक्रमणकारियों से सुरक्षित रखा। गांगेयदेव का पुत्र लक्ष्मीकर्ण (1041–1072 ई0) उसका उत्तराधिकारी बना। लक्ष्मीकर्ण के राज्य में इलाहाबाद तक का प्रदेश सम्मिलित था। उसके राज्य की सीमाएं बंगाल तक विस्तृत थी। दक्षिण के चोल, पाण्डय आदि वंश के शासकों को उसने पराजित किया था। लक्ष्मीकर्ण के पश्चात इस वंश के उत्तराधिकारी दुर्बल सिद्ध हुए और कलचुरि राजवंश पर चन्देलों का अधिकार हो गया।

1.3.12 मेवाड़ का राजवंश

इस वंश के बारे में जानकारी का प्रमुख स्रोत 977ई0 का आटपुर का अभिलेख है, जिसमें मेवाड़ के गुहिल या सिसोदिया वंश के 20 राजाओं का उल्लेख मिलता है। परन्तु इस लेख में बप्पा रावल का उल्लेख नहीं मिलता है। बप्पारावल इस वंश का नौवां शासक था, जिसने अरबों को पराजित किया था। प्रतिहार राज्य की स्थापना के समय मेवाड़ के गुहिल शासकों ने प्रतिहारों की अधीनता स्वीकार कर ली। 1303 ई0 में अलाउद्दीन खिलजी के आक्रमण के समय राणा रतनसिंह यहाँ के शासक थे, जिनको पराजित कर अलाउद्दीन ने चित्तौड़ पर अधिकार कर लिया। सिसोदिया वंश के लोग इन्हीं गुहिल शासकों की एक शाखा से सम्बंधित थे। बाद के वर्षों में सिसोदिया वंश के शासकों ने भारतीय इतिहास में अपार ख्याति अर्जित किया।

1.3.13 अरबों और तुर्कों के भारत पर आक्रमण

सिन्ध प्रदेश को विजित करने के लिए अरब लोग काफी समय पहले से

ही प्रयासरत थे, परन्तु उनके प्रारम्भिक प्रयास असफल रहे। 712 ई0 में खलीफा वालिद के समय बसरा के सूबेदार हज्जाज ने मुहम्मद बिन कासिम के सेनापतित्व में एक शक्तिशाली सेना सिन्ध पर आक्रमण करने लिए गठित की। मुहम्मद बिन कासिम ने सिन्ध प्रदेश के राजा दाहिर पर आक्रमण किया। राजा दाहिर पराजित हुआ और युद्ध में वीरगति को प्राप्त हुआ। सिन्ध पर अरबों का अधिकार हो गया, परन्तु उनका राज्य अधिक दिनों तक कायम नहीं रह सका। कुछ समय पश्चात सिन्ध और मुल्तान के अरब प्रदेशों पर तुर्कों का अधिकार हो गया।

भारत पर तुर्कों का आक्रमण 11वीं शताब्दी के प्रारम्भिक वर्षों में ही शुरू हो गया था। सर्वप्रथम गजनी के तुर्की शासक सुबुक्तगीन ने हिन्दूशाही शासक जयपाल पर आक्रमण किया। इसके पश्चात महमूद गजनवी ने उसके इस कार्य में भरपूर सहयोग किया। 1000–1027 ई0 के बीच महमूद गजनवी ने भारत पर कुल 17बार आक्रमण किया, जिसमें अपार धन–सम्पदा प्राप्त कर अपने देश गजनी ले गया। महमूद गजनवी के आक्रमण का मुख्य उद्देश्य भारत से अधिक से अधिक धन–सम्पदा प्राप्त करना था। गजनवी के आक्रमणों के काफी समय बाद मुहम्मद गोरी ने भारत पर आक्रमण किया। अपने प्रारम्भिक आक्रमणों में वह गुजरात के शासक मूलराज द्वितीय और तराइन के प्रथम युद्व (1191ई0) में पृथ्वीराज चौहान से पराजित होने पर भी वह हार नहीं माना, बल्कि और अधिक शक्ति जुटाकर बाद के वर्षों में आक्रमण किया। तराइन के द्वितीय युद्ध 1192 ई0 में पृथ्वीराज चौहान को पराजित करने के एक वर्ष पश्चात् चन्दावर के युद्ध (1194ई0) में गहड़वाल शासक जयचन्द को बुरी तरह पराजित करने के पश्चात उनके राज्य पर अधिकार कर लिया और वहां के शासक मुहम्मद गोरी की अधीनता स्वीकार करने लगे। मुहम्मद गोरी के सेनानायक बख्तियार खिलजी ने बिहार और बंगाल तक आक्रमण किए। मुहम्मद गोरी के आक्रमणों का मुख्य उद्देश्य भारत में अपना राज्य स्थापित करना था। इसी वजह से अपने विजित प्रदेशों में उसने अपने सूबेदार नियुक्त किए थे। मुहम्मद गोरी की मृत्यु के पश्चात उसके गुलाम सेनानायक कुतुबुद्दीन ऐबक ने 1206 ई0 में भारत में तथाकथित गुलाम वंश की स्थापना की। इसी के साथ भारत में तुर्की साम्राज्य की स्थापना हो गयी और धीरे धीरे उत्तर भारत के अधिकांश राज्य इसी में सम्मिलित कर लिए गए।

1.4 सारांश

पूर्व मध्यकाल में उत्तर भारत में शासन करने वाले अधिकांश राजवंश

राजपूत राजवंश थे। राजपूतों की उत्पत्ति से सम्बंधित विभिन्न मतों का परीक्षण हम इस इकाई के प्रारम्भ में कर चुके हैं। राजपूतों की उत्पत्ति का प्रश्न पूर्व मध्यकाल में एक व्यापक ऐतिहासिक सन्दर्भ प्रस्तुत करता है। राजपूतों की उत्पत्ति विदेशियों, बाह्मणों, जनजातियों या वैदिक क्षत्रियों से होना स्वाभाविक जान पड़ती है। हर्ष की मृत्यु के उपरान्त गंगाघाटी और कन्नौज पर अधिकार स्थापित करने के प्रयत्नों के परिणाम स्वरूप पालों, प्रतिहारों और राष्ट्रकूटों के बीच जो त्रिपक्षीय संघर्ष आरम्भ हुआउसमें अंततः प्रतिहार शासकों को सफलता प्राप्त हुई। ये तीनों राजवंश उत्तर भारत के महत्वपूर्ण राजवंश थे। इनके बीच लम्बे समय तक चलने वाला यह संघर्ष इनकी दुर्बलता का कारण बना। दसवीं शताब्दी की शुरूआत तक ये सभी राजवंश आपसी संघर्ष एवं कलह के कारण निर्बल हो चुके थे। जिसके कारण विदेशी आक्रमणकारी भारत पर अपने अभियान में सफल रहे और पूर्व मध्यकाल के अंतिम समय में यहाँ पर मुस्लिम राज्य की स्थापना हो गयी।

1.5 शब्दावली

सामन्तः पूर्व मध्यकाल में समाज में एक विशेष वर्ग का उदय हुआ, जिसे सामन्त कहा जाता था। यह तत्कालीन समाज का सबसे शक्तिशाली वर्ग था। यह वर्ग शासकों की सैनिक सेवा के बदले भूमि तथा ग्रामों को अनुदान के रूप में प्राप्त करता था। सामन्तों को उच्च राजकीय पदों पर भी नियुक्त किया जाता था।

राजपूतः'राजपूत' शब्द संस्कृत भाषा के 'राजपुत्र' शब्द से बना है। प्रारम्भ में 'राजपुत्र' शब्द का प्रयोग राजा के पुत्र राजकुमार के अर्थ में किया जाता था, जो बाद में सैनिकों तथा छोटे–छोटे जमीदारों के लिए किया जाने लगा। बाद में यह राजपूत शब्द शासक वर्ग का पर्याय बन गया।

1.6 बोध प्रश्न

1. पूर्व मध्य काल में उत्तर भारत की राजनीतिक दशा का संक्षिप्त परिचय दीजिए ?
2. राजपूतों की उत्पत्ति से सम्बंधित विभिन्न मतों का परीक्षण कीजिए।
3. पूर्व मध्यकाल में हुए अरबों और तुर्कों (मुस्लिम) के आकम्रण के बारे में आप क्या जानते है। बताइए?

1.7 सन्दर्भ ग्रन्थ

- पाण्डेय, विमलचन्द्र, *प्राचीन भारत का राजनीतिक एवं सांस्कृतिक इतिहास,* सेन्ट्रल बुक डिपो, प्रयागराज।
- पाठक, विशुद्धानन्द, *उत्तर भारत का राजनीतिक इतिहास,* उत्तर प्रदेश हिन्दी संस्थान, लखनऊ।
- पाण्डेय, आर.एन., *प्राचीन भारत का राजनीतिक एवं सांस्कृतिक इतिहास,* इण्डिया बुक एजेंसी, प्रयागराज।
- श्रीवास्तव, के.सी., *प्राचीन भारत का इतिहास तथा संस्कृति,* यूनाईटेड बुक डिपो, प्रयागराज।
- सिंह, उपिन्दर, *प्राचीन एवं पूर्व मध्यकालीन भारत का इतिहास,* पियर्सन इण्डिया एजुकेशन सर्विसेज प्रा .लि. नई दिल्ली।

इकाई 2 पुष्यभूति वंश–प्रभाकरवर्धन,राज्यवर्धन एवं हर्षवर्धन

इकाई की रूपरेखा

2.0 प्रस्तावना

2.1 उद्देश्य

2.2 जानकारी के स्रोत/साधन

2.2.1 साहित्यिक साक्ष्य

2.2.2 विदेशी यात्रियों के विवरण

2.2.3 पुरातात्विक साधन

2.3 पुष्यभूति वंश

2.3.1 प्रभाकर वर्धन

2.3.2 राज्यवर्धन

2.3.3 हर्षवर्धन

2.3.4 हर्ष का शासन प्रबन्ध

2.3.5 हर्ष का मूल्यांकन

2.3.6 ह्वेनसांग का भारत विवरण

2.4 सारांश

2.5 शब्दावली

2.6 बोध प्रश्न

2.7 सन्दर्भ–ग्रन्थ

2.0 प्रस्तावना

गुप्त साम्राज्य के पतन के पश्चात उत्तर भारत में छोटे–छोटे राज्य स्थापित हो गए थे। प्रमुख राज्यों में परवर्ती गुप्त वंश, मौखरि वंश, मैत्रक वंश और पुष्यभूति वंश के वर्धन शासक सम्मिलित थे। यशोधर्मा ने कुछ समय के लिए मालवा में अपना शासन स्थापित कर लिया था। इन सभी शासकों की तुलना में पुष्यभूति वंश के शासक अपेक्षाकृत अधिक शक्तिशाली सिद्ध हुए। इस वंश के

प्रारम्भिक शासक मौखरि शासकों के अधीन राज्य करते थे , परन्तु कालान्तर में उन्होंने अपने आप को स्वतंत्र घोषित कर लिया। बाणभट्ट के अनुसार पुष्यभूतिवंश का संस्थापक पुष्यभूति नामक राजा था। इस वंश के आरम्भिक शासकों के बारे में जानकारी का अभाव है। परन्तु प्रभाकरवर्धन से लेकर हर्षवर्धन तक के शासकों के बारे में विस्तृत जानकारी प्राप्त होती है।

2.1 उद्देश्य

इस इकाई में प्राचीन भारत में शासन करने वाले पुष्यभूति वंश पर विस्तृत अध्ययन सामग्री प्रस्तुत की गयी है। इस इकाई के अध्ययन से आप जान सकेंगे –

- पुष्यभूति वंश के बारे में जानकारी के साधन क्या है ?
- पुष्यभूति वंश के महत्वपूर्ण शासकों–प्रभाकरवर्धन, राज्यवर्धन एवं हर्षवर्धन का भारत के प्राचीन इतिहास में महत्व एवं उनके योगदानों पर प्रकाश डाला गया है।

2.2 जानकारी के साधन

पुष्यभूति वंश के इतिहास की जानकारी हमें साहित्यिक, पुरातात्विक साधनों और विदेशी यात्रियों के विवरण तीनों ही स्रोतों से प्राप्त होती है, जिनका विवरण निम्नलिखित है–

2.2.1 साहित्यिक साक्ष्य

इस वंश की जानकारी प्रदान करने वाले साहित्यिक साक्ष्यों में हर्ष के दरबारी कवि बाणभट्ट द्वारा लिखित पुस्तक 'हर्षचरित' का विशेष महत्व है। हर्षचरित में कुल आठ अध्याय या खण्ड है। प्रथम तीन खण्डों में बाणभट्ट ने अपनी आत्मकथा लिखी है। चौथे खण्ड में प्रभाकरवर्धन से सम्बंधित घटनाओं का जिक्र किया गया है, जिसमें राज्यवर्धन, हर्षवर्धन, राज्यश्री के जन्म, बाल्यकाल तथा उसकी पुत्री राज्यश्री के मौखरि शासक ग्रहवर्मा के साथ विवाह का विवरण दिया गया है। पाँचवें खण्ड में सीमा प्रान्त में हूणों के आतंक, उन्हें दबाने के प्रयास तथा प्रभाकरवर्धन की मृत्यु का विवरण दर्ज है। इसी प्रकार छठे खण्ड में राज्यवर्धन के सन्यास ग्रहण करने की इच्छा, ग्रहवर्मा के हत्या की सूचना, राज्यवर्धन का मालवराज के विरूद्ध आक्रमण तथा मालवराज की पराजय तथा शशांक द्वारा राज्यवर्धन की हत्या की घटना का विवरण है। सातवें खण्ड में हर्ष के सैन्य अध्याय तथा मैत्री सम्बन्धों की चर्चा की गयी है। आठवें

और अंतिम अध्याय में हर्ष द्वारा राज्यश्री की खोज तथा उसको सैन्य शिविर में लेकर वापस आने का विवरण दिया गया है। इस घटना के साथ ही एकाएक हर्षचरित का विवरण समाप्त हो जाता है। इस प्रकार हम देखते हैं कि पुष्यभूति वंश के बारे में जानकारी प्राप्त करने के लिए हर्षचरित एक महत्वपूर्ण साहित्यिक स्रोत है। बाणभट्ट की ही एक अन्य पुस्तक 'कादम्बरी' है, जिससे हर्षकालीन सामाजिक तथा धार्मिक जीवन का ज्ञान प्राप्त किया जा सकता है।

'आर्यमंजूश्रीमूलकल्प' बौद्ध धर्म का एक प्रसिद्ध ग्रन्थ है। इस ग्रन्थ में कुल एक हजार श्लोक हैं। जिसमें सातवीं शताब्दी ई.से लेकर आठवीं शताब्दी ई0 तक के इतिहास का विवरण दर्ज है। अनेक विद्वानों का विचार है कि इसमें दी गई जानकारी सम्राट हर्ष के काल की है, हालांकि इस पर बहुत अधिक विश्वास नहीं किया जा सकता है। इसके अतिरिक्त सम्राट हर्ष ने स्वयं तीन नाटक ग्रन्थों–प्रियदर्शिका, रत्नावली तथा नागानन्द की रचना की है। इन ग्रंथों से भी हर्ष कालीन संस्कृति पर प्रकाश पडता है।

2.2.2 विदेशी यात्रियों के विवरण

प्रसिद्ध चीनी यात्री ह्वेनसांग सम्राट हर्ष के समय भारत की यात्रा पर आया था। उसने लगभग 16 वर्षों तक देश के विभिन्न भागों में भ्रमण किया, उसका यात्रा विवरण उसकी पुस्तक 'सी–यू–की' नाम से प्रसिद्ध है। यह पुस्तक हर्ष कालीन सामाजिक तथा राजनीतिक जीवन के बारे में जानकारी प्रदान करती है। साथ ही हुएनसांग के मित्र ह्विली ने हुएनसांग की जीवनी की रचना की थी। इससे भी हर्ष कालीन इतिहास के बारे में महत्वपूर्ण जानकारियाँ प्राप्त होती हैं। इसके अलावा इत्सिंग नामक एक अन्य चीनी यात्री का विवरण भी हर्षकालीन इतिहास की जानकारी प्राप्त करने के लिए उपयोगी है।

2.2.3 पुरातात्विक साधन

पुरातात्विक साधनों के अन्तर्गत अभिलेखों का महत्वपूर्ण स्थान है। पुष्यभूति वंश के इतिहास की जानकारी देने वाला एक प्रमुख अभिलेख बासखेड़ा का लेख है। यह लेख उत्तर प्रदेश के शाहजहाँपुर जिले में स्थित है, जिसमें हर्ष संवत 22 अर्थात 628 ई0 की तिथि अंकित है। इस लेख से पता चलता है कि हर्ष ने अहिछत्र भुक्ति के अंगदीया विषय के मर्कटसागर नामक ग्राम को बालचन्द्र तथा भट्टस्वामी नाम के दो भारद्वाज गोत्रीय ब्राह्मणों को दान में दिया था। साथ ही राज्यवर्धन द्वारा मालवा के शासक देवगुप्त पर विजय तथा गौड़ शासक शशांक के द्वारा राज्यवर्धन की हत्या की जानकारी प्राप्त होती है।

मधुवन का लेख उत्तर प्रदेश के मऊ जिले की घोसी तहसील में स्थित है। यहाँ से हर्ष संवत 25 का एक लेख मिला है, जो 631 ई0 का है। इस लेख में हर्ष द्वारा श्रावस्ती भुक्ति के सोमकुण्डा नामक ग्राम को दान में देने का विवरण है। इसके अलावा कर्नाटक राज्य में स्थित एहोल नामक स्थान से चालुक्य शासक पुलकेशिन द्वितीय का एक लेख मिला है, जिसकी तिथि 633–34 ई0 है। इसकी रचना पुलकेशिन के दरबारी कवि रविकीर्ति ने की है। यह लेख हर्ष एवं पुलकेशिन द्वितीय के बीच हुए युद्ध की जानकारी देता है और हर्ष की पराजय का उल्लेख करता है।

इसके साथ ही पुरातात्विक साधनों के अन्तर्गत मुहरों का विशेष स्थान है। हर्ष की दो मुहरें नालन्दा एवं हरियाणा के सोनीपत स्थान से प्राप्त हुई हैं। इन मुहरों पर हर्ष की वंशावली खुदी हुई है। फैजाबाद (अयोध्या) जिले से प्राप्त हर्ष के कुछ सिक्कों पर उसका एक अन्य नाम 'शीलादित्य' मिलता है। इस प्रकार पुरातात्विक साधन भी सम्राट हर्ष तथा उसके वंश के इतिहास की जानकारी प्रदान करने में महत्वपूर्ण भूमिका अदा करते हैं।

2.3 पुष्यभूति वंश/ वर्धन वंश

छठीं शताब्दी ई0 के प्रारम्भ में पुष्यभूति अथवा पुष्पभूति नामक राजा ने इस वंश की स्थापना की थी, जिसके कारण इस वंश का नाम पुष्यभूति वंश पड़ा। परन्तु सम्राट हर्ष के मधुवन एवं बांसखेड़ा अभिलेखों में उसकी वंशावली नरवर्धन से प्रारम्भ होती है। नरवर्धन ने यमुना की ऊपरी घाटी में एक छोटा सा राज्य स्थापित किया तथा थानेश्वर (आधुनिक हरियाणा राज्य के करनाल जिले का थानेसर नामक स्थान) को अपनी राजधानी बनाया। नरवर्धन की पत्नी का नाम वज्रिणी देवी ज्ञात होता है। नरवर्धन का पुत्र तथा उत्तराधिकारी राज्यवर्धन प्रथम था। राज्यवर्धन प्रथम का उत्तराधिकारी आदित्यवर्धन था, जिसका विवाह महासेनगुप्ता देवी के साथ सम्पन्न हुआ था, जो मालवा के उत्तर गुप्त शासक महासेनगुप्त की बहन थी। आदित्यवर्धन का उत्तराधिकारी प्रभाकर वर्धन हुआ। प्रभाकर वर्धन से पूर्व के तीनों शासक 'महाराज' की उपाधि धारण करते थे। जो उनकी सामन्त स्थिति की सूचना देती है। प्रभाकरवर्धन इस वंश का प्रथम ऐसा शासक था, जिसने इस वंश को सामन्त की स्थिति से स्वतंत्र स्थिति में पहुँचाया और 'महाराजाधिराज' जैसी सम्मानसूचक उपाधि धारण किया।

2.3.1 प्रभाकरवर्धन

पुष्यभूति वंश की स्वतंत्रता का जन्मदाता प्रभाकरवर्धन ही था, इसीलिए

इसे इस वंश का वास्तविक संस्थापक माना जाता है। अपनी श्रेष्ठता साबित करने तथा स्वतंत्र पहचान सूचित करने के लिए उसने 'परमभट्टारक' और 'महाराजाधिराज' जैसी उपाधियाँ धारण किया। हर्षचरित के अनुसार–'वह हूण रूपी हिरण के लिए सिंह, सिन्धु देश के राजा के लिए ज्वर, गुर्जरों को चैन से न सोने देने वाला, गान्धार रूपी मस्त हाथी के लिए तेज बुखार, लाट देश की चतुरायी का अन्त करने वाला, मालवा देश की लक्ष्मीरूपी लता को काट देने वाली कुल्हाड़ी के समान था। प्रभाकरवर्धन द्वारा किए गए इन युद्धों का विस्तृत विवरण तथा परिणाम आदि के बारे में जानकारी का अभाव है। परन्तु इतना तो कहा जा सकता है कि हूणों के साथ उसका युद्ध हुआ था। हर्षचरित से यह भी ज्ञात होता है कि प्रभाकरवर्धन ने अपने बड़े पुत्र राज्यवर्धन को हूणों से युद्ध करने के लिए उत्तरापथ की ओर भेजा था। राज्यवर्धन के नेतृत्व में हूणों को पराजित किया गया था। इसके अलावा प्रभाकरवर्धन ने सिन्ध तथा गान्धार प्रदेश को भी विजित किया था। प्रभाकरवर्धन की मृत्यु के समय उसके साम्राज्य में गान्धार, सिन्धु, गुर्जर, प्रदेश तथा मालवा राज्य सम्मिलित थे। उसके साम्राज्य का विस्तार पश्चिम में सिन्ध से लेकर दक्षिण की ओर नर्मदा नदी तक विस्तृत था।

प्रभाकरवर्धन की रानी यशोमती उसकी अग्रमहिषी (प्रधानरानी) थी। वह मालवा के शासक यशोधर्मन 'विक्रमादित्य' की पुत्री थी। यशोमती से प्रभाकरवर्धन के दो पुत्र–राज्यवर्धन तथा हर्षवर्धन तथा एक पुत्री राज्यश्री उत्पन्न हुई। प्रभाकरवर्धन ने अपनी पुत्री का विवाह कन्नौज के मौखरि शासक ग्रहवर्मा के साथ सम्पन्न किया, इससे मौखरि शासकों के साथ उसके अच्छे सम्बन्ध स्थापित हो गए। इसके साथ ही उत्तरगुप्त शासक महासेनगुप्त के साथ भी उसके अच्छे सम्बन्ध थे। लगभग 604 ई0 में प्रभाकरवर्धन की मृत्यु के पश्चात उसका ज्येष्ठ पुत्र राज्यवर्धन उसका उत्तराधिकारी बना।

2.3.2 राज्यवर्धन

राज्यवर्धन प्रभाकरवर्धन का बड़ा पुत्र तथा हर्ष का बड़ा भाई था। जिस समय प्रभाकरवर्धन की मृत्यु हुई राज्यवर्धन हूणों के विरूद्ध युद्ध करने के लिए उत्तर–पश्चिमी सीमा की ओर गया हुआ था। प्रभाकरवर्धन की मृत्यु से वह अत्यन्त दुःखी हुआ और राज्य छोडकर संन्यास ग्रहण करना चाहता था। परन्तु तत्कालीन परिस्थितियों/घटनाओं के कारण वह राज्यभार ग्रहण करने को तैयार हो गया। सिंहासन ग्रहण करने के पश्चात उसने शीघ्र ही दस हजार अश्वारोही सैनिकों की एक सेना तैयार किया और अपने ममेरे भाई भण्डि को साथ लेकर

मालवा के शासक को दण्ड देने के लिए निकल पड़ा। जिसने मौखरि शासक और उसके बहनोई ग्रहवर्मा की हत्या कर दी थी। मधुवन और बाँसखेड़ा के लेखों से ज्ञात होता है कि कन्नौज पर आक्रमण कर बडी आसानी पूर्वक राज्यवर्धन ने वहां के शासक देवगुप्त को मार दिया। परन्तु देवगुप्त के मित्र गौड़ नरेश शशांक ने धोखे से राज्यवर्धन हत्या कर दी और कुछ समय के लिए कन्नौज पर अधिकार कर लिया। अपने शासनकाल के प्रारम्भिक वर्ष 606 ई0 में ही राज्यवर्धन मारा गया। उसकी मृत्यु के पश्चात उसका छोटा भाई हर्षवर्धन सोलह वर्ष की अल्प आयु में थानेश्वर का सम्राट बना।

2.3.3 हर्षवर्धन

पुष्यभूति वंश के इतिहास में सम्राट हर्ष सबसे अधिक यशस्वी और प्रतापी शासक सिद्ध हुआ। सम्राट हर्ष का जन्म लगभग 591 ई0 में हुआ था। वह प्रभाकरवर्धन का छोटा पुत्र था। उसकी माता का नाम यशोमती था। सम्राट हर्ष के बचपन के दिन उसके ममेरे भाई भण्डि तथा मालव राज महासेनगुप्त के दोनों पुत्रों कुमारगुप्त और माधवगुप्त के साथ व्यतीत हुए। बड़े भाई राज्यवर्धन की मृत्यु के पश्चात पर्याप्त विचार विमर्श के बाद दरबारियों एवं मत्रियों के समूह ने 606 ई0 में सम्राट हर्ष को वहाँ का राजा बनाया। मात्र 16 वर्ष की अल्पायु में वह सिंहासन पर बैठा। राजा बनते ही हर्ष के सामने सबसे महत्वपूर्ण चुनौती अपने बड़े भाई राज्यवर्धन की हत्या का बदला लेने की थी। अपने इस उद्देश्य की पूर्ति के लिए वह एक विशाल सेना को लेकर कन्नौज की ओर आगे बढ़ा। अपने अभियान से पूर्व हर्ष ने अपने मंत्रियों के सन्मुख यह प्रतिज्ञा की थी कि 'यदि कुछ ही दिनों में धनुष चलाने की चपलता के घमण्ड में भरे हुए समस्त उद्धत राजाओं के पैरों को बेडियों की झंकार से पूर्ण करके पृथ्वी को गौड़ों से रहित न बना दूँ तो घी से धधकती हुई आग में पतंगे की तरह अपने आप को जला डालूँगा।' साथ ही अपने अधीन राजाओं एवं सामन्तों को युद्ध के तैयार रहने का सन्देश भिजवाया।

बाणभट्ट ने अपने ग्रंथ हर्षचरित में सम्राट हर्ष के विजय अभियानों का बड़ा ही रोचक वर्णन किया है। ह्वेनसांग के अनुसार हर्ष ने सम्राट बनने के पश्चात छः वर्षों में ही भारत के पाँच प्रदेशों को विजित कर लिया। कुछ विद्धान ह्वेनसांग के इस कथन को विश्वसनीय नहीं मानते हैं। संभवतः अपने शासन काल के प्रारम्भिक छः वर्षो में हर्ष को अनेक युद्ध करने पड़े थे और ज्यादातर में उसने सफलता हासिल की थी। हर्ष ने अपना पहला अभियान गौड़ शासक शशांक के विरूद्ध किया। अभियान के मार्ग में उससे कामरूप के शासक

भास्करवर्मा के एक दूत ने सम्पर्क किया और बताया कि उसके शासक भास्करवर्मा ने अपनी तरफ से एक सन्धि का प्रस्ताव रखा है। भास्कर वर्मा एवं शशांक परस्पर शत्रु थे, अतः हर्ष ने इसका लाभ उठाते हुए भास्करवर्मा से सन्धि कर ली। सन्धि के पश्चात सम्राट हर्ष को अपनी बहन राज्यश्री के विषय में सुनकर अत्यन्त दुःख हुआ और वह उसे ढूढ़ने के लिए निकल पड़ा। राज्यश्री को जंगल से वापस लाने के पश्चात हर्ष ने बंगाल शासक शशांक पर आक्रमण किया। उसके इस कार्य में भास्करवर्मा ने भी उसकी सहायता की थी। शशांक के विरूद्ध किए गए अपने प्रारम्भिक अभियानों में हर्ष को विशेष सफलता नहीं मिली। विभिन्न स्रोतों से प्रमाणित होता है कि 637 ई0 तक बंगाल के अधिकांश भाग तथा उड़ीसा के भूभाग पर शशांक का शासन चलता रहा। परन्तु शशांक की मृत्यु के पश्चात हर्ष और भास्करवर्मा ने बंगाल पर पुनः आक्रमण कर उसे अपने अधिकार में कर लिया। बंगाल पर अधिकार करने के पश्चात हर्ष ने मगध और उड़ीसा पर भी अपना अधिकार कर लिया। कन्नौज पर अधिकार कर लेने के पश्चात सम्राट हर्ष ने अपनी राजधानी थानेश्वर से कन्नौज को स्थानान्तरित कर दी।

पश्चिमी भारत में शासन करने वाले मालव, गुर्जर और गुजरात के शासक आरम्भ से ही पुष्यभूति वंश के शत्रु थे। अपने विजय अभियानों के क्रम में सम्राट हर्ष ने गुजरात के शासक ध्रुवसेन द्वितीय को पराजित किया परन्तु शीघ्र ही ध्रुवसेन ने अपनी स्थिति सुदृढ़ कर ली। इतिहासकारों का मानना है कि ध्रुवसेन द्वितीय ने सम्राट हर्ष की पुत्री से विवाह कर लिया और उनके बीच की शत्रुता समाप्त हो गयी। इस प्रकार गुजरात (वल्लभी) के शासकों के साथ हर्ष के मैत्री पूर्ण सम्बन्ध स्थापित हो गए।

हर्ष के साम्राज्य के दक्षिणी सीमा के पार चालुक्य शासक पुलकेशिन द्वितीय शासन कर रहा था। वह एक महत्वाकांक्षी शासक था। दोनों राज्यों की सीमाएं एक–दूसरे के साम्राज्य की सीमा को स्पर्श कर रही थीं। ऐसे में दोंनों महत्वकांक्षी शासकों के बीच संघर्ष अवश्यम्भावी हो गया। हर्ष एवं पुलकेशिन द्वितीय के बीच संघर्ष नर्मदा नदी के निकट किसी स्थान पर हुआ था। इस संघर्ष की तिथि को लेकर विद्वानों के बीच मतभेद है। परन्तु डॉ0 अल्तेकर का मत अधिक मान्य है, जिसके अनुसार यह युद्ध 630–634 ई0 के मध्य किसी समय हुआ था। पुलकेशिन द्वितीय के ऐहोल लेख के अनुसार इस युद्ध में हर्ष की पराजय हुई थी। ऐहोल अभिलेख में इस युद्ध का वर्णन इस प्रकार से किया गया है–'अपार ऐश्वर्य द्वारा पालित सामन्तों की मुकुट मणियों की आभा से आच्छादित हो रहे थे चरण कमल जिसके, युद्ध में हाथियों की सेना के मारे

जाने के कारण , जो भयानक दिखाई दे रहा था। ऐसे हर्ष के आनन्द (हर्ष) को उसने (पुलकेशिन) भय से विगलित कर दिया'–

अपरिमितविभूति स्फीति सामन्तसेना,

मुकुटमणि मयूरवाक्रान्त पादारविन्दः।

युधिपतित गजेन्द्रानीक वीभत्सभूतो,

भय विगलित हर्षो येन चाकारि हर्षः।।

–ऐहोल अभिलेख

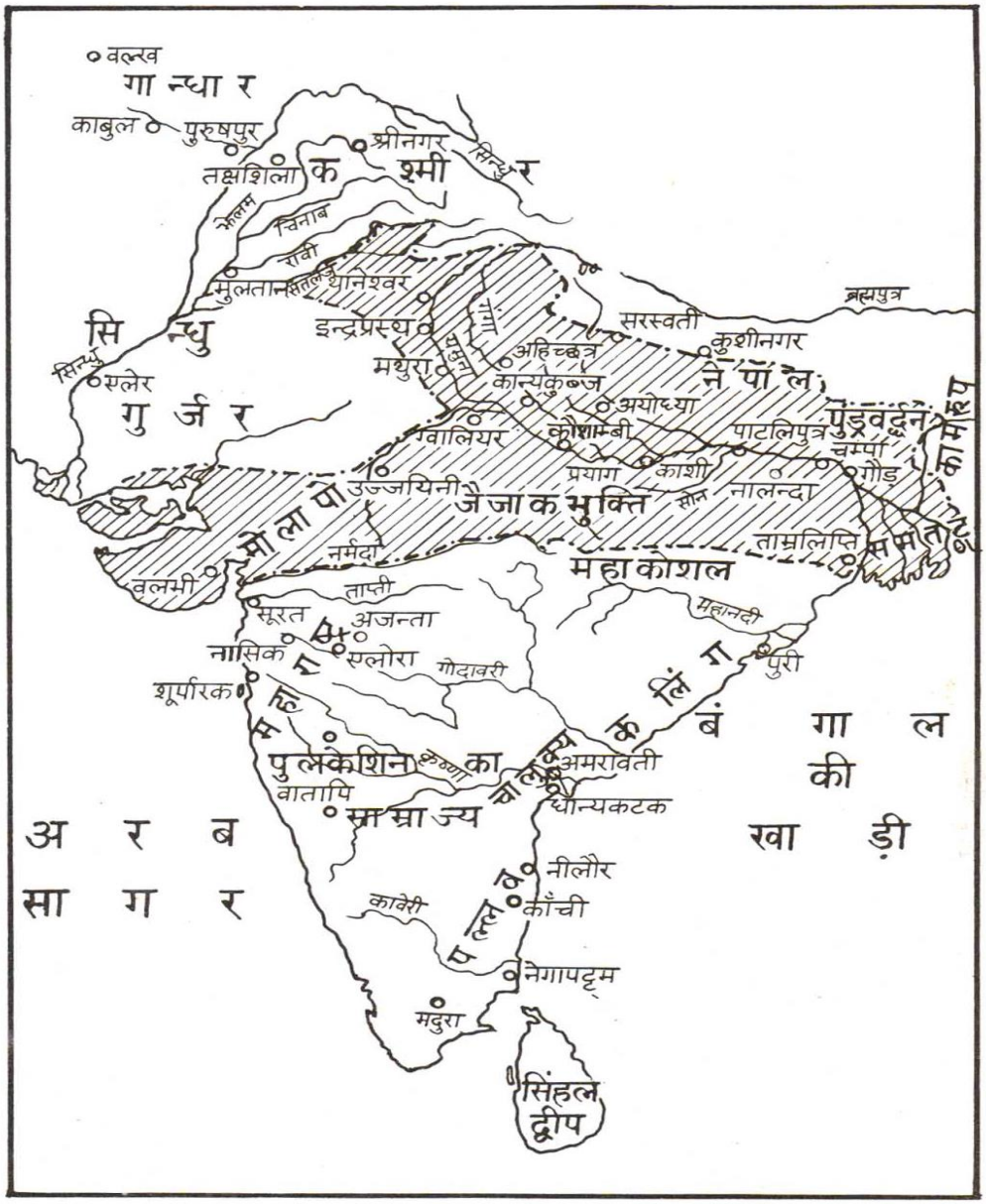

हर्ष का साम्राज्य विस्तार

सम्राट हर्ष का सिन्ध प्रदेश के राजा 'सिन्धुराज' के साथ भी युद्ध हुआ था। इसकी सूचना हमें बाणभट्ट के ग्रंथ 'हर्षचरित' से प्राप्त होती है, जिसके अनुसार हर्ष ने सिन्धुराज को युद्ध क्षेत्र में मर्दित करके उसकी राजलक्ष्मी को छीन लिया था। इससे स्पष्ट होता है कि सिन्धुराज पराजित तो हुआ था, परन्तु उसके राज्य पर अधिकार नहीं किया जा सका। ऐसा प्रतीत होता है कि सम्राट हर्ष उससे भेंट, उपहार आदि प्राप्त कर सन्तुष्ट हो गया। सिन्ध, कश्मीर और नेपाल आदि प्रदेशों पर हर्ष अपना अधिकार स्थापित नहीं कर सका। हालांकि इन क्षेत्रों पर उसका कुछ न कुछ प्रभाव अवश्य रहा होगा।

इस प्रकार स्पष्ट होता है कि सम्राट हर्ष ने उत्तर भारत में एक शक्तिशाली राज्य स्थापित कर लिया था। बाणभट्ट के हर्षचरित तथा ह्येनसांग के विवरणों से ज्ञात होता है कि सम्पूर्ण उत्तर भारत उसके साम्राज्य में सम्मिलित था। आर0 सी0 मजूमदार के अनुसार हर्ष के साम्राज्य में सम्पूर्ण उत्तर भारत के साथ ही पूर्वी पंजाब, गंगा–यमुना का दोआब, बिहार, उड़ीसा और पश्चिमी बंगाल तक के प्रदेश भी सम्मिलित थे।

2.3.4 हर्ष का भाासन प्रबन्ध

हर्ष की शासन व्यवस्था परम्परागत प्राचीन शासकों की शासन व्यवस्था पर आधारित थी, जिसमें राजा शासन का प्रमुख होता था। राज्य की सभी शक्तियाँ राजा में निहित होती थी। इसके साथ ही राजा सेना का सबसे बड़ा सेनापति भी होता था। हर्ष ने 'परमभट्टारक' और 'महाराजाधिराज' जैसी उपाधियाँ धारण की थी। इस समय राजा की दैवीय उत्पत्ति में विश्वास किया जाता था। सम्राट हर्ष परिश्रमी तथा कुशल शासक था। वह अपनी प्रजा की भलाई को अपना कर्तव्य मानता था।

राज्य से सम्बंधित कार्यों में राजा की सहायता के लिए एक मंत्रिपरिषद होती थी, जो अत्यधिक प्रभावशाली थी। वह आन्तरिक और वाह्य मामलों दोनों में अपना सुझाव देती थी। मंत्रियों के अतिरिक्त राज्य में अनेक पदाधिकारी मौजूद थे। बाणभट्ट की पुस्तक 'हर्षचरित' में इन पदाधिकारियों की एक लम्बी सूची मिलती है। प्रत्येक विभाग में छोटे एवं बड़े अनेक अधिकारी होते थे। सैनिक अधिकारियों के अतिरिक्त एक पद 'कुमारामात्य' का होता था। हर्ष का सेनापति 'सिंहनाद' था और 'कुन्तल' घुड़सवार सेना का प्रमुख था। गजसेना का प्रमुख 'स्कन्दगुप्त' था। वाह्य मामलों के अधिकारी को 'महासन्धिविग्रहाधिकृत' और सन्देश वाहकों को 'दीर्गाध्वज' कहते थे। अवन्ति नामक अधिकारी युद्ध और सन्धि का प्रमुख होता था, जिसकी सलाह पर महत्वपूर्ण निर्णय लिए जाते थे।

शासन संचालन की सुविधा के दृष्टिकोण से सम्पूर्ण राज्य को अनेक छोटी इकाईयों जैसे–भुक्ति (प्रान्त) विषय (जिला) और गाँवों में बाँटा गया था। सम्राट हर्ष के समय में एक पद 'सामन्त–महाराज' या 'महासामन्त' का भी होता था। यह पद संभवतः उन शासकों के लिए प्रयोग में लाया गया, जो राजा के अधीनस्थ थे, किन्तु अपने आन्तरिक शासन में स्वतंत्र थे। भुक्ति का प्रमुख 'उपरिक', विषय (जिले) का प्रमुख 'विषयपति', गाँव का प्रमुख 'ग्रामिक', कागजों की देख–रेख करने वाला 'पुस्तपाल' और लेखक को 'कर्णिक' कहा जाता था। सभी विभागों का निरीक्षण करने वाला पदाधिकारी 'सर्वाध्यक्ष' कहलाता था। इस प्रकार हम देखते हैं कि हर्ष के समय राज्य की इकाई और पदााधिकारी प्रायः गुप्त साम्राज्य की भाँति ही थे। हर्ष के समय में सभी बड़े प्रशासनिक अधिकारियों को वेतन के बदले जागीर के रूप में भूमि प्रदान की जाती थी। वेतन के बदले भूमि प्रदान किए जाने की इसी व्यवस्था के कारण हर्ष के शासन काल में सामन्तवादी प्रवृत्ति में वृद्धि हुई। ह्वेनसांग के विवरणों से ज्ञात होता है कि राज्य के मंत्रियों और बड़े अधिकारियों को उनका वेतन नगद न देकर उसके स्थान पर भूमि अथवा गाँव या नगर उनके नाम कर दिए जाते थे, जिनसे प्राप्त 'कर' उनकी आय होते थे। उसके अनुसार राजा की भूमि का 1/4 भाग बड़े अधिकारियों के लिए तथा अन्य 1/4 भाग राज्य के अन्य व्ययों और धार्मिक कार्यो पर खर्च के लिए सुरक्षित रखा जाता था।

राज्य की आय का प्रमुख साधन 'भू–राजस्व' था, जो पैदावार का 1/6 भाग होता था। यह राज्य के किसानों से अन्न के रूप में वसूला जाता था। इसके अतिरिक्त हिरण्य, बलि, चुंगी, बिक्री कर आदि अन्य कर थे। साथ ही भेंट–उपहार आदि से भी राज्य की आय होती थी। राज्य अपनी आय का अधिकांश भाग सेना एवं अन्य अधिकारियों के वेतन, राजा के महल तथा व्यक्तिगत खर्च, सार्वजनिक निर्माण कार्य तथा दान आदि पर व्यय करता था। सम्राट हर्ष ने अपने शासन के प्रत्येक पाँचवे वर्ष के उपरान्त प्रयागराज में धार्मिक उत्सव 'महामोक्षपरिषद्' का आयोजन करता था और इस अवसर पर वह अपने पाँच वर्षों में अर्जित की गयी सम्पूर्ण सम्पत्ति को दान कर देता था।

सम्राट हर्ष ने एक विशाल सेना तैयार कर रखी थी, जिसमें हाथी, घुड़सवार, रथ और पैदल सैनिक थे। ह्वेनसांग के अनुसार हर्ष की सेना की में 60,000 हाथी, 50,000 घुड़सवार और 1,00,000 पैदल सैनिक थे। ये चार प्रकार की सेना राज्य की सेना के मुख्य अंग थी। सेनापति हाथी पर बैठकर युद्ध करता था। घुड़सवार सेना का प्रमुख सेनापति 'वृहदश्वतार' और पैदल सेना के प्रमुख को 'बलाधिकृत' या 'महाबलाधिकृत' कहा जाता था। सम्पूर्ण सेना के

सेनापति को 'महासेनापति' कहा जाता था। राज्य का सर्वोच्च सेनापति स्वयं राजा होता था।

सम्राट हर्ष के समय 'न्याय व्यवस्था' अत्यधिक कठोर थी। अपराधियों को उनके द्वारा किए गए अपराध के लिए जुर्माने के साथ ही उनके नाक, कान, हाथ, पैर आदि को भी काटने का दण्ड दिया जाता था। अपराध का पता लगाने के लिए यातना का सहारा भी लिया जाता था। दण्डव्यवस्था कठोर होने के बावजूद राज्य में अपराध होते रहते थे। चीनी यात्री ह्वेनसांग को मार्ग में कई बार लूटा गया था। इससे अनुमान लगाया जा सकता है कि राज्य में चोरी–डकैती आम बात रही होगी तथा प्रमुख राजमार्ग भी सुरक्षित नहीं थे। हर्ष ने अपने पड़ोसी राज्यों के साथ मैत्रीपूर्ण सम्बन्ध बनाये रखने का प्रयास किया, साथ ही विदेशियों के साथ भी सम्बन्धों को बनाए रखा। हर्ष ने चीन के सम्राट के दरबार मे अपना राजदूत भेजा था तथा चीनी सम्राट ने भी 643 ई0 और 646 ई0 में अपने राजदूतों को भारत भेजा था।

इस प्रकार स्पष्ट होता है कि हर्ष एक सफल शासक था। सम्राट हर्ष ने अपने राजकोष से अत्यधिक दान दिया, सार्वजनिक निर्माण कार्य किए तथा दण्ड व्यवस्था को कठोर बनाए रखा। परन्तु यदि उसके शासन व्यवस्था की तुलना मौर्य और गुप्तवंश से की जाए तो वह कमतर सिद्ध होती है। हर्ष अपने राज्य में गुप्तों के समान शांति व्यवस्था कायम न रख सका और न ही मौर्यों की भाँति लोक–कल्याणकारी कार्य कर सका। इन सब के बावजूद सम्राट हर्ष के समय शासन प्रशासन अच्छा था। तथा आम जनता सुखी एवं सम्पन्न थी।

2.3.5 हर्ष का मूल्यांकन

सम्राट हर्ष के दरबारी कवि बाणभट्ट और चीनी यात्री ह्वेनसांग ने हर्ष की प्रशंसा करते हुए उसे उत्तर भारत का महान शासक बताया है। कुछ आधुनिक इतिहासकारों ने भी हर्ष की प्रशंसा में अनेक पंक्तियाँ लिखी है। उनके अनुसार 'हर्ष हिन्दू काल का अन्तिम महान साम्राज्य निर्माता था और उसकी मृत्यु के बाद उत्तर भारत की राजनैतिक एकता की पुनः स्थापना के सभी प्रयास समाप्त हो गए। परन्तु डॉ0 आर0 सी0 मजूमदार जैसे विद्वानों ने तर्क पूर्ण ढ़ंग से ऐसे विचारों का खण्डन किया है, साथ ही वह लिखते हैं कि हर्ष एक महान शासक, एक साहसी सेनापति, ललित कलाओं और विद्वानों का संरक्षक, विशेष व्यक्तित्व का धनी और सद्भावना वाला व्यक्ति था।

इस प्रकार हम देखते हैं कि हर्ष एक साहसी और नीतिज्ञ शासक था। उसे उत्तराधिकार में केवल एक छोटा सा राज्य प्राप्त हुआ था। उसके राज्य

सीमाएं सुरक्षित नहीं थी। ऐसी स्थिति में हर्ष ने अपने शत्रुओं को परास्त कर अपने राज्य की सीमा को सुरक्षित किया। उसने कन्नौज पर अधिकार कर उसे अपनी राजधानी बनाया। हर्ष ने कामरूप के शासक भास्करवर्मा के साथ संधि करके गौड नरेश शशांक को वापस जाने के लिए बाध्य किया। उसने पश्चिम में वल्लभी (गुजरात) के शासक के साथ संघर्ष किया और उससे विवाह सम्बन्ध स्थापित कर अपनी स्थिति को मजबूत किया। इस प्रकार सम्राट हर्ष ने उत्तर भारत के एक विस्तृत भू–भाग पर अपना अधिकार स्थापित कर लिया। इसके अलावा हर्ष को अपने शासन काल में पराजय भी झेलनी पडी। इस कारण कुछ विद्वान हर्ष को एक कुशल सेनापति नहीं मानते हैं। परन्तु अपने समकालीन भारतीय सम्राटों में हर्ष को एक प्रभावशाली एवं सम्मानित व्यक्ति के रूप में याद किया जाता है।

सम्राट हर्ष एक विद्वान एवं सहिष्णु शासक था। हर्ष के राज्य में प्रजा सुखी एवं सम्पन्न थी। हर्ष अपने साम्राज्य में भ्रमण कर देख–रेख करता रहता था तथा प्रत्येक पाँचवे वर्ष प्रयाग में 'महामोक्षपरिषद्' का आयोजन कर अपनी संचित धन–सम्पदा का दान कर दिया करता था। ह्वेनसांग के अनुसार हर्ष ने गाँवों और शहरों से होकर गुजरने वाले सभी राज मार्गों पर 'पुण्यशालाएं' बनवायी थी, जहाँ पर यात्रियों के मुफ्त ठहरने, खाने–पीने आदि की व्यवस्था रहती थी। बाणभट्ट ने हर्ष के लोकहितकारी कार्यों की भूरि–भूरि प्रशंसा की है। इससे हर्ष की योग्यता और उदारता दोनों पर प्रकाश पडता है। हर्ष स्वयं विद्वान था और उसने तीन नाटक ग्रंथों की रचना भी की है। उसने चीनीयात्री ह्वेनसांग को अपने दरबार में सम्मान दिया था। हर्ष धार्मिक दृष्टि से भी सहिष्णु था। प्रारम्भ में वह शिव का उपासक था। उसके मधुबन और बाँसखेडा के अभिलेखों में उसे 'परममहेश्वर' कहा गयाहै। संभवतः ऐसा माना जाता है कि ह्वेनसांग के प्रभाव से वह बौद्ध धर्म में दीक्षित हो गया। उसके बौद्ध धर्म में झुकाव के कारण बौद्ध धर्म के महायान सम्प्रदाय को एक नवीन जीवन मिला। हर्ष के संरक्षण को ही प्राप्त करके नालन्दा विश्वविद्यालय बौद्व धर्म की शिक्षा के एक प्रमुख केन्द्र के रूप में विख्यात हो सका।

इस प्रकार हर्ष एक योग्य एवं कुशल शासक था। उसे प्राचीन भारत के महान शासकों के बीच सम्मान जनक स्थान प्रदान किया जाता है। हर्ष ने अनेक सफलताएं अर्जित की, जिससे भारत में उसका एक स्थायी और महान शासन स्थापित हो सका। वह एक सद्चरित्र, उदार, सहिष्णु और महान दानी शासक था। परन्तु वह गुप्त शासकों की भाँति भावनात्मक और व्यावहारिक एकता स्थापित करने में सफल न हो सका, जिस कारण उसका साम्राज्य

चिरस्थायी न हो सका और उसका साम्राज्य उसकी मृत्यु के पश्चात समाप्त हो गया।

2.3.6 ह्वेनसांग का भारत विवरण

चीनी यात्री ह्वेनसांग 629 ई0 में सम्राट हर्ष के समय भारत देश की यात्रा पर आया। ह्वेनसांग ने अपनी भारत यात्रा का वर्णन अपनी पुस्तक 'सी–यू– की' (पश्चिमी संसार का विवरण) में किया है, जिससे हर्ष कालीन समाज एवं शासन व्यवस्था की पर्याप्त जानकारी मिलती है। ह्वेनसांग की भारत यात्रा का मुख्य उद्देश्य बौद्ध धर्म का ज्ञान प्राप्त करना था। 629 ई0 में वह चीन से गोबी के रेगिस्तान को पार करके मध्य एशिया में काशगर, समरकन्द और बल्ख होता हुआ अफगानिस्तान पहुँचा। उसके रास्ते में बहुत बड़ी संख्या में बौद्ध धर्मावलम्बी, बौद्ध मठ और स्तूप मिले। वह लगभग 14 वर्षो तक भारत में रहा। तक्षशिला से वह कश्मीर गया, कश्मीर से पंजाब, मथुरा,कन्नौज, श्रावस्ती, अयोध्या, कपिलवस्तु,कुशीनगर, सारनाथ, वैशाली, पाटलिपुत्र , राजगृह, बोधगया और नालन्दा गया। वह पाँच वर्ष तक नालन्दा विश्वविद्यालय में भी रहा। यहाँ के कुलपति आचार्य शीलभद्र थे। नालन्दा में उसने योगशास्त्र का अध्ययन किया। तत्पश्चात वह बंगाल, उडीसा, धान्यकटक होता हुआ दक्षिण भारत में पल्लवों की राजधानी काँचीवरम् तक गया और वहाँ से पुनः उत्तर की ओर लौट पड़ा। ह्वेनसांग ने कामरूप के शासक भास्कर वर्मा का आतिथ्य भी स्वीकार किया। इसके बाद उसकी मुलाकात सम्राट हर्ष से होती है। हर्ष ने अपनी राजधानी कन्नौज में एक धार्मिक सभा का आयोजन कर ह्वेनसांग को उसका अध्यक्ष बनाया। उसके बाद प्रयाग में आयोजित धार्मिक सभा में भी उसने भाग लिया। ह्वेनसांग भारत भ्रमण कर लगभग 644 ई0 में भारत से वापस चला गया। ह्वेनसांग भारत से बुद्ध की विभिन्न मूर्तियाँ, स्मारक–चिह्न और बौद्ध ग्रंथों की अनेक प्रतिलिपियाँ अपने साथ ले गया।

ह्वेनसांग अपने यात्रा विवरण में भारतीय नगरों का वर्णन करते हुए लिखता है कि नगरों में सभी प्रकार के मकान हैं, जिनकों निर्मित करने में लकड़ी, चूना, ईट और गोबर–मिट्टी का प्रयोग किया जाता है। निकृष्ठ कार्य करने वाले लोग नगर के बाहर रहते थे। पुराने नगरों का स्थान नवीन नगरों ने ले लिया है। प्राचीन पाटलिपुत्र का स्थान कन्नौज ने ले लिया है, इसके साथ ही प्रयाग एक अन्य महत्वपूर्ण नगर बन गया है। ह्वेनसांग ने कन्नौज नगर की अति प्रशंसा की हैं और इसे एक सुन्दर नगर बताया है। नगरों में रहने में रहने वाले नागरिकों के बारे में उसने लिखा है कि वे शिक्षा, साहित्य और ललित

कलाओं के प्रेमी हैं। भारतीय शिक्षा मौखिक पद्धति पर दी जाती थी, जो धार्मिक होती थी। इस समय संस्कृत भाषा में अनेक ग्रंथ लिखे गए। नालन्दा विश्वविद्यालय तत्कालीन भारत का एक महत्वपूर्ण बौद्ध शिक्षा केन्द्र था।

ह्वेनसांग ने सम्राट हर्ष तथ उसके शासन की अत्यधिक प्रशंसा किया है। उसने हर्ष को अधिक परिश्रमी शासक बताया है। उसके अनुसार हर्ष समय समय पर अपने राज्य का भ्रमण करके प्रजा की भलाई का समाचार प्राप्त करता था। वह अपनी आय का 2/3 भाग धन धार्मिक कार्यों पर खर्च करता था। हर्ष के शासन में विद्रोह बहुत कम होते थे, फिर भी अपराध करने वालों को कठोर दण्ड दिया जाता था। मृत्यु दण्ड तथा देश निष्कासन की भी सजा दी जाती थी। प्रजा से अधिक कर नहीं वसूला जाता था। शासन प्रशासन के प्रत्येक कार्य का विवरण लिखित में रखा जाता था। राज्य की आय का प्रमुख साधन भू–राजस्व था, जो उपज का 1/6 भाग होता था। ह्वेनसांग के अनुसार हर्ष की सेना में 60,000 हाथी, 1,00,000 घुड़सवार और 50,000 पैदल सैनिक थे। हर्ष को उसने बौद्ध धर्म का कट्टर समर्थक कहा है। ह्वेनसांग ने यहां की तत्कालीन सामाजिक दशा का विस्तृत वर्णन किया है। इसके अनुसार जाति व्यवस्था कठोर हो गयी थी। स्त्रियाँ भी शिक्षा प्राप्त कर सकती थीं। उनमें पर्दा प्रथा का अभाव था। समाज में सतीप्रथा प्रचलित थी। आम जन का जीवन सादा तथा सरल था। प्रायः लोग सात्विक भोजन किया करते थे।

ह्वेनसांग ने भारत की आर्थिक दशा का भी वर्णन किया है, उसने अपने विवरण मे अनेक फसलों की सूची दी है। भारत में अच्छे से अच्छा रेशमी सूती एवं ऊनी वस्त्र बनाया जाता था। आभूषणों के अन्तर्गत मोती, माणिक और हीरों का प्रयोग किया जाता था। भारत के पूर्वी और पश्चिमी तट पर अनेक बन्दरगाह थे, जिनसे यहाँ का विदेशी व्यापार सम्पन्न होता था। यहाँसे विदेशों में कपड़ा, चन्दन, जडी, बूटी, गर्म मसाले, मोती, और हाथीदाँत की बनी हुई वस्तुओं का निर्यात किया जाता था तथा विदेशों से सोना, चाँदी, हींग, और घोडों का आयात किया जाता था। अतः स्पष्ट होता है कि तत्कालीन समय में भारत आर्थिक दृष्टि से सम्पन्न था।

ह्वेनसांग ने भारत की धार्मिक मान्यताओं का भी वर्णन किया है उसके अनुसार भारत में ब्राह्मण, बौद्ध और जैन तीनों धर्म लोकप्रिय हैं। कोई भी व्यक्ति स्वेच्छा से धर्म परिवर्तन कर सकता था। उसके द्वारा किए गए नगरों के वर्णन से स्पष्ट होता है कि बौद्ध धर्म पतन की ओर अग्रसर था और ब्राह्मण धर्म प्रगति के पथ पर था। हर्ष द्वारा कन्नौज और प्रयाग में आयोजित धर्म सभाओं का वर्णन ह्वेनसांग ने अपनी पुस्तक 'सी–यू–की' में किया है।

इस प्रकार ह्वेनसांग के विवरण से भारत की राजनीतिक, प्रशासनिक, आर्थिक–सामाजिक और धार्मिक स्थिति पर महत्वपूर्ण प्रकाश पड़ता है। तत्कालीन भारत का इतना विस्तृत वर्णन किसी अन्य स्रोत से प्राप्त नहीं होता है। इस कारण से ह्वेनसांग का विवरण अत्यंत उपयोगी सिद्ध होता है।

2.4 सारांश

इस प्रकार हम देखते हैं कि हर्ष के साम्राज्य में सम्पूर्ण उत्तर भारत का क्षेत्र सम्मिलित था। उसका साम्राज्य उत्तर में हिमालय से लेकर दक्षिण में नर्मदा नदी तक और पश्चिम में सुराष्ट्र तथा काठियावाड़ (गुजरात) से पूर्व में ब्रह्मपुत्र नदी तक विस्तृत था। चालुक्यों के अभिलेखों में उसे 'सकलोत्तरपथनाथ' कहा गया है। हर्ष का प्रभाव उसके राज्य क्षेत्र से अधिक विस्तृत था। विदेशों के साथ भी उसने मैत्री सम्बन्ध स्थापित किए। हर्ष ने अपनी मृत्युपर्यंत 647 ई0 तक शासन किया। चूँकि हर्ष का कोई उत्तराधिकारी न होने के कारण उत्तर भारत में राजनीतिक विकेन्द्रीकरण एवं विभाजन की शक्तियाँ पुनः सक्रिय हो गयीं। उसकी राजधानी कन्नौज पर अर्जुन नामक एक स्थानीय शासक ने अधिकार कर लिया। कामरूप में भास्करवर्मा ने कर्णसुवर्ण तथा उसके आस–पास के क्षेत्रों को जीतकर अपना राज्य स्थापित कर लिया। मगध पर हर्ष के सामन्त माधवगुप्त के पुत्र आदित्यसेन ने अधिकार कर लिया। भारत के पश्चिमी तथा उत्तर–पश्चिमी भाग पर अनेक स्वतंत्र राज्यों की स्थापना हो गयी। सामान्यतः हर्ष की मृत्यु के पश्चात का समय उत्तर भारत में पारस्परिक संघर्ष का काल था। कन्नौज राजनीतिक गतिविधियों का केन्द्र बिन्दू बन गया, जिस पर अधिकार करने के लिए तीन प्रमुख शक्तियों के बीच आपसी संघर्ष प्रारम्भ हो गया, जिसे त्रिपक्षीय संघर्ष के नाम से जाना जाता है।

2.5 शब्दावली

महोदयश्री :सम्राट हर्ष की राजधानी कन्नौज को तत्कालीन समय में एक अन्य नाम 'महोदयश्री' के नाम से भी जाना जाता था। अर्थात वर्तमान कन्नौज को प्राचीन काल में 'महोदयश्री' कहा जाता था।

सकलोत्तरपथनाथ : इसका आशय सम्पूर्ण उत्तर का स्वामी होता है। इस शब्द का प्रयोग चालुक्य लेखों में सम्राट हर्ष के लिए किया गया है। इसे हर्ष की एक उपाधि के रूप में जाना जा सकता है।

2.6 बोध प्रश्न

1. सम्राट हर्ष के प्रारम्भिक जीवन एवं उसकी सैनिक उपलब्धियों का वर्णन कीजिए?
2. हर्ष प्राचीन भारत का अन्तिम साम्राज्य निर्माता था। इस कथन के आलोक में हर्ष का मूल्यांकन कीजिए?
3. ह्वेनसांग कौन था? उसके भारत सम्बन्धी विवरण पर प्रकाश डलिए?

2.7 सन्दर्भ ग्रन्थ

- पाण्डेय, विमलचन्द्र, *प्राचीन भारत का राजनीतिक एवं सांस्कृतिक इतिहास,* सेन्ट्रल बुक डिपो, प्रयागराज।
- पाठक, विशुद्धानन्द, *उत्तर भारत का राजनीतिक इतिहास,* उत्तर प्रदेश हिन्दी संस्थान, लखनऊ।
- पाण्डेय, आर.एन., *प्राचीन भारत का राजनीतिक एवं सांस्कृतिक इतिहास,* इण्डिया बुक एजेंसी, प्रयागराज।
- श्रीवास्तव, के.सी., *प्राचीन भारत का इतिहास तथा संस्कृति,* यूनाईटेड बुक डिपो, प्रयागराज।
- सिंह, उपिन्दर, *प्राचीन एवं पूर्व मध्यकालीन भारत का इतिहास,* पियर्सन इण्डिया एजुकेशन सर्विसेज प्रा .लि. नई दिल्ली।

इकाई 3 अरबों की सिन्ध विजय

इकाई की रूपरेखा

3.0 प्रस्तावना

3.1 उद्देश्य

3.2 तत्कालीन भारत की राजनीतिक स्थिति

3.3 अरबों का सिन्ध पर आक्रमण

3.3.1 अरब आक्रमण के कारण

3.3.2 अरबों की सफलता के कारण

3.3.3 अरब आक्रमण का प्रभाव

3.4 सारांश

3.5 शब्दावली

3.6 बोध प्रश्न

3.7 सन्दर्भ ग्रन्थ

3.0 प्रस्तावना

इस्लाम धर्म का उद्भव विश्व के इतिहास के लिए एक महत्वपूर्ण घटना है। अरब देश में इसकी उत्पत्ति के बाद अरबों, ईरानियों और तुर्कों ने इसके प्रसार के लिए महत्वपूर्ण भूमिका का निर्वहन किया। तलवार की शक्ति के बल पर महज 100 वर्ष से भी कम समय में इसका प्रसार पश्चिम में एटलाण्टिक समुद्र से पूर्व में सिन्धु नदी तक और उत्तर में कैस्पियन सागर से दक्षिण में नील नदी की घाटी तक हो गया। विभिन्न छोटी – छोटी शक्तियों के साथ ही अनेक बडी शक्तियाँ और प्राचीन धर्म भी इस्लाम की बढती हुई शक्ति के आगे झुकते चले गए। यूरोप के ईसाई राज्यों ने इस्लाम धर्म की शक्ति को रोकने के लिए अनेक प्रयत्न किया। कुछ समय बाद ऑटोमान तुर्कों ने एक बार पुनः इस्लाम की शक्ति को यूरोप में फैलाने का प्रयास किया। रोमन साम्राज्य, कुस्तुनतुनिया, बाल्कन प्रदेश और सम्पूर्ण पूर्वी यूरोप इस्लाम की शक्ति के सम्मुख खड़ा नहीं हो सका और ईसाई राज्यों के संयुक्त प्रयत्न तथा विभिन्न धर्म युद्ध भी इस्लाम के तूफान के सामने असफल रहे। इस्लाम की इस बढ़ती हुई शक्ति एवं महत्वाकांक्षा का मुकाबला भारत को भी करना पड़ा। लगभग तीन

सौ वर्षों तक भारत ने इन्हें अपनी पश्चिमोत्तर सीमा तक रोककर रखा, परन्तु अन्ततः परास्त हो गया और इस्लाम ने भारत पर अपना अधिकार कर लिया।

3.1 उद्देश्य

इस इकाई में अरबों की सिन्ध–विजय पर विस्तृत चर्चा प्रस्तुत की गयी है। इसके साथ ही तत्कालीन भारत की राजनीतिक स्थिति की भी जानकारी प्रदान की गयी है। इस इकाई के अध्ययन से आप जान सकेंगे कि

- अरबों के भारत पर आक्रमण के कारण क्या थे ?
- अरबों की सफलता के कारण क्या थे ?
- अरब आक्रमण का भारत पर क्या प्रभाव पड़ा ?

3.2 तत्कालीन भारत कीराजनीतिक स्थिति

गुप्त साम्राज्य के पतन के पश्चात सम्राट हर्ष ने एक बार पुनः भारत में एक विस्तृत और सुदृढ़ साम्राज्य स्थापित करने का प्रयास किया। हर्ष अपने उद्देश्य में पूर्णतः सफल न हो सका। उसका साम्राज्य उत्तर भारत तक ही सीमित रह गया था। दक्षिण के चालुक्य शासक पुलकेशिन द्वितीय से पराजित होकर हर्ष ने दक्षिण की आगे बढ़ने का अपना विचार त्याग दिया था। हर्ष के समय उसका साम्राज्य एक शक्तिशाली साम्राज्य था, जो शक्ति एवं सम्पन्नता की दृष्टि से किसी भी विदेशी आक्रमण का मुकाबला करने में समर्थ था। परन्तु सम्राट हर्ष की मृत्यु के पश्चात उत्तर भारत के किसी साम्राज्य के पास ऐसी शक्ति नहीं बची थी। विभिन्न स्थानों पर छोटे–छोटे राजवंशों की स्थापना हो गयी थी। इन राजवंशों की दुर्बलता का प्रमुख कारण उनके बीच आपसी प्रतिद्वन्दिता थी। वे बदलती हुई स्थितियों से पूर्णतया अनभिज्ञ थे तथा विदेशी आक्रमणकारियों के प्रति उनका रवैया उदासीन था। अपने साम्राज्य विस्तार के लिए वे सदैव एक दूसरे से युद्धरत रहते थे। तत्कालीन राजनीतिक दुर्बलता का यह एक प्रमुख कारण था।

पश्चिमोत्तर भारत में स्थित राज्यों में अधिकांश हिन्दू राज्य थे। आधुनिक अफगानिस्तान का प्रदेश चन्द्रगुप्त मौर्य ने सेल्यूकस से युद्ध के द्वारा प्राप्त किया था। तभी से यह प्रदेश भारतीयों के कब्जे में था। यहाँ पर बौद्ध एवं ब्राह्मण धर्म प्रचलित थे तथा राजनीतिक और सांस्कृतिक दृष्टि से यह प्रदेश भारत का ही अंग था। कुछ समय बाद में यह प्रदेश काबुल और जाबुल नाम के दो राज्यों में बँट गया। काबुल का प्रदेश उत्तर – पूर्व में कश्मीर और पश्चिम में ईरान की

सीमाओं से मिला हुआ था। जाबुल का प्रदेश काबुल के दक्षिण और बलूचिस्तान के उत्तर–मध्य भाग में स्थित था। लगभग 9वीं शताब्दी के अन्तिम समय तक ये दोनों राज्य हिन्दू राज्य थे। भारत की पश्चिमोत्तर सीमा पर स्थित होने के कारण इन्हें अरबों के आक्रमण का सामना करना पडा। कश्मीर पर ललितादित्य मुक्तापीड़ का शासन था, जिसने कन्नौज के शासक यशोवर्मन को परास्त किया और मार्तण्ड नामक स्थान पर एक विशाल सूर्यमन्दिर का निर्माण कराया। कन्नौज का राज्य पूर्वी पंजाब से लेकर बंगाल तक और हिमालय से लेकर नर्मदा नदी तक फैला हुआ था। यहां का शासक यशोवर्मन था। तत्कालीन बंगाल में पाल वंश का शासन स्थापित था। दक्षिण भारत में वाकाटक, पल्लव पाण्डय, चोल और चेदि वंश के राजा शासन करते थे।

सिन्ध प्रदेश, जिस पर अरबों का आक्रमण हुआ, एक बड़ा राज्य था। इसकी सीमाएं उत्तर में कश्मीर राज्य से, पूर्व में कन्नौज और दक्षिण में अरब सागर से मिलती थीं। पश्चिम में यह राज्य आधुनिक बलूचिस्तान (मकरान) तक विस्तृत था। इस समय यहाँ का शासक राजा दाहिर था। इसके पिता चच ने अपने राजा को मारकर कुछ समय पूर्व ही सिन्ध प्रदेश को प्राप्त किया था। चच के बाद उसका भाई चन्द्र गद्दी पर बैठा। दाहिर को अपने चचेरे भाई और चन्द्र के पुत्र दुराज से गद्दी प्राप्त करने के लिए संघर्ष करना पड़ा था। राजा दाहिर का शासन कठोर प्रकृति का था, जो वहाँ की लड़ाकू जाट जाति के लिए अच्छा नहीं था। इस कारण से आन्तरिक संघर्ष और असन्तोष से ग्रस्त सिन्ध का राज्य कमजोर हो गया था। अतः अरबों के आक्रमण के समय भारत राजनीतिक दृष्टि से बँटा हुआ था। परन्तु सिन्ध के अतिरिक्त अन्य राज्य इतने दुर्बल नहीं थे। इन विभिन्न शासकों के परस्पर संघर्ष और उनकी महत्वाकांक्षाएं इनकी दुर्बलता का कारण थी। फिर भी कोई अन्य साधारण आक्रमणकारी इनके साम्राज्य को जीतने की क्षमता नहीं रखते थे।

अरब आक्रमण के समय भारत सामाजिक दृष्टि से विभिन्न जातियों में बँटा था, जिनके बीच आपस में खान–पान एवं विवाह–सम्बंध वर्जित था। तत्कालीन जाति व्यवस्था वर्तमान की भाँति जटिल नहीं थी, जाति–परिवर्तन, विदेशियों को हिन्दू–समाज में स्थान प्राप्त होना और अन्तर्जातीय विवाह इस समय तक होते रहते थे। समाज में स्त्रियों का सम्मानजनक स्थान था, वह शिक्षा प्राप्त करती थीं तथा विभिन्न सामाजिक एवं प्रशासकीय कार्यों में भाग भी लेती थीं। पर्दा प्रथा का अभाव था, स्त्रियों का स्वयंवर के माध्यम से अपना वर चुनने का अधिकार था। हालांकि इस समय भी वह पुरूषों के बराबर अधिकार नहीं प्राप्त करती थी। शासक एवं कुलीन वर्ग में सती प्रथा लोकप्रिय थी। पुरूष

एक से अधिक पत्नियाँ रख सकते थे। तत्कालीन लोगों का खान–पान सात्विक था। कुछ लोग मांसाहार भी किया करते थे। धार्मिक शिक्षा के अतिरिक्त इस समय विज्ञान, ज्योतिष, चिकित्सा शास्त्र आदि की शिक्षा दी जाती थी। उत्तर भारत में नालन्दा, वल्लभी, काशी तथा दक्षिण भारत में शिक्षा के अनेक केन्द्र थे। यहाँ पर ब्राह्मण बौद्ध तथा जैन धर्म से सम्बंधित शिक्षा दी जाती थी। हर्ष कालीन भारत आर्थिक दृष्टि से भी सम्पन्न था।

इस प्रकार उपर्युक्त विवेचन से स्पष्ट है कि अरबों के सिन्ध पर आक्रमण के समय भारत राजनीतिक, सामाजिक, आर्थिक और सांस्कृतिक दृष्टि से सबल था, परन्तु यहाँ पर शासन करने वाले विभिन्न शासकों की आपसी शत्रुता, सैन्य क्षमता को मजबूत बनाने के प्रति उदासीनता, सामाजिक विभेद ऐसे कारक थे, जिन्होने इस देश के इतिहास को गम्भीरता से प्रभावित किया। इसके कारण देश को अपार जन–धन की क्षति उठानी पड़ी।

3.3 अरबों का सिन्ध पर आक्रमण

भारत तथा अरब के लोगों के बीच अति–प्राचीन काल से ही व्यापारिक सम्पर्क स्थापित था। सातवीं शताब्दी ई0 में इस्लाम धर्म ग्रहण करने के पश्चात अरबी लोगों का दृष्टिकोण बदल गया, अब वे व्यापार–वाणिज्य के साथ धर्म का प्रचार–प्रसार अपना मुख्य कर्तव्य मानते थे। खलीफा उमर के समय 636ई0 में सिन्ध पर अरबों का प्रथम आक्रमण हुआ, लेकिन इस आक्रमण में वे सफल नहीं हो सके। इसके बावजूद समय–समय पर वे सिन्ध प्रदेश की सीमाओं पर थल एवं जल मार्गो के माध्यम से आक्रमण करते रहे। परन्तु कोई विशेष सफलता नहीं प्राप्त कर सके। आठवीं शताब्दी के प्रारम्भिक दशकों में राजा दाहिर के कार्यों से क्रोधित होकर अरब गवर्नर हज्जाज ने अपने खलीफा वालिद से सिन्ध के राजा दाहिर पर आक्रमण करने का आदेश प्राप्त कर लिया। हज्जाज ने सेनानायक उबैदुल्ला के नेतृत्व में एक सेना सिन्ध पर आक्रमण करने के लिए भेजी। इस अभियान में उबैदुल्ला पराजित हुआ और मार दिया गया। तत्पश्चात बुदैल ने दाहिर पर आक्रमण किया, परन्तु वह भी पराजित हुआ और मारा गया।

अरब गवर्नर हज्जाज का तीसरा सेनानायक मुहम्मद बिन कासिम था। हज्जाज ने एक शक्तिशाली सेना के साथ मुहम्मद बिन कासिम को सिन्ध प्रदेश पर आक्रमण करने के लिए भेजा। 712ई0 में मुहम्मद बिन कासिम ने सिन्ध प्रदेश पर आक्रमण किया। मुहम्मद बिन कासिम की सेना में 6000 सीरियन घुड़सवार, इतनी ही संख्या में ऊँट थे। इसके अतिरिक्त सामान ढोने वाले 3000 ऊँट भी थे। मु0 बिन कासिम ने मकरान के मार्ग से एक सुसंगठित सेना लेकर

सिन्ध पर आक्रमण किया। अरबों की एक अन्य सेना पत्थर फेंकने वाले तोपखाने के साथ देबल के बन्दरगाह के पास मुहम्मद बिन कासिम की सेना के साथ मिल गयी। राजा दाहिर ने देबल की सुरक्षा के लिए कोई भी सेना न भेजकर बड़ी गलती की। 4000 राजपूत सैनिक देबल की रक्षा करते हुए वीरगति को प्राप्त हुए और अरबों की विजय हुई। इस्लाम धर्म स्वीकार न करने वाले स्त्री –पुरूषों की बेरहमी से हत्या कर दी गयी। बच्चों और स्त्रियों को गुलाम बना लिया गया। देबल नगर में तीन दिनों तक कल्लेआम और लूट–पाट चलती रही। मुहम्मद बिन कासिम ने लूट के माल का 1/4 भाग तथा कुछ सुन्दर स्त्रियों को अरब के गवर्नर हज्जाज के पास भेज दिया। लूट के शेष माल को सेना ने आपस में बाँट लिया। देबल पर विजय प्राप्त कर लेने के पश्चात् मुहम्मद बिन कासिम निरून के किले की तरफ आगे बढा। निरून की सुरक्षा की जिम्मेदारी वहाँ के एक पुजारी के पास थी,उसने बिना युद्ध किए ही आत्मसमर्पण कर दिया। इसके बाद मुहम्मद बिन कासिम सेहवान की ओर बढा। यहाँ पर दाहिर का चचेरा भाई बाझरा शासन करता था। बहुत जल्द ही मुहम्मद बिन कासिम ने सेहवान पर अधिकार कर लिया। तत्पश्चात उसने सीसम के जाटों को पराजित किया। अपनी इन सफलताओं से उत्साहित होकर मुहम्मद बिन कासिम सिन्धु नदी को पार करने के लिए आगे बढा। कुछ महीनों के इन्तजार के पश्चात् मुहम्मद बिन कासिम ने सिन्धु नदी की मुख्य धारा मेहरान को पार कर लिया। यहाँ तक पहुँचने में मुहम्मद बिन कासिम को किसी बड़ी बाधा का सामना नहीं करना पड़ा। अपनी इन सफलताओं के पश्चात् मुहम्मद बिन कासिम ब्राह्मणबाद के किले से रावर की ओर आगे बढ़ा। यहाँ पर दोनों पक्षों की सेनाएं कई दिनों तक एक दूसरे के सम्मुख खड़ी रहीं। अंततः 20 जून 712ई0 को मुहम्मद बिन कासिम और राजा दाहिर के बीच युद्ध हुआ। दाहिर ने वीरता पूर्वक मुहम्मद बिन कासिम का मुकाबला किया। दाहिर की सेना में 50,000 सैनिक तथा सैकड़ों हाथी थे। दाहिर घोड़े पर सवार होकर युद्ध करता हुआ वीर–गति को प्राप्त हुआ। उसकी सेना दो टुकडों में बँट गयी, उसका एक हिस्सा आरोर चला गया और दुसरा दाहिर के पुत्र जयसिंह के साथ ब्राह्मणबाद चला गया। रावर के किले की सुरक्षा दाहिर की पत्नी कर रही थी। परन्तु पराजित होता देख किले की अन्य स्त्रियों के साथ उसने जौहर' कर लिया। हजारों स्त्रियों ने अपने सतीत्व की रक्षा के लिए आग में कूदकर आत्महत्या कर लिया। दाहिर का पुत्र जयसिंह भी अरबों के सामने टिक नहीं सका, पराजित हुआ और चित्तूर चला गया। ब्राह्मणबाद के किले पर अरबों का अधिकार हो गया। यहाँ से मुहम्मद बिन कासिम को राजा दाहिर की सम्पूर्ण सम्पत्ति, उसकी एक अन्य पत्नी लाड़ी तथा दो पुत्रियाँ–सूर्या देवी और परमल देवी प्राप्त हुई।

रानी लाड़ी से मुहम्मद बिन कासिम ने स्वयं विवाह कर लिया और दाहिर की दोनों पुत्रियों को खलीफा की सेवा में भेज दिया। इस प्रकार हम देखते है कि अरबों ने सिन्ध पर विजय प्राप्त कर लिया। सिन्ध विजय के पश्चात मुहम्मद बिन कासिम अधिक दिनों तक जीवित न रह सका और 715–16 ई0 में उसकी मृत्यु हो गयी। उसकी मृत्यु के सम्बन्ध में दो तरह के तथ्य मिलते हैं। एक के अनुसार–राजा दाहिर की दोनों पुत्रियों–सूर्या देवी और परमल देवी ने खलीफा वालिद से शिकायत की कि मुहम्मद बिन कासिम ने उनको तीन दिनों तक अपने हरम में रखकर उनका सतीत्व भंग करने के पश्चात खलीफा की सेवा में प्रस्तुत किया है। यह सुनकर खलीफा वालिद अत्यन्त क्रोधित हुआ और उसने मुहम्मद बिन कासिम को मृत्युदण्ड दे दिया। दूसरे विवरण के अनुसार 714 ई0 में खलीफा वालिद की मृत्यु के पश्चात उसका भाई सुलेमान खलीफा बना। वह गवर्नर हज्जाज को पसन्द नहीं करता था। इस कारण उसके स्थान पर याजिद को सिन्ध का नया सूबेदार बनाया गया। मुहम्मद बिन कासिम हज्जाज का दामाद था, इसे कैद करके मेसोपोटामिया भेज दिया गया, जहाँ पर शारीरिक यातनाएं देकर उसे मृत्यु के घाट उतार दिया गया। मुहम्मद बिन कासिम की मृत्यु से सम्बंधित दूसरा कारण अधिक तर्कसंगत जान पड़ता है।

3.3.1 अरब आक्रमण के कारण

अरबों का भारतीय लोगों से व्यापारिक सम्पर्क अति प्राचीन काल से था। अरब व्यापारी भारत के दक्षिण तटों के निकटवर्ती प्रदेशों के साथ व्यापार करने के लिए आया करते थे। सातवीं शताब्दी ई0 में इस्लाम धर्म ग्रहण कर लेने के बाद भी अरब निवासी भारत से व्यापार करते रहे। पैगम्बर मुहम्मद साहब के बाद खलीफाओं की साम्राज्य विस्तार और धर्म के प्रचार–प्रसार की नीति के कारण भारतीयों के साथ उनके सम्बन्ध कटुतापूर्ण हो गए। सर्वप्रथम अरबों ने अपनी इसी लालसा के कारण खलीफा उमर के समय 636 ई0 में महाराष्ट्र के थाबे नामक स्थान पर आक्रमण किया, परन्तु सफल न हो सके। इसके बाद के आक्रमणों का उद्देश्य सिन्ध के समीपवर्ती प्रदेशों को जीतना रह गया। इसी क्रम में मकरान (आधुनिक बलूचिस्तान) को जीतने के कई प्रयास विफल रहे, परन्तु अन्त में अरबों ने मकरान को जीतने में सफलता पायी। मकरान विजय के पश्चात अरबों का सिन्ध विजय का मार्ग खुल गया/अरबों द्वारा सिन्ध पर आक्रमण करने का मुख्य उद्देश्य आर्थिक और धार्मिक था। खलीफाओं द्वारा इस्लाम का प्रचार–प्रसार तलवार की शक्ति के बल पर किया जाने लगा था। सिन्ध पर अरबों के द्वारा आक्रमण किया जाना उनकी इसी नीति का हिस्सा था। उसके अलावा भारत में अपने साम्राज्य का विस्तार करना भी उनकी

रणनीति का हिस्सा था। भारत से अति प्राचीन काल से उनका व्यापारिक सम्बन्ध होने के कारण वे यहाँ की आर्थिक सम्पन्नता से परिचित थे। इस कारण कहा जा सकता है कि धन प्राप्त करने की इच्छा उनके आक्रमण का मुख्य कारण थी।

अरबों के सिन्ध पर आक्रमण का तात्काालिक कारण देबल बन्दरगाह के समीप समुद्री डाकुओं के द्वारा कुछ अरब जहाजों को लूटा जाना था। घटना यह थी कि लंका के राजा ने खलीफा के गवर्नर हज्जाज के पास अरब व्यापारी, जिसकी मृत्यु लंका में हो गयी थी, के स्त्रियों और बच्चों कों जहाज में बिठाकर देबल के रास्ते भेजा था, परन्तु रास्ते में ही समुद्री डाकुओं ने उन जहाजों को लूट लिया तथा स्त्रियों और बच्चों को पकड़कर उनके साथ बलात्कार किया। इस घटना से गवर्नर हज्जाज अत्यधिक नाराज हुआ और उसने राजा दाहिर से इसकी क्षतिपूर्ति करने और लुटेरो को दण्डित करने को कहा। राजा दाहिर ने अपने उत्तरदायित्व से इन्कार करते हुए हज्जाज के प्रस्ताव को ठुकरा दिया। परिणाम स्वरूप हज्जाज ने खलीफा वालिद से राजा दाहिर पर आक्रमण करने का आदेश प्राप्त कर लिया। यह उपर्युक्त घटना जिस भी प्रकार से घटित हुई हो, परन्तु यह माना जा सकता है कि यह अरबों के सिन्ध पर आक्रमण करने का एक बहाना थी।

3.3.2 अरबों की सफलता के कारण

अपने प्रारम्भिक अभियानों में असफल रहे अरबों की सफलता के लिए विभिन्न कारणों को उत्तरदायी ठहराया जा सकता है। सिन्ध प्रदेश सैनिक दृष्टि से एक कमजोर राज्य था। उसकी जनसंख्या कम थी और समाज में ऊँच–बीच की भावना व्याप्त थी। ब्राह्मण शासकों का जाटों और मे दों जैसी लड़ाकू जातियों के प्रति अच्छा व्यवहार नहीं था, जिस कारण सामाजिक एकता स्थापित नहीं हो सकी थी। सिन्ध का प्रदेश कृषि आदि की दृष्टि से उतना सम्पन्न नहीं था, जितना कि विदेशी व्यापार से वह लाभ प्राप्त करता था। फिर भी यह प्रदेश आर्थिक दृष्टि से सबल नहीं था। इस कारण उसके पास शक्तिशाली सेना का अभाव था। राजा दाहिर से पूर्व के शासक और स्वयं दाहिर भी प्रजा के बीच लोकप्रिय नहीं हो सके थे। इस वंश के प्रान्तीय शासक काफी हद तक स्वतंत्र थे और प्रजा का सम्पर्क उन्हीं से रहता था। अतः स्वाभाविक था कि अरबों के विरूद्ध दाहिर को सम्पूर्ण समर्थन प्राप्त नहीं हो सका। इसके साथ ही बौद्ध धर्मावलम्बियों और व्यापारियों ने भी उसका सहयोग नहीं किया। सिन्ध का प्रदेश भारत के एक कोने में स्थित था। इस कारण भारतीय भू–भाग के अन्य शासक

इसके प्रति उदासीन थे। अरबों की सफलता का एक प्रमुख कारण उनकी सुसंगठित सेना थी। अरबों की सेना उच्च कोटि के घोड़ों तथा उन्नत अस्त्र–शस्त्रों से सुसज्जित थी। इसके साथ ही उनकी सेना में उत्साह भरने के लिए उनकी धार्मिक भावनाएं भी उत्तरदायी थी। जबकि ब्राह्मण धर्म के लोगों में ऊँच–नीच के भेद के कारण धार्मिक एकता का अभाव था। इस कारण अरबों के आक्रमण का संगठित विरोध वे नहीं कर सके, जिसका परिणाम भयावह सिद्ध हुआ। राजा दाहिर की सैनिक भूलें भी उसकी पराजय का एक कारण बनी। अरबों ने जब मकरान को विजित किया उसी समय दाहिर को सजग हो जाना चाहिए था, परन्तु उसने ऐसा नहीं किया और अपनी बारी का इन्तजार करता रहा। अरबों की सुसंगठित सेना का मुकाबला करने के लिए रणनीतिक तैयारी आवश्यक थी। जब मुहम्मद बिन कासिम सिन्ध के निचले प्रदेशो को रौंदते हुए आगे बढ़ रहा था, तब दाहिर ने उसके बचाव के प्रति कुछ भी नहीं किया। रावर के युद्ध के पूर्व जब मुहम्मद बिन कासिम की सेना में बीमारी फैली हुई थी और वह सैनिक सहायता की आशा में सिन्ध नदी के किनारे कैम्प लगाए था, उस समय दाहिर ने उस पर आक्रमण नहीं किया। इसके अलावा दाहिर ने अरबों की सैन्य क्षमता को कमजोर करने सम्बंधी कोई भी रणनीतिक कदम नहीं उठाया। राजा दाहिर पराक्रमी और साहसी अवश्य था, परन्तु बिना किसी रणनीति के अपने आपको युद्ध में झोंक देना उसकी सबसे बड़ी भूल थी।

दाहिर के व्यक्तित्व में नेतृत्व क्षमता दूरदर्शिता और अवसर का लाभ उठाने की क्षमता का अभाव था। देश–प्रेम की भावना के अभाव में विभिन्न स्थानों पर उसको अपनी प्रजा से असहयोग प्राप्त हुआ। देबल पर आक्रमण के समय एक देशद्रोही ने भारतीयों के मनोबल को तोड़ने का तरीका अरबों को सुझाया, निरून प्रदेश को वहाँ के पुजारी ने बिना युद्ध किए ही अरबों को सौंप दिया। सीसम के युद्ध के पश्चात जाट सैनिक अरब सेना के साथ मिल गए और मुल्तान के किले में पानी पहुँचाने वाली सप्लाई लाइन को बन्द कर दिया।

इस प्रकार स्पष्ट होता है कि मुहम्मद बिन कासिम का सैनिक नेतृत्व, उसका उत्साह तथा उसकी सैनिक योग्यता सिन्ध के विरूद्ध अरबों की सफलता का प्रमुख कारण थी। भारतीय सैनिकों ने वीरतापूर्ण ढंग से अरबों का मुकाबला किया और युद्ध भूमि में वीरगति को प्राप्त हुए। अरबों की सफलता उनके कुशल नेतृत्व, जोश तथा एक निश्चित लक्ष्य के प्रति समर्पित रहने का परिणाम थी, जबकि भारतीय राजाओं और सैनिकों में इन गुणों का अभाव था। अंततः पराजय का मुँह देखना पड़ा।

3.3.3 अरब आक्रमण का प्रभाव

भारत पर अरब आक्रमण के प्रभाव को लेकर विद्वान एक मत नहीं हैं। कर्नल जेम्स टॉड ने भारत पर अरबों के आक्रमण के प्रभाव को बहुत बढ़ा–चढाकर वर्णित किया है। परन्तु अन्य इतिहासकार टॉड के विचारों से सहमत नहीं हैं। सर वूल्जले हेग के अनुसार–'अरबों का आक्रमण भारतीय इतिहास में एक साधारण घटना थी और इस घटना ने इस विशाल देश के सीमावर्ती भाग में स्थित एक छोटे से प्रदेश मात्र को प्रभावित किया। लेनपूल के अनुसार–'अरब आक्रमण का कोई महत्वपूर्ण राजनीतिक प्रभाव नहीं पड़ा। यह इस्लाम के इतिहास की एक गौण तथा महत्वहीन घटना थी। अरबों की सिन्ध विजय के पश्चात भारत का कोई भी महत्वपूर्ण भाग अरबों के अधिकार में नहीं गया। अरबों के आक्रमण से भारत की सैनिक तथा राजनीतिक शक्ति को क्षति नहीं पहुँची, क्योंकि किसी भी शक्तिशाली शासक के साथ उनका युद्ध नहीं हुआ और न ही सिन्ध की विजय ने अरबों के लिए भारत विजय का मार्ग ही प्रशस्त किया। अतः भारतीय राजनैतिक जीवन पर अरब आक्रमण का कोई भी स्थायी प्रभाव नहीं पड़ा। इसमें सन्देह नही है। कि अरब आक्रमणकारियों ने पहली बार भारत में इस्लामी राज्य की स्थापना की और बहुत बड़ी संख्या में स्त्रियों एवं पुरूषों को इस्लाम धर्म स्वीकार करने के लिए बाध्य किया। परन्तु अरबों के आक्रमण का प्रभाव यहीं तक सीमित था। अरब आक्रमण के किसी गम्भीर राजनीतिक प्रभाव से स्पष्ट रूप से इन्कार किया जा सकता है।

अरबों के आक्रमण का भारतीय सभ्यता एवं संस्कृति पर भी कोई विशेष प्रभाव नहीं पड़ा। अपितु भारत एवं अरब दोनों संस्कृतियाँ एक–दूसरे से प्रभावित रही। भारतीय कला, साहित्य, ज्योतिष शास्त्र और चिकित्सा शास्त्र से अरब देश के लोग प्रभावित हुए और उन्होंने अपने जीवन में इसका सदुपयोग किया। सर जॉन मार्शल के अनुसार–''अरब देश के लोगों में निर्माणात्मक प्रतिभा की कमी थी और यदि वे अपने भवनों को भव्य एवं आकर्षक बनाना चाहते थे तो उन्हें भारतीय शिल्पियों एवं कलाकारों से काम कराना आवश्यक था।'' इसी प्रकार हैवेल महोदय का कथन है कि ''इस्लाम जब अपने यौवनावस्था में था, तब उसने भारत से बहुत कुछ सीखा, जैसे कि भारतीय साहित्य तथा स्थापत्य कला की विशिष्ट शैलियों को अरबों के द्वारा अपनाया गया, साथ ही अरबों को आध्यात्मिक एवं धार्मिक आदर्शों की प्रेरणा भारतीयों से मिली।'' संस्कृत भाषा के ग्रंथों 'ब्रहमसिद्धान्त' तथा 'खण्ड–खाद्यक' का अरबी भाषा में अनुवाद किया गया। तबरी के अनुसार– खलीफा हारून–अल–रसीद की बीमारी को एक भारतीय वैद्य ने ठीक किया था। इसके अलावा अंको का ज्ञान भी अरबों ने भारतीयों से प्राप्त

किया था। सूफी विचारधारा के अनेक सिद्धान्तों पर भारतीय बौद्ध दर्शन का प्रभाव स्पष्ट रूप से देखा जा सकता है।

इस प्रकार स्पष्ट है कि भारत अरब सम्पर्क के फलस्वरूप अरब संस्कृति अधिक समृद्ध हुई। इतना ही नहीं, बल्कि अरबों ने भारतीय सभ्यता एवं संस्कृति के विविध तत्वों को यूरोपीय देशों तक पहुँचाया। अरबों के भारतीय ज्ञान परम्परा से सम्पर्क के कारण ही आठवीं–नवीं शताब्दी ई0 में यूरोपीय देशों में ज्ञान की ज्योति जली। अतः यह कहना उचित ही होगा कि यद्यपि अरबों के आक्रमण का भारत पर राजनीतिक प्रभाव नगण्य था,तथापि सांस्कृतिक दृष्टि से यह न केवल अरबों के लिए बल्कि विश्व के अन्य देशों के लिए लाभकारी रहा।

3.4 सारांश

अरबों का सिन्ध पर आक्रमण प्राचीन भारतीय इतिहास में एक महत्वपूर्ण घटना थी। परन्तु अरबों की यह विजय अल्पकालीन सिद्ध हुई। मु0 बिन कासिम की मृत्यु के पश्चात सिन्धवासियों ने राहत की साँस ली। यहाँ के लोगों ने इस्लामी आधिपत्य का भारत अपने ऊपर से उतार फेंका। राजा दाहिर के पुत्र जयसिंह ने देबल, ब्राहमणाबाद और एलोदा क्षेत्र पर पुनः अपना अधिकार कर लिया। अरबों के अधिकार क्षेत्र में अब सिन्ध से समुद्र तट तक का छोटा सा भू–भाग रह गया था। कुछ समय पश्चात खलीफा हिशाम द्वारा नियुक्त सिंध के गवर्नर जुनैद ने जयसिंह को बन्दी बनाकर उसके राज्य क्षेत्र पर अधिकार कर लिया। परन्तु भारत के अन्य भू–भागों पर शासन करने वाले शासकों ने इनके साम्राज्य विस्तार को रोक दिया। दक्षिण की तरफ बढ़ने पर पुलकेशिन द्वितीय ने इसे पराजित किया। उत्तर तथा उत्तर–पश्चिम में कश्मीर और कन्नौज की ओर बढ़ने पर ललितादित्य मुक्तापीड़ तथा यशोवर्मन ने अरबों के अभियान को अवरूद्ध किया। बाद के वर्षों में खलीफाओं का केन्द्रीय नियन्त्रण कमजोर होने के कारण इनके सरदार आपस में लड़ने लगे और धीरे–धीरे उन्होंने अपने को स्वतंत्र कर लिया। नवीं शताब्दी ई0 के अन्त तक खलीफाओं का बचा–खुचा अधिकार भी समाप्त हो गया।

3.5 शब्दावली

खलीफाः 'खलीफा' अरबी भाषा का शब्द है, जिसका अर्थ है उत्तराधिकारी, शासक या नेता। पैगम्बर मुहम्मद ने अपना कोई उत्तराधिकारी नियुक्त नहीं किया था। अतः जनसाधारण की एक सभा के द्वारा अबूबक्र को उनका उत्तराधिकारी चुना गया। इस प्रकार पैगम्बर मुहम्मद के उत्तराधिकारियों

को 'खलीफा' कहा जाने लगा।

जौहर प्रथाः 'जौहर' पूर्व मध्यकालीन भारत में राजपूत स्त्रियों के द्वारा की जाने वाली एक क्रिया थी। शत्रुओं के साथ होने वाले युद्ध में जब राजपूत राजाओं की हार निश्चित हो जाती थी, तब पुरूष मृत्युपर्यंत युद्ध करते हुए वीरगति प्राप्त करते थे और स्त्रियाँ पकड़े जाने और यातना दिए जाने के भय के कारण अग्निकुण्ड में सामूहिक आत्मदाह कर लेती थीं। राजपूत स्त्रियों द्वारा संकट के समय सामूहिक आत्मदाह किए जाने को 'जौहर प्रथा' कहा गया है।

3.6 बोध प्रश्न

1. अरबों द्वारा सिन्ध पर किए गए आक्रमण का वर्णन कीजिए ?
2. अरबों की सिन्ध–विजय के लिए उत्तरदायी कारणों पर प्रकाश डालिए ?
3. भारत पर अरब आक्रमण के प्रभावों का मूल्यांकन कीजिए ?
4. अरबों के सिन्ध पर आक्रमण के समय तत्कालीन भारत की राजनीतिक स्थिति का वर्णन कीजिए ?

3.7 सन्दर्भ ग्रन्थ

- पाण्डेय, विमलचन्द्र, *प्राचीन भारत का राजनीतिक एवं सांस्कृतिक इतिहास,* सेन्ट्रल बुक डिपो, प्रयागराज।
- पाठक, विशुद्धानन्द, *उत्तर भारत का राजनीतिक इतिहास,* उत्तर प्रदेश हिन्दी संस्थान, लखनऊ।
- पाण्डेय, आर.एन., *प्राचीन भारत का राजनीतिक एवं सांस्कृतिक इतिहास,* इण्डिया बुक एजेंसी, प्रयागराज।
- श्रीवास्तव, के.सी., *प्राचीन भारत का इतिहास तथा संस्कृति,* यूनाईटेड बुक डिपो, प्रयागराज।
- सिंह, उपिन्दर, *प्राचीन एवं पूर्व मध्यकालीन भारत का इतिहास,* पियर्सन इण्डिया एजुकेशन सर्विसेज प्रा .लि. नई दिल्ली।

इकाई 4 त्रिकोणात्मक संघर्ष–राष्ट्रकूट वंश, पाल साम्राज्य, गुर्जर प्रतिहार साम्राज्य

इकाई की रूपरेखा

4.0 प्रस्तावना

4.1 उद्देश्य

4.2 त्रिकोणात्मक संघष

4.2.1 प्रथम चरण (783–795ई0)

4.2.2 द्वितीय चरण (795 ई0 – 814 ई0)

4.2.3 तृतीय चरण (814 ई0 – 833 ई0)

4.2.4 चतुर्थ चरण (833 ई0 – 855 ई0)

4.2.5 पांचवा चरण (855–910 ई.)

4.2.6 छठा चरण (910 ई. से अन्त तक)

4.3 राष्ट्रकूट वंश

4.4 पाल वंश

4.5 गुर्जर प्रतिहार वंश

4.6 सारांश

4.7 अभ्यासार्थ प्रश्न

4.8 संदर्भ ग्रन्थ

4.0 प्रस्तावना

सम्राट हर्ष के बाद कन्नौज विभिन्न शक्तियों के आकर्षण का केन्द्र बन गया। इसे वही स्थान प्राप्त हुआ, जो गुप्तयुग तक मगध का था। वस्तुतः हर्ष और यशोवर्मन् ने इसे साम्राज्यिक सत्ता का प्रतीक बना दिया था। उत्तर भारत का चक्रवर्ती शासक बनने के लिये कन्नौज पर अधिकार करना आवश्यक समझा जाने लगा। राजनैतिक महत्व होने के साथ कन्नौज नगर का आर्थिक महत्व भी काफी बढ़ गया। कन्नौज पर अधिकार करने से गंगाघाटी और इसमें उपलब्ध व्यापारिक एवं कृषि संबंधी समृद्ध साधनों पर नियंत्रण स्थापित किया जा सकता

था। गंगा और यमुना के बीच स्थित होने के कारण कन्नौज का क्षेत्र काफी उपजाऊ था।

व्यापार और वाणिज्य की दृष्टि से भी कन्नौज महत्वपूर्ण था. क्योंकि यहाँ से विभिन्न दिशाओं को व्यापारिक मार्ग जाते थे। एक मार्ग कन्नौज से प्रयाग तथा फिर पूर्वीतट तक जाकर दक्षिण में कांची तक जाता था। दूसरा मार्ग वाराणसी तथा गंगा के मुहाने तक जाता था। तीसरा मार्ग पूर्व में कामरूप और उत्तर से नेपाल और तिब्बत तक के लिये था। चौथा मार्ग कन्नौज से दक्षिण की ओर जाते हुए दक्षिण तट पर स्थित वनवासी नगर में मिलता था। पांचवां मार्ग कन्नौज से बजान तक तथा उसके बाद गुजरात की राजधानी गांधीनगर तक पहुँचता था। जिस प्रकार पूर्व काल में मगध उत्तरापथ के व्यापारिक मार्ग को नियंत्रित करता था, उसी प्रकार की स्थिति कन्नौज ने भी प्राप्त कर ली। इस प्रकार राजनैतिक और आर्थिक दोनों ही दृष्टियों से इस पर आधिपत्य स्थापित करना लाभप्रद था। अतः इस पर अधिकार करने के लिए 8वीं शताब्दी के अन्त से लेकर 10वीं शताब्दी के अन्त तक तीन बड़ी शक्तियों गुर्जर–प्रतिहार, पाल और राष्ट्रकूट के बीच त्रिकोणीय संघर्ष शुरू हुआ।

4.1 उद्देश्य

इस इकाई का मुख्य उद्देश्य आपको कन्नौज में होने वाले त्रिकोणात्मक संघर्ष तथा राष्ट्रकूट वंश, पाल वंश एवं गुर्जर प्रतिहार साम्राज्य से संबंधित जानकारी प्रदान करना है।

4.2 त्रिकोणात्मक संघर्ष

सम्राट हर्षवर्धन की मृत्यु के पश्चात् उसका साम्राज्य छिन्न–भिन्न हो गया और उसका स्थान छोटे राज्यों ने ले लिया, परन्तु कन्नौज की कीर्ति नष्ट नहीं हुई। उत्तर–भारत के सम्राट की राजधानी होने का गौरव पाटलिपुत्र के स्थान पर अब कन्नौज ने ले लिया था। आगे होने वाले भारत के यशस्वी शासकों ने कन्नौज को राजधानी बनाने अथवा उसे अपने आधिपत्य में करने के लिए परस्पर संघर्ष किये। सम्राट हर्ष के पश्चात् कन्नौज के सम्मान को सर्वप्रथम यशोवर्मा (प्रायः 690–740ई.) ने पुनः स्थापित किया। उसके समकालीन यशस्वी शासकों में चालुक्य–सम्राट विनयादित्य और कश्मीर–सम्राट ललितादित्य थे। कन्नौज को प्राप्त करने के लिए इन दोनों ने यशोवर्मा से संघर्ष किया। विनयादित्य और यशोवर्मा का संघर्ष, सम्भवतया, निर्णयात्मक नहीं हुआ परन्तु ललितादित्य ने यशोवर्मा को, निस्सन्देह, परास्त किया। यशोवर्मा के उत्तराधिकारियों में से कोई भी योग्य नहीं हुआ और आठवीं सदी के बाद के

समय में कन्नौज एक नवीन वंश– आयुध–वंश –के अधिकार में चला गया। 770 ई. में वज्रायुध कन्नौज का शासक बना परन्तु उसका राज्य छोटा ही था। उसकी मृत्यु के पश्चात् 783 ई. या 784 ई. में उसका पुत्र इन्द्रायुध कन्नौज का शासक बना। उसके भाई चक्रायुध ने इसका विरोध किया। ऐसी ही परिस्थिति में जबकि कन्नौज के लिए इन दो भाइयों में संघर्ष चल रहा था, भारत की नवोदित शक्तियों ने कन्नौज को अपने अधिकार में करने का प्रयत्न किया। आठवीं सदी के बाद के इस समय में भारत में तीन शक्तिशाली राज्यों का निर्माण हो चुका था– राजस्थान में गुर्जर–प्रतिहार, बंगाल में पाल और दक्षिण भारत के महाराष्ट्र और उसके निकट के भू–क्षेत्रों में राष्ट्रकूट। इन तीनों वंशों के विभिन्न सम्राटों ने चक्रवर्ती सम्राट होने के आदर्श की पूर्ति का प्रयत्न किया तथा तीनों वंशों ने इस उद्देश्य की पूर्ति के लिए अधिकतम राज्य–विस्तार और कन्नौज को अपने अधिकार में करने का प्रयत्न किया। इस कारण, इन तीनों वंशों के विभिन्न सम्राटों में भारत–सम्राट कहलाने और कन्नौज को प्राप्त करने की प्रतिष्ठा को प्राप्त करने के लिए संघर्ष हुआ जो त्रिदलीय अथवा त्रिपक्षीय संघर्ष कहलाया। यह संघर्ष 8वीं सदी के अन्तिम समय से आरम्भ होकर 10वीं सदी के अन्त तक लगभग 200 वर्षों तक चला।

उन शक्तिशाली सम्राटों और एक बड़े साम्राज्य की राजधानी बने रहने अथवा बनाये रखने के प्रयत्न का गौरव पाटलिपुत्र के स्थान पर कन्नौज को प्राप्त हुआ। कन्नौज हर्ष की मृत्यु के पश्चात् भी वैभव और शक्ति का केन्द्र–बिन्दु बना रहा, कन्नौज के सम्राट सम्पूर्ण उत्तर–भारत के शासक बनने का प्रयत्न करते रहे और भारत की रक्षा का उत्तरदायित्व भी सम्भालते रहे। इसी कारण, अरब सिन्ध और मुल्तान पर अधिकार कर लेने के बावजूद भी मुस्लिम भारत में अन्दर प्रवेश करने में असफल हुए। यही नहीं अपितु प्रायः 250 वर्षों तक भारत इस्लाम की उस शक्ति को, जिसने मध्य और पश्चिमी एशिया तथा यूरोप और अफ्रीका के बहुत बड़े भाग को जीतने व सम्पूर्ण यूरोप की संयुक्त शक्तियों से मुकाबला करने मेंसफलता पायी थी, अपनी उत्तर–पश्चिमी सीमाओं पर रोक सका। इसका मुख्य कारण यह था कि राजनीतिक प्रतिस्पर्धा और धार्मिक एवं सामाजिक गिरावट होने के बावजूद भी भारत 1000 ई. तक हिन्दुओं के राजधर्म, सामाजिक मान्यताओं और धार्मिक आदर्शों को सुरक्षित रख सका था।

4.2.1 प्रथम चरण (783–795ई0)

कन्नौज को अपने आधिपत्य में लेने का पहला कदम प्रतिहार शासक वत्सराज (770–805 ई) ने उठाया। उसका आशय कन्नौज को विजय करके सम्पूर्ण गंगा की घाटी पर अपना अधिकार करना था। उस समय कन्नौज का

शासक इन्द्रायुध था। इन्द्रायुध ने वत्सराज के आधिपत्य को स्वीकार कर लिया। परन्तु उसी अवसर पर पाल–शासक धर्मपाल और राष्ट्रकूट–शासक ध्रुव भी कन्नौज और गंगा की घाटी को अपने अधिकार में करने के लिए उत्सुक हुए थे। वत्सराज ने आगे बढ़कर धर्मपाल (770–810 ई) से युद्ध किया और उसे परास्त कर दिया। परन्तु उसी अवसर पर राष्ट्रकूट–शासक ध्रुव (780–793 ई) ने उत्तर–भारत में प्रवेश किया। ध्रुव का युद्ध गंगा–यमुना–दोआब में वत्सराज से हुआ, जिसमें उसकी विजय हुई। ध्रुव ने पाल–शासक धर्मपाल पर आक्रमण करके उसे भी परास्त किया और कन्नौज को अपने आधिपत्य में ले लिया। परन्तु ध्रुव को शीघ्र ही दक्षिण–भारत वापस जाना पड़ा। ध्रुव के इस आक्रमण से प्रतिहारों को तो हानि हुई परन्तु पाल शासक धर्मपाल को उससे लाभ हुआ। ध्रुव के वापस चले जाने और प्रतिहारों की शक्ति के दुर्बल हो जाने से धर्मपाल को कन्नौज पर आक्रमण करने का अवसर मिला। उसने इन्द्रायुध को हटाकर उसके भाई चक्रायुध को कन्नौज के सिंहासन पर बैठाया जिसने उसके आधिपत्य को स्वीकार कर लिया।

4.2.2 द्वितीय चरण (795 ई0 – 814 ई0)

कन्नौज पर धर्मपाल के प्रभाव की स्थापना प्रतिहार वंश के लिए एक चुनौती थी। वत्सराज की मृत्यु 805 ई. में हो गयी। उसकी मृत्यु के पश्चात् उसका पुत्र नागभट्ट द्वितीय (805–833 ई) प्रतिहार शासक बना। नागभट्ट द्वितीय ने अपने वंश की प्रतिष्ठा कोपुनः स्थापित किया और निकट के क्षेत्रों में अपनी स्थिति को दृढ़ करके उसने कन्नौज पर आक्रमण किया। उसने चक्रायुध को परास्त करके कन्नौज पर अधिकार कर लिया और धर्मपाल पर भी आक्रमण किया। उसने धर्मपाल को परास्त करके उसके राज्य की सीमाओं में मुंगेर तक घुसने में सफलता प्राप्त की। परन्तु नागभट्ट द्वितीय भी अधिक समय अपनी सफलता का उपभोग नहीं कर सका। उस समय राष्ट्रकूट– शासक गोविन्द तृतीय था।

4.2.3 तृतीय चरण (814 ई0 – 833 ई0)

वह स्वयं महत्वाकांक्षी था, प्रतिहार–वंश से उसकी वंशानुगत शत्रुता चली आ रही थी और सम्भवतया, चक्रायुध और धर्मपाल ने नागभट्ट द्वितीय के विरुद्ध उससे सहायता भी माँगी थी। इस कारण, गोविन्द तृतीय (793–814 ई.) ने उत्तर–भारत पर आक्रमण किया। चक्रायुध और धर्मपाल ने बिना युद्ध किये ही उसकी अधीनता स्वीकार कर ली और कन्नौज पर गोविन्द तृतीय का प्रभाव स्थापित हो गया। परन्तु नागभट्ट द्वितीय ने बुन्देलखण्ड में किसी स्थान पर

उससे युद्ध किया। नागभट्ट द्वितीय उस युद्ध में परास्त हुआ (809–810 ई)। परन्तु गोविन्द तृतीय भी अधिक समय उत्तर भारत में नहीं रह सका। वह दक्षिण भारत वापस चला गया। इस कारण, प्रतिहार और पाल शासकों में कन्नौज को प्राप्त करने के लिए पुनः प्रतिस्पर्धा आरम्भ हो गयी। गोविन्द तृतीय के वापस जाने के पश्चात् नागभट्ट द्वितीय और धर्मपाल दोनों को ही अपनी शक्ति को दृढ़ करने का अवसर मिला परन्तु दोनों में कोई युद्ध नहीं हुआ। सम्भवतया कन्नौज पर नागभट्ट का अधिकार हो गया।

4.2.4 चतुर्थ चरण (833 ई0 – 855 ई0)

परन्तु धर्मपाल के उत्तराधिकारी देवपाल (810–850 ई.) के शासन काल में यह संघर्ष पुनः आरम्भ हो गया। देवपाल ने नागभट्ट द्वितीय को पीछे हटने के लिए बाध्य किया, उत्तर– भारत में अपनी श्रेष्ठता को स्थापित किया तथा नवीन प्रतिहार–शासक मिहिरभोज (836–885 ई) को भी एक युद्ध में परास्त किया। परन्तु देवपाल के उत्तराधिकारी दुर्बल सिद्व हुए।

4.2.5 पाँचवा चरण (855–910 ई.)

बंगाल में देवपाल के उत्तराधिकारी क्रमशः विग्रहपाल और नारायणपाल बने, जिनकेसमय में पालों की शक्ति का पतन हुआ। इसी समय गुर्जर प्रतिहार वंश का शासक मिहिरभोज बना। उसने कन्नौज को अपने राज्य में शामिल किया। उसने राष्ट्रकूट शासक अमोघवर्ष की दुर्बलता का लाभ उठाकर पश्चिमी भारत में काठियावाड़ तक अपने राज्य का विस्तार किया। विद्वानों का मत है है कि इस समय राष्ट्रकूट एवं पाल वंश के मध्य छोटे –मोटे संघर्ष हुए, किंतु कोई निर्णायक युद्ध नहीं हुआ। इन परिस्थितियों का लाभ मिहिरभोज ने अपने साम्राज्य विस्तार में किया और उत्तर भारत के एक बड़े भाग पर अपना अधिपत्य स्थापित किया। अतः इस चरण में गुर्जर–प्रतिहार वंश उत्तर भारत में सर्वाधिक शक्तिशाली हो गए। मिहिरभोज के बाद उसका पुत्र महेंद्रपाल शासक बना और उसने भी प्रतिहार साम्राज्य को शक्तिशाली बनाए रखा।

4.2.6 छठा चरण (910 ई. से अन्त तक)

गुर्जर प्रतिहार वंश में महेन्द्रपाल के बाद महीपाल प्रथम शासक बना, किंतु वह राष्ट्रकूट शासक इन्द्र तृतीय का सामना न कर सका। इन्द्र तृतीय ने कन्नौज को नष्ट कर दिया। इन्द्र तृतीय के बाद राष्ट्रकूट वंश का पतन आरंभ हो गया। गुर्जर–प्रतिहार शासक महीपाल ने राष्ट्रकूटों की निर्बलता का लाभ

उठाया और पुनः कन्नौज पर अधिकार कर लिया, किंतु महीपाल के बाद प्रतिहार वंश में कमजोर शासक हुए। वे राज्य की रक्षा करने में असफल रहे और धीरे–धीरे इस वंश का पतन हो गया। नारायणपाल के बाद पालवंश का भी पतन आरंभ हो गया। अमोघवर्ष के बाद कृष्ण द्वितीय तक तो राष्ट्रकूट मजबूत रहे किन्तु कृष्ण तृतीय के समय राष्ट्रकूट वंश की निर्बलता उजागर हो गयी और धीरे–धीरे इस वंश का भी पतन हो गया।

त्रिकोणात्मक संघर्ष में भाामिल प्रमुख भाासक		
गुर्जर प्रतिहार वंश	**राष्ट्रकूट वंश**	**पाल वंश**
वत्सराज (775–800ई0)	ध्रुव (780–793ई0)	धर्मपाल (770–810ई0)
नागभट्ट द्वितीय (800–833ई0)	गोविन्द तृतीय (793–814ई0)	देवपाल (810–850ई0)
रामचन्द्र (833–836ई0)	अमोघवर्ष (814–880ई0)	विग्रहपाल (850–854ई0)
मिहिरभोज (836–885ई0)	कृष्ण द्वितीय (880–914ई0)	नारायण पाल (854–915ई0)

4.3 राष्ट्रकूट वंश

इनका शासनकाल लगभग छठी से तेरहवीं शताब्दी के मध्य था। इस काल में उन्होंने परस्पर घनिष्ठ परन्तु स्वतंत्र जातियों के रूप में राज्य किया, उनके ज्ञात प्राचीनतम शिलालेखों में सातवीं शताब्दी का 'राष्ट्रकूट' ताम्रपत्र मुख्य है, जिसमे उल्लिखित है कि 'मालवा प्रान्त' के मानपुर में उनका साम्राज्य था (जोकि आज मध्य प्रदेश राज्य में स्थित है), इसी काल की अन्य 'राष्ट्रकूट' जातियों में 'अचलपुर' (जो आधुनिक समय में महारास्ट्र में स्थित एलिच्पुर है), के शासक तथा 'कन्नौज' के शासक भी शामिल थे। इनके मूलस्थान तथा मूल के बारे में कई भ्रांतियाँ प्रचलित है। एलिच्पुर में शासन करने वाले 'राष्ट्रकूट' 'बादामी चालुक्यों' के उपनिवेश के रूप में स्थापित हुए थे लेकिन 'दान्तिदुर्ग' के नेतृत्व में उन्होंने चालुक्य शासक 'कीर्तिवर्मन द्वितीय' को वहाँ से उखाड़ फेंका तथा आधुनिक 'कर्णाटक' प्रान्त के 'गुलबर्ग' को अपना मुख्य स्थान बनाया। यह जाति बाद में 'मान्यखेत के राष्ट्रकूटों ' के नाम से विख्यात हो गई, जो 'दक्षिण

भारत' में ७५३ ईसवी में सत्ता में आई, इसी समय पर बंगाल का 'पाल साम्राज्य' एवं 'गुजरात के प्रतिहार साम्राज्य' 'भारतीय उपमहाद्वीप' के पूर्व और उत्तरपश्चिम भूभाग पर तेजी से सत्ता में आ रहे थे।

आठवीं से दसवीं शताब्दी के मध्य के काल में गंगा के उपजाऊ मैदानी भाग पर स्थित 'कन्नौज राज्य' पर नियंत्रण हेतु एक त्रिदलीय संघर्ष चला, उस वक्त 'कन्नौज' 'उत्तर भारत' की मुख्य सत्ता के रूप में स्थापित था। प्रत्येक साम्राज्य उस पर नियंत्रण करना चाह रहा था। 'मान्यखेत के राष्ट्रकूटों' की सत्ता के उच्चतम शिखर पर उनका साम्राज्य उत्तर दिशा में 'गंगा' और 'यमुना नदी' पर स्थित दोआब से लेकर दक्षिण में कन्याकुमारी तक था। यह उनके राजनीतिक विस्तार, वास्तु कलात्मक उपलब्धियों और साहित्यिक योगदान का काल था। इस राजवंश के प्रारंभिक शासक हिंदू धर्म के अनुयायी थे, परन्तु बाद में यह राजवंश जैन धर्म के प्रभाव में आ गया था।

दक्षिण भारत एवं गुजरात में मिले क्रमशः 75 शिलालेख 8 शिलालेख से इनके वंश के बारे में प्रकाश पड़ता है कि राष्ट्रकूट अपने आपको सात्यकी जो यदुवंशी था। महाभारत में नारायणी सेना के प्रमुख सात सेनापतियों में से एक था उसी के वंश का नाम राष्ट्रकूट है। विद्वान एवं इतिहासकार समर्थन करते हैं कि राष्ट्रकूट यदुवंशी क्षत्रिय है। 860 ई० के पूर्व राष्ट्रकूट राजाओं के वंश के बारे में कुछ भी ज्ञात नहीं था। गोविन्द तृतीय (880 ई०) द्वारा उत्कीर्ण एक शिलालेख में लिखा है कि ''इस महान राजा के जन्म से राष्ट्रकूट वंश वैसे ही अजेय हो गया जैसे भगवान कृष्ण के जन्म से यादव वंश हो गया था''। यह शिलालेख इस ओर स्पष्ट रूप से इशारा करते है कि राष्ट्रकूट यादव थे। हलायुध द्वारा लिखी गई किताब 'कविरहस्य' में भी राष्ट्रकूट राजाओं को यदुवंशी सात्यकी का वंशज लिखा गया है। अमोघवर्ष प्रथम द्वारा 950 ई० में लिखित एक ताम्र–पत्र में भी उन्होंने अपने आप को यादव बताया है। 914 ई० के ताम्र–पत्र में भी राष्ट्रकूट राजा'दन्तिदुर्ग' को यादव सात्यकी का वंशज लिखा गया है। इन बातों से सिद्ध होता है कि राष्ट्रकूट राजा यादव थे। ये कन्नड भाषा बोलते थे,लेकिन उन्हें उत्तर–ढक्कनी भाषा की जानकारी भी थी। अपने शत्रु चालुक्य वंश को पराजित करने वाले राष्ट्रकूट वंश के शासन काल में ही ढक्कन साम्राज्य भारत की दूसरी बड़ी राजनीतिक इकाई बन गया,जो मालवा से कांची तक फैला हुआ था। इस काल में राष्ट्रकूटों के महत्व का इस तथ्य से पता चलता है कि एक मुस्लिम यात्री ने यहाँ के राजा को दुनिया के चार महान शासकों में से एक बताया, अन्य तीन शासक खलीफा तथा बाइजंतिया और चीन के सम्राट थे।

प्रारंभिक मध्ययुगीन काल में भारत के विभिन्न भागों में राष्ट्रकूटों की अनेक शाखाएँ थीं। राष्ट्रकूटों के सबसे पहले ज्ञात शासक परिवार की स्थापना मन्नक द्वारा मान्यखेत में की गई थी। इसके पास पालिध्वज और गरुड़–लांछन था। एक दूसरा राष्ट्रकूट परिवार मध्य प्रदेश के बैतूल जिले में शासन कर रहा था। गरुड़ मुहर वाले 757 ई. के एंट्रोली–छारोली शिलालेख में चार पीढ़ियों, कर्क प्रथम, उनके बेटे ध्रुव, उनके बेटे गोविंद और उनके बेटे कर्क द्वितीय का उल्लेख है। ये गुजरात के लाट देश पर राज्य करने वाली मान्यखेत शाखा की एक सहायक शाखा थी। दन्तिदुर्ग राष्ट्रकूट साम्राज्य के संस्थापक थे। ऐसा लगता है कि वह कर्क II का समकालीन था। मान्यखेत शाखा के साथ इन राजाओं का सटीक संबंध निश्चितता के साथ तय नहीं किया जा सकता हालांकि राज्य की स्थापना दंतिदुर्ग ने की थी। उसने अपनी राजधानी मान्यखेट अथवा मालखेड़ को बनाया, जो आधुनिक शोलापुर के पास है! राष्ट्रकूटों की मान्यखेत शाखा जल्द ही दूसरी शाखाओं को अपने साथ मिलाकर एक प्रमुख व शाही शाखा बन गयी। हम राष्ट्रकूट राजाओं की एक वंशावली तैयार कर सकते हैं:

- दंति वर्मन
- इंद्र प्रथम
- गोविन्दराज
- कक्क प्रथम
- इंद्र द्वितीय
- दन्तिदुर्ग (पृथ्वीवल्लभ, महाराजाधिराज, परमेश्वर, परमभट्टारक)
- कृष्णराज प्रथम (शुभातुंग, अकालवर्ष,राजाधिराज,परमेश्वर)
- गोविंद द्वितीय (प्रभुत्व और विक्रमावलोक)
- ध्रुव (निरुपम, काली–वल्लभ, धारावर्ष, श्रीवल्लभ)
- गोविंद तृतीय (जगत्तुंग, कीर्ति–नारायण, जनवल्लम, त्रिभुवनघवल, प्रभुत्ववर्ष, श्रीवल्लभ)
- अमोघवर्ष प्रथम (सर्व) (नृपतुंग, अतिशयधवल, महाराज– शंड, वीर–नारायण) कृष्ण द्वितीय (अकालवर्ष और शुभातुंग)
- इंद्र तृतीय (नित्यवर्ष रहकंदर्प, कीर्ति नारायण, राजमार्तंड)
- अमोघवर्ष द्वितीय

- गोविंद चतुर्थ (सुवर्णवर्ष प्रभुत्ववर्ष, चाणक्यचतुर्मुख, नृपतित्रिनेत्र, विक्रान्तनारायणे)
- अमोघवर्ष तृतीय
- कृष्ण तृतीय (अकालवर्ष)
- खोट्टिग
- कर्क द्वितीय

4.4 पाल वंश

पाल साम्राज्य मध्यकालीन ''उत्तर भारत'' का सबसे शक्तिशाली और महत्वपूर्ण साम्राज्य माना जाता है, जो कि 750–1174 ईसवी तक चला। ''पाल राजवंश'' ने भारत के पूर्वी भाग में एक विशाल साम्राज्य बनाया। इस राज्य में वास्तु कला को बहुत बढावा मिला। पाल राजाओ के काल मे बौद्ध धर्म को बहुत बढावा मिला। पाल राजा हिन्दू थे, परन्तु वे बौद्ध धर्म को भी मानने वाले थे। पाल राजाओ के समय में बौद्ध धर्म को बहुत संरक्षण मिला। पाल राजाओं ने बौद्ध धर्म के उत्थान के लिए बहुत से कार्य किये जो कि इतिहास में अंकित है। पाल राजाओं ने हिन्दू धर्म को आगे बढ़ने के लिए शिव मंदिरों का निर्माण कराया और शिक्षा के लिए विश्वविद्यालयों का निर्माण करवाया। यह पूर्व–मध्यकालीन राजवंश था। जब हर्षवर्धन काल के बाद समस्त उत्तरी भारत में राजनीतिक, सामाजिक एवं आर्थिक गहरा संकट उत्पनन्न हो गया, तब बिहार, बंगाल और उड़ीसा के सम्पूर्ण क्षेत्र में पूरी तरह अराजकत फैली थी। इसी समय गोपाल ने बंगाल में एक स्वतन्त्र राज्य घोषित किया। जनता द्वारा गोपाल को सिंहासन पर आसीन किया गया जो कि एक गडरिया था। वह योग्य और कुशल शासक था, जिसने ७५० ई. से ७७० ई. तक शासन किया। इस दौरान उसने औदंतपुरी (बिहार शरीफ) में एक मठ तथा विश्वविद्यालय का निर्माण करवाया।

विभिन्न पुरालेखों और अभिलेखों की व्याख्या से इतिहासकारों ने पाल राजाओं के कालक्रम का इस तरह से निर्धारण किया है:

- गोपाल (पाल) (७५०–७७०)
- धर्मपाल (७७०–८१०)
- देवपाल (८१०–८५०)
- शूर पाल महेन्द्रपाल (८५० – ८५४)

- विग्रह पाल (८५४ – ८५५)
- नारायण पाल (८५५ – ९०८)
- राज्यो पाल (९०८ – ९४०)
- गोपाल २ (९४०–९६०)
- विग्रह पाल २ (९६० – ९८८)
- महिपाल (९८८ – १०३८)
- नय पाल (१०३८ – १०५५)
- विग्रह पाल ३ (१०५५ – १०७०)
- महिपाल २ (१०७० – १०७५)
- शूर पाल २ (१०७५ – १०७७)
- रामपाल (१०७७ – ११३०)
- कुमारपाल (११३० – ११४०)
- गोपाल ३ (११४० – ११४४)
- मदनपाल (११४४ – ११६२)
- गोविन्द पाल (११६२ – ११७४)

4.5 गुर्जर प्रतिहार वंश

गुर्जर–प्रतिहार राजवंश भारतीय उपमहाद्वीप में प्राचीन एवं मध्यकालीन दौर के संक्रमण काल में साम्राज्य स्थापित करने वाला एक राजवंश था जिसके शासकों ने मध्य–उत्तर भारत के बड़े हिस्से पर मध्य–8वीं सदी से 11वीं सदी के बीच शासन किया। इस राजवंश का संस्थापक प्रथम नागभट्ट था, जिनके वंशजों ने पहले उज्जैन और बाद में कन्नौज को राजधानी बनाते हुए एक विस्तृत भूभाग पर शासन किया। नागभट्ट द्वारा 725 ईसवी में साम्राज्य की स्थापना से पूर्व भी गुर्जर–प्रतिहारों द्वारा मंडोर, मारवाड़ इत्यादि इलाकों में सामंतों के रूप में 6ठीं से 9वीं सदी के बीच शासन किया गया किंतु एक संगठित साम्राज्य के रूप में इसे स्थापित करने का श्रेय नागभट्ट को जाता है।

उमय्यद खिलाफत के नेतृत्व में होने वाले अरब आक्रमणों का नागभट्ट और परवर्ती शासकों ने प्रबल प्रतिकार किया। कुछ इतिहासकार भारत की ओर इस्लाम के विस्तार की गति के इस दौर में धीमी होने का श्रेय इस राजवंश की

सबलता को देते हैं। दूसरे नागभट्ट के शासनकाल में यह राजवंश उत्तर भारत की सबसे प्रमुख राजनीतिक शक्ति बन गया था। मिहिर भोज और उसके परवर्ती महेन्द्रपाल प्रथम के शासन काल में यह साम्राज्य अपने चरमोत्कर्ष पर पहुँचा और इस समय इस साम्राज्य की सीमाएँ पश्चिम में सिंध से लेकर पूर्व में आधुनिक बंगाल तक और हिमालय की तलहटी से नर्मदा पार दक्षिण तक विस्तृत थीं। यह विस्तार मानों गुप्तकाल के अपने समय के सर्वाधिक राज्यक्षेत्र से स्पर्धा करता हुआ सा प्रतीत होता है। इस विस्तार ने तत्कालीन भारतीय उपमहाद्वीप में एक त्रिकोणीय संघर्ष को जन्म दिया जिसमें गुर्जर–प्रतिहारों के अलावा राष्ट्रकूट और पाल वंश शामिल थे। इसी दौरान इस राजवंश के राजाओं ने महाराजाधिराज की उपाधि धारण की।

गुर्जर–प्रतिहार विशेषकर शिल्पकला के लिए जाने जाते हैं। इनके शासन काल में उत्कीर्ण पटलों वाले और खुले द्वारांगन वाले मंदिरों का निर्माण हुआ। इस शैली का चरमोत्कर्ष हमें खजुराहो के मंदिरों में देखने को मिलता है, जिन्हें आज यूनेस्को की विश्व विरासत में शामिल किया जा चुका है।

प्रतिहारों की शक्ति राज्य के लिए आपसी संघर्ष के चलते क्षीण हुई। इसी दौरान इनकी शक्ति और राज्यक्षेत्र में पर्याप्त ह्रास की वजह राष्ट्रकूट राजा तृतीय इन्द्र का आक्रमण भी बना। इन्द्र ने लगभग 916 ई. में कन्नौज पर हमला करके इसे ध्वस्त कर दिया। बाद में अपेक्षाकृत अक्षम शासकों के शासन में प्रतिहार अपनी पुरानी प्रभावशालिता पुनः नहीं प्राप्त कर पाए। इनके अधीन सामंत अधिकाधिक मजबूत होते गए और 10वीं सदी आते आते अधीनता से मुक्त होते चले गये। इसके बाद प्रतिहारों के पास गंगा–दोआब के क्षेत्र से कुछ ज्यादा भूमि राज्यक्षेत्र के रूप में बची। आखिरी महत्वपूर्ण राजा राज्यपाल को महमूद गजनी के हमले के कारण 1018 ई. में कन्नौज छोड़ना पड़ा। उसे चंदेलों ने पकड़ कर मार डाला और उसके पुत्र त्रिलोचनपाल को एक प्रतीकात्मक राजा के रूप में राज्यारूढ़ करवाया। इस वंश का अंतिम राजा यशपाल था जिसकी 1036ई. में मृत्यु के बाद यह राजवंश समाप्त हो गया।

4.6 सारांश

इस प्रकार, गंगा–घाटी और कन्नौज को अधिकार में करने के प्रयलों के फलस्वरूप प्रतिहारों, पालों और राष्ट्रकूटों में जो त्रिदलीय संघर्ष हुआ उसमें प्रतिहारों को सफलता प्राप्त हुई। निस्सन्देह, राष्ट्रकूट–शासक इन्द्र तृतीय ने 915–918 ई. के मध्य एक बार पुनः उत्तर–भारत पर आक्रमण करके प्रतिहार–शासक महीपाल को परास्त किया और कन्नौज को भी लूटने में

सफलता पायी परन्तु सदैव की भाँति राष्ट्रकूटों की यह सफलता भी अस्थायी रही।

उत्तर भारत में वे और विस्तार न कर सके। इस संघर्ष का अन्तिम परिणाम पाल–वंश का बंगाल तक सीमित हो जाना तथा प्रतिहार और राष्ट्रकूटों की शक्ति का दुर्बल हो जाना था। दसवीं सदी के प्रारम्भिक काल में ही ये तीनों राजवंश पर्याप्त दुर्बल हो गये थे, जिसका परिणाम इन तीनों का पतन और भारत का विभिन्न राज्यों में बँट जाना था। प्रतिहारों के पश्चात् उत्तर–भारत को एक साम्राज्य में संगठित करने का प्रयल भी किसी ने नहीं किया। दूसरी तरफ 1000 ई. के पश्चात् भारत अपने आन्तरिक सामाजिक तनाव, नैतिक और धार्मिक पतन तथा राजनीतिक विकेन्द्रीकरण को रोकने में असमर्थ हो गया। ऐसे ही समय में तुर्को के आक्रमण हुए और अपनी दुर्बलताओं से ग्रस्त भारत उनका मुकाबला करने में असमर्थ रहा। तथा भारत में तुर्की सत्ता स्थापित हो गयी। वास्तव में भारत की दुर्बलता हर्ष की मृत्यु के समय में नहीं अपितु 1000 ई. के लगभग गुर्जर–प्रतिहार साम्राज्य के नष्ट हो जाने के समय से आरम्भ हुई। उस समय से भारत राजनीतिक दृष्टि से विभक्त हो गया, चक्रवर्ती सम्राटों का आदर्श नष्ट हो गया, सामाजिक विभक्तीकरण और उससे उत्पन्न तनाव स्पष्ट रूप से सामने आ गया, सम्पूर्ण देश नैतिक और धार्मिक पतन से पूर्ण हो गया तथा भारत का विदेशों से सम्पर्क नष्ट हो गया और इन सभी के कारण भारत और उसकी संस्कृति पतन के मार्ग पर अग्रसर हुई।

4.7 अभ्यासार्थ प्रश्न

1. कन्नौज के लिए होने वाले त्रिकोणीय संघर्ष के बारे में प्रकाश डालिये।

   .....

   .....

2. त्रिकोणात्मक संघर्ष में कौन कौन से साम्राज्य सम्मिलित थे?

   .....

   .....

3. त्रिकोणात्मक संघर्ष मे सम्मिलित शासकों के विषय में वर्णन कीजिये।

   .....

4.8 संदर्भ ग्रन्थ

झा व श्रीमाली : प्राचीन भारत का इतिहास, दिल्ली वि.वि. दिल्ली।

मजूमदार, आर.सी. : द ऐज ऑफ इम्पीरियल कन्नौज।

मजूमदार, आर.सी. : द स्ट्रगल फॉर एम्पायर।

त्रिपाठी, आर.एस. : हिस्ट्री ऑफ कन्नौज टू द मुस्लिम कनक्वेस्ट।

थापर, रोमिला : पूर्वकालीन भारत, दिल्ली वि.वि. दिल्ली।

शर्मा, प्रो0 कृष्णगोपाल : भारत का राजनीतिक एवं सांस्कृतिक इतिहास, राजस्थान हिन्दी ग्रन्थ अकादमी, जयपुर।

इकाई 5 पालवंश–स्रोत एवं प्रारम्भिक इतिहास, गोपाल, धर्मपाल एवं देवपाल

इकाई की रूपरेखा

5.0 प्रस्तावना

5.1 उद्देश्य

5.2 जानकारी के स्रोत

5.3 प्रारम्भिक इतिहास

5.3.1 गोपाल

5.3.2 धर्मपाल

5.3.3 देवपाल

5.3.4 परवर्ती पाल शासक एवं पाल वंश का पतन

5..4 सारांश

5.5 शब्दावली

5.6 बोध प्रश्न

5.7 सन्दर्भ ग्रन्थ

5.0 प्रस्तावना

गौड़ नरेश शशांक की मृत्यु के पश्चात लगभग एक शताब्दी तक बंगाल में अराजकता और अव्यवस्था का महौल बना रहा। 8वीं शताब्दी के मध्य में उत्तर भारत में एक अन्य बड़ा साम्राज्य बंगाल के पाल शासकों ने स्थापित किया। खालिमपुर अभिलेख के अनुसार यहाँ पर कुशासन एवं अव्यस्था से मत्स्य न्याय की स्थिति उत्पन्न हो गयी थी, जिससे परेशान होकर बंगाल की जनता ने अराजकता की समाप्ति के लिए गोपाल नामक व्यक्ति को अपना राजा निर्वाचित किया। गोपाल द्वारा स्थापित इस नवीन राजवंश को 'पालवंश' की संज्ञा प्रदान की जाती है। लगभग 400 वर्षो तक पाल शासकों के द्वारा बंगाल को शक्ति, समृद्धि और वैभव प्रदान किया गया। पाल वंश को तत्कालीन उत्तर भारत का सबसे शक्तिशाली और महत्वपूर्ण राजवंश माना जाता है। इस वंश के शासक बौद्ध धर्म के अनुयायी थे, जिन्होने बौद्ध धर्म के उत्थान के लिए

अनेकानेक कार्य किए।

5.1 उद्देश्य

पूर्व मध्यकाल में उत्तर भारत पर शासन करने वाले राजवंशों में पाल वंश का अपना महत्वपूर्ण स्थान है। इस इकाई में पालवंश के बारे में जानकारी उपलब्ध कराने हेतु विस्तृत सामग्री प्रस्तुत की गयी है। बंगाल प्रदेश पर शासन करने वाले पाल शासकों ने 8वीं शताब्दी के मध्य में उत्तर भारत में एक विशाल साम्राज्य स्थापित किया था। इस इकाई में प्रस्तुत सामग्री के अध्ययन से अवश्य ही पाल वंश के गौरवशाली इतिहास के बारे में विस्तृत जानकारी प्राप्त की जा सकती है।

5.2 जानकारी के स्रोत

पालवंश के इतिहास की जानकारी प्रदान करने वाले स्रोतों में साहित्यिक एवं पुरातात्विक दोनों प्रकार के साधन उपलब्ध है। पुरातात्विक स्रोतों के अन्तर्गत इस वंश के प्रमुख अभिलेखों का उल्लेख किया जा सकता है–

- धर्मपाल का खालिमपुर लेख।
- देवपाल का मुंगेर लेख।
- नारायणपाल का भागलपुर ताम्रपत्राभिलेख।
- नारायणपाल का बादल स्तम्भ लेख।
- महीपाल प्रथम के बानगढ़, नालन्दा तथा मुजफ्फरपुर से प्राप्त लेख।

इसके अतिरिक्त तत्कालीन गुर्जर–प्रतिहार तथा राष्ट्रकूट राजवंश के लेखों से भी पालवंश के इतिहास के बारे में जानकारी प्राप्त होती है।

साहित्यिक स्रोतों के अन्तर्गत सन्धाकरनन्दी कृत 'रामचरित' और बौद्ध ग्रन्थ 'आर्य–मंजू–श्री–मूलकल्प' से इस वंश के इतिहास के बारे में जानकारी प्राप्त की जा सकती है। साथ ही तिब्बती विद्वान तारानाथ के ग्रन्थों 'कंग्युर' तथा 'तंग्युर' से भी पाल वंश के बारे में जानकारी मिलती है।

5.3 प्रारम्भिक इतिहास

पालवंश के प्रारम्भिक इतिहास और इनकी उत्पत्ति के बारे में स्पष्ट जानकारी प्राप्त नहीं होती है। इस वंश की शुरूवात राजा गोपाल से होती है, जो इस वंश का संस्थापक था। धर्मपाल के खालिमपुर अभिलेख में गोपाल के

पिता का नाम वाप्यट और वाप्यट के पिता का नाम दयिता विष्णु मिलता है। तिब्बती विद्वान तारानाथ के अनुसार गोपाल का जन्म एक क्षत्रिय माहिला के गर्भ से हुआ था। इस आधार पर विद्वान पाल वंश के शासकों को क्षत्रिय ही मानते हैं। कुछ विद्वान मानते हैं कि पाल वंशी शासक किसी हीन जाति से सम्बंधित थे, राजपद प्राप्त कर लेने के पश्चात ये क्षत्रिय के रूप में प्रतिष्ठित हो गए थे। परन्तु इस बात का कोई सबल आधार मौजूद नहीं है। यहाँ पर एक बात स्पष्ट है कि 'पाल' शब्द किसी जाति या वर्ण का प्रतीक नहीं है, बल्कि यह इनके नाम के अन्त भाग का हिस्सा है। तारानाथ के अनुसार गोपाल की क्षत्रिय माता पुण्डवर्धन के समीप की रहने वाली थी। अतः इनका मूल निवास स्थान बंगाल के पुण्डवर्धन के समीप का क्षेत्र रहा होगा। इस प्रकार बंगाल में गोपाल के नेतृत्व में गौरवशाली पालवंश की शुरूआत हुई।

5.3.1 गोपाल

पाल शासक गोपाल का सिंहासन वंशानुगत आधार पर प्राप्त नहीं हुआ था, बल्कि बंगाल की जनता ने वहाँ पर व्याप्त अव्यवस्था की समाप्ति के लिए गोपाल को अपना राजा चुना था। इसकी पुष्टि धर्मपाल के खालिमपुर अभिलेख से होती हैं जिसमें कहा गया है कि अराजकता की स्थिति से दुःखी होकर बंगाल के सामन्तों ने जनता की सहमति से गोपाल को अपना राजा चुना। इस प्रकार गोपाल ने बंगाल में पालवंश के यशस्वी साम्राज्य की स्थापना की। गोपाल के द्वारा बंगाल में शान्ति और सुव्यवस्था की स्थापना की गयी तथा उसने अपने शासन के अन्त तक सम्पूर्ण बंगााल क्षेत्र पर अपना अधिकार स्थापित कर लिया। गोपाल बौद्ध धर्म का अनुयायी था, जिसने चार आर्य सत्यों के महान सिद्धान्त वाले बौद्ध धर्म को राजाश्रय प्रदान किया और नालन्दा में उसने एक बौद्ध विहार का निर्माण भी करवाया था। इसके बाद के सभी पाल शासकों ने इस परम्परा का पालन किया और बौद्ध धर्म के विकास में अपना योगदान दिया। धार्मिक प्रवृत्ति का होने के साथ ही गोपाल बड़े साम्राज्य की स्थापना के लिए युद्ध नीति को भी स्वीकार करता था। गोपाल लगभग 750 ई0 के आस–पास पालवंश की गद्दी पर आसीन हुआ था और 770 ई0 तक अपनी मृत्युपर्यंत राज्य करता रहा। इसके पश्चात पालवंश की सत्ता गोपाल के यशस्वी पुत्र धर्मपाल के हाथों में आ जाती है।

5.3.2 धर्मपाल

धर्मपाल गोपाल का पुत्र तथा उत्तराधिकारी था। राजा बनने के पश्चात धर्मपाल ने अपने साम्राज्य का विस्तार चारों तरफ किया और उत्तर भारत के

सम्राट के स्थान को अपनी भुजाओं के बल से प्राप्त किया। 770 ई0 में राजा बनने के पश्चात धर्मपाल ने अपने साम्राज्य का विस्तार करना अपना मुख्य लक्ष्य निर्धारित किया। इसी क्रम में सर्वप्रथम उसका संघर्ष गुर्जर–प्रतिहार शासक वत्सराज से हुआ। वत्सराज एक शक्तिशाली शासक था। वत्सराज से युद्ध में धर्मपाल बुरी तरह से पराजित हुआ। वत्सराज ने धर्मपाल से उसके दो श्वेत राजछत्र भी छीन लिए। इसकी पुष्टि गोविन्द तृतीय के राधनपुर अभिलेख तथा एक अन्य अभिलेख से भी होती है। डॉ0 आर. सी. मजूमदार के अनुसार दोनों के बीच यह युद्ध गंगा–यमुना दोआब क्षेत्र में कहीं पर हुआ था।

कालान्तर में धर्मपाल का संघर्ष राष्ट्रकूट शासक ध्रुव से हुआ। राष्ट्रकूट शासक ध्रुव एक शक्तिशाली शासक था। अपने अभियानों के क्रम में ध्रुव ने सर्वप्रथम प्रतिहार नरेश वत्सराज को पराजित कर उसे अपने राज्य क्षेत्र में रहने के लिए बाध्य कर दिया। तत्पश्चात ध्रुव ने पाल शासक धर्मपाल को भी पराजित किया। अपने शासनकाल के प्रारम्भिक वर्षों में धर्मपाल को यह दोनों पराजय झेलनी पड़ी, जो कि उसके लिए एक कलंक के समान है, परन्तु इन पराजयों से धर्मपाल निराश नहीं हुआ और अपनी शक्ति बढ़ाने का प्रयास करता रहा। धर्मपाल के खालिमपुर लेख में उसकी सैन्य शक्ति तथा विजयों की बहुत अधिक प्रसंशा की गयी है। इसके अनुसार उसकी विजयों के उपरान्त उसके हाथियों ने चारों समुद्रों में स्नान किया था। अपनी विजयों के क्रम में धर्मपाल ने सर्वप्रथम कन्नौज पर आक्रमण किया तथा वहाँ के शासक इन्द्रायुध को सिंहासन से हराकर उसके भाई चक्रायुध को अपनी तरफ से शासक नियुक्त किया। इस अवसर पर धर्मपाल ने कन्नौज में एक बड़े दरबार का आयोजन किया था। कन्नौज नगर तत्कालीन भारत का एक प्रतिष्ठित तथा महत्वपूर्ण नगर था। इस पर अधिकार स्थापित करना उस समय विशेष प्रतिष्ठा की बात मानी जाती थी। इसी कारण तत्कालीन उत्तर भारत की तीनों प्रमुख शक्तियों पाल, प्रतिहार और राष्ट्रकूटों ने इस नगर पर अधिकार करने की चेष्ठा की और अन्ततः गुर्जर–प्रतिहार शासकों ने सफलता प्राप्त किया। खालिमपुर अभिलेख के अनुसार–'धर्मपाल ने कन्नौज में एक शाही दरबार का आयोजन किया था और यहाँ पर पांचाल के वृद्धों ने उसका स्वामित्व स्वीकार कर लिया था तथा भोज, मत्स्य, मद्र, कुरू, यदु, यवन, अवन्ति, गान्धार और कीर के राजाओं ने भी नतमस्तक होकर धर्मपाल के प्रभुत्व को स्वीकार कर लिया था। धर्मपाल के कन्नौज पर अधिकार की पुष्टि परमार भोज के ग्वालियर अभिलेख से भी होती है।

पाल शासक धर्मपाल ने अपने विजय अभियानों के क्रम में उत्तर दिशा में

हिमालय पर्वत के विविध क्षेत्रों पर अधिकार स्थापित करने के लिए आक्रमण किया। देवपाल के मुंगेर ताम्रपत्र के अनुसार – धर्मपाल की दिग्विजयों के समय उसके सैनिको।ने केदार, गंगा सागर, गोकर्ण तथा अन्य तीर्थों में स्नान किया। इस प्रकार यह माना जा सकता है कि बंगाल, बिहार का पाल साम्राज्य धर्मपाल के प्रयासों से हिमालय के महत्वपूर्ण क्षेत्रों तक फैल गया। कवि सोढ्ढल ने अपने ग्रन्थ 'उदय सुन्दरी कथा' में धर्मपाल को 'उत्तरापथ स्वामी' की उपाधि से विभूषित किया है। उत्तर भारत की विजयों के पश्चात धर्मपाल ने पश्चिमोत्तर भारत पर अपना विजय अभियान किया। मद्र प्रदेश (आधुनिक पाकिस्तान का स्यालकोट जिला) तथा कीर (पूर्वी पंजाब क्षेत्र) क्षेत्र पर धर्मपाल के अधिकार की पुष्टि हो चुकी है। इसके साथ ही गांधार प्रदेश पर भी उसका नियन्त्रण स्थापित हो गया था। उसके अभिलेखों में जिन यवनों के दमन की बात कही गयी है, संभवतः वह सिन्धु प्रदेश में रहने वाले लोग थे। इससे पता चलता है कि सिन्ध प्रदेश पर भी उसका अधिकार स्थापित हो गया था।

इसके अतिरिक्त धर्मपाल ने कुछ अन्य विशिष्ट क्षेत्रों पर भी अपना प्रभाव स्थापित करने में सफलता प्राप्त किया था। इसके अन्तर्गत गुजरात काठियावाड़ का क्षेत्र, मत्स्य राज्य (अलवर, जयपुर और भरतपुर आदि राजस्थान के जनपदों) और मालवा के कुछ क्षेत्र सम्मिलित थे। हालांकि कुछ विद्वानों ने इस पर संदेह व्यक्त किया है।

धर्मपाल को अपने शासन के अन्तिम वर्षों में पराजय का सामना भी करना पड़ा। इस समय प्रतिहार साम्राज्य में नागभट्ट द्वितीय शासन कर रहा था, वह एक महत्वाकांक्षी शासक था। नागभट्ट ने कन्नौज पर आक्रमण कर वहाँ के शासक चक्रायुध (धर्मपाल के सामन्त) को युद्ध में पराजित किया तथा कन्नौज पर अपना अधिकार स्थापित कर लिया। इसके पश्चात प्रतिहार शासक नागभट्ट द्वितीय ने कन्नौज को अपनी राजधानी बनाया। मिहिरभोज के ग्वालियर लेख में उल्लिखित है कि नागभट्ट ने इस युद्ध में बंगपति को पराजित किया था। यह बंगपति बंगाल का पाल शासक धर्मपाल ही था। इसके पश्चात राष्ट्रकूट शासक गोविन्द तृतीय ने अपने उत्तर भारत पर किए गए अभियानों के क्रम में प्रतिहार शासक नागभट्ट द्वितीय को पराजित किया। इस पराजय के पश्चात नागभट्ट की बढ़ती हुई शक्ति पर विराम लग गया। धर्मपाल ने अपने सामन्त चक्रायुद्ध के साथ राष्ट्रकूट शासक गोविन्द तृतीय के सामने आत्म समर्पण कर दिया। इसके पश्चात गोविन्द तृतीय अपने राज्य वापस लौट गया। पाल शासक धर्मपाल ने अपना शेष जीवन शान्तिपूर्वक व्यतीत किया, परन्तु इन दोनों पराजयों की पीड़ा उसको आजीवन सताती रही होगी।

धर्मपाल एक शासक होने के साथ ही अनेक चारित्रिक गुणों से युक्त था। इसके कारण ही वह अन्य विविध क्षेत्रों में भी सफलताएं अर्जित किया। उसके खालिमपुर अभिलेख के अनुसार–उसने प्राचीन काल के महान सम्राटों–पृथु, राघव, राम, नल आदि को भी अपने गुणों से मात दे दी थी। यह एक कुशल सेनानायक तथा सेना संगठनकर्ता भी था। उसकी हाथियों और घोड़ों की सेना चक्रवर्ती सम्राट मान्धाता की सेना के समान थी। इसी सेना के बल पर ही वह एक महान विजेता सम्राट बना था। इसके साथ ही धर्मपाल कुशल राजनीतिज्ञ भी था, उसने समकालीन शक्तिओं से गौरवशाली कूटनीतिज्ञ सम्बन्ध भी बनाए थे। धर्मपाल ने स्वयं का विवाह राष्ट्रकूट राजकुमारी रण्णदेवी से किया था, जो कि उसके जीवन की एक महान उपलब्धि थी, क्योकि रण्णदेवी एक योग्य और पतिव्रता स्त्री थी। धर्मपाल की उपलब्धियों में निस्संदेह उसकी एक बड़ी भूमिका थी।

धर्मपाल अपने पूर्वजों की भाँति बौद्धधर्म का अनुयायी था। परन्तु वह अन्य धर्मों के प्रति भी आदरभाव रखता था। निस्संदेह बंगाल के नागरिकों का त्याग और उसके सामन्तों द्वारा स्वयं के स्वार्थ को त्यागकर एक राजा का चुनाव करना बंगाल की महानता का कारण बना। इस महानता में धर्मपाल का बहुत बड़ा योगदान था। वह एक कुशल कूटनीतिज्ञ एवं महान योद्धा सम्राट था। धर्मपाल ने अनेक युद्ध लड़े विभिन्न कठिन परिस्थितियों का सफलतापूर्वक सामना किया, प्रतिहारों के विरूद्ध राष्ट्रकूटों की शक्ति का प्रयोग करके उसका पूरा लाभ उठाया और अन्त में सफलतापूर्वक अपने शासन काल को पूरा किया। उसने परमेश्वर, परमभट्टारक और बंगाल प्रदेश को उत्तर–भारत की राजनीति में महत्वपूर्ण बना दिया। डॉ. आर. सी. मजूमदार के अनुसार–वह देश (बंगाल) जो आन्तरिक कलह के कारण बुरी तरह से विभाजित था और जिसे एक सदी से भी अधिक समय से विदेशी आक्रमणकारियों ने निरन्तर पद्दलित किया, उसके द्वारा एक ऐसे शक्तिशाली और संगठित राज्य की श्रेणी में उठा दिया गया जिसका स्वामित्व उत्तर–भारत के बहुत बड़े भाग पर था। अन्ततोगत्वा, एक महान गौड़ साम्राज्य की स्थापना का सपना, जो शशांक द्वारा देखा गया था, वह बंगाल प्रदेश में पूरा हुआ।

इसके अतिरिक्त धर्मपाल धर्म, साहित्य और ललित कलाओं का संरक्षक भी था। उसने मगध क्षेत्र में गंगा नदी के तट पर विक्रमशिला बौद्ध बिहार की स्थापना की, जो बौद्ध शिक्षा का एक महान केन्द्र बना। धर्मपाल ने नालन्दा विश्वविद्यालय के खर्च के लिए 200 गाँवों को दान में दिया था। राजशाही जिले में उसने एक बड़े बौद्ध विहार की स्थापना भी की थी। नेपाल के बौद्ध ग्रन्थों में

पाल शासक धर्मपाल की गौरव गाथा का गुणगान किया गया है। अपनी मृत्यु के समय (810ई0) में वह अपने पुत्र देवपाल के लिए एक विस्तृत साम्राज्य छोड़ गया। इस प्रकार धर्मपाल ने 770–810 ई0 तक शासन किया।

5.3.3 देवपाल

देवपाल एक योग्य पिता का सुयोग्य पुत्र सिद्ध हुआ। देवपाल धर्मपाल की राष्ट्रकूट वंशीया पत्नी रण्णदेवी से पैदा हुआ था। देवपाल ने न केवल अपने पिता से प्राप्त साम्राज्य को सुरक्षित रखा अपितु उसका विस्तार भी किया। देवपाल के समय भी उसके मुख्य प्रतिद्वन्द्वी प्रतिहार शासक ही थे। प्रतिहार शासक नागभट्ट ने पूर्व में बढ़कर कन्नौज तक अपना शासन कायम कर लिया था। देवपाल ने उसे पीछे हटने के लिए बाध्य किया और इसी अवसर पर देवपाल ने उत्तर–भारत की विजय यात्रा प्रारम्भ की। लेखों में यह कहा गया है कि देवपाल ने हिमालय से लेकर विन्ध्य पर्वत तक आक्रमण किया और सफलताएं अर्जित किया। उसने उत्तर–पश्चिम में कम्बोज और पंजाब तक आक्रमण किया, पूर्व में उसने असम तक के प्रदेश को विजित किया, इसके साथ ही उसने उत्कल की भी विजय की, गुर्जर प्रतिहार शासक नागभट्ट की सीमाओं पर उसने आक्रमण किया और संभवतः दक्षिण में उसने राष्ट्रकूट एवं पाण्ड्य शासकों से युद्ध किया। प्रतिहार शासक मिहिरभोज से भी इसका युद्ध हुआ और मिहिरभोज पराजित हुआ था।

पाल शासक देवपाल ने अपने सैनिक जीवन में अनेक सफलताएं अर्जित किया। निस्संदेह उसका प्रत्यक्ष शासन बंगाल और बिहार तक ही सीमित था, परन्तु उत्तर–भारत के अनेक शासक उसके आधिपत्य को स्वीकार करते थे। उत्तर–भारत में उसके एक मात्र विरोधी गुर्जर–प्रतिहार शासक थे, जो उसके विरूद्ध सफलता नहीं पा सके। देवपाल की मृत्यु के बाद प्रतिहार शासक मिहिर भोज कन्नौज तथा उत्तर–भारत में प्रतिहारों की शक्ति और प्रतिष्ठा को स्थापित करने में सफल हो सका था। पाल शासक देवपाल ने न केवल प्राचीन भारतीय राजनीति में एक महत्वपूर्ण स्थान प्राप्त किया। बल्कि उसकी ख्याति विदेशों में भी फैल गयी। दक्षिण–पूर्व एशिया के शैलेन्द्रवंशी शासक बालपुत्र देव को उसके अनुरोध पर देवपाल ने उसे नालन्दा में एक बौद्ध बिहार बनवाने के लिए पाँच गाँव दान में दिया था। संभवतः देवपाल उत्तर–भारत का पहला शासक था, जिसने सुदूर दक्षिण के पाण्ड्य शासकों के विरूद्ध दक्षिण के अन्य राज्यों को सैनिक सहायता प्रदान की थी। नारायणपाल के समय के बादल लेख से पता चलता है कि देवपाल ने हूणों पर भी विजय प्राप्त किया था। इस लेख में

पराजित होने वाले हूण शासक का नाम नहीं मिलता है। परन्तु यह स्पष्ट है कि उसके समय में भी प्राचीन मगध साम्राज्य की सीमाओं के आस–पास कहीं हूण सत्ता के प्रमाण रहे होंगे निश्चित ही देवपाल ने इन हूण नरेशों पर विजय प्राप्त किया होगा।

इस प्रकार स्पष्ट है कि देवपाल पाल वंश का महानतम शासक था, उसके नेतृत्व में पाल साम्राज्य अपने चरमोत्कर्ष को प्राप्त हुआ। देवपाल ने लगभग 40 वर्षों तक शासन किया। देवपाल ने मुंगेर को अपनी राजधानी बनाया था। अपनी सैनिक सफलताओं के अतिरिक्त देवपाल ने बौद्ध धर्म, साहित्य और कला को भी संरक्षण प्रदान किया। लेखों में उसे 'परमसौगात' कहा गया है। अरब यात्री सुलेमान ने देवपाल को प्रतिहार और राष्ट्रकूट शासकों से अधिक सैन्य शक्ति वाला शासक कहा है। उसने नालन्दा और विक्रमशिला जैसे शिक्षण संस्थाओं के विकास में अपना योगदान दिया। निस्संदेह देवपाल अपने पिता धर्मपाल की भाँति एक सफल शासक सिद्ध हुआ। डॉ0 आर. सी. मजूमदार के अनुसार–'बंगाल के इतिहास में सबसे अधिक प्रसिद्धि धर्मपाल एवं देवपाल के शासन काल को मिली। इसके पूर्व एवं इसके बाद तक अंग्रेजों के आने के समय तक बंगाल ने भारतीय राजनीति में इतना अधिक महत्वपूर्ण भाग नहीं लिया।' देवपाल ने 810–850 ई0 तक शासन किया। उसके उत्तराधिकारी निर्बल और अयोग्य सिद्ध हुए, जिसके कारण पाल साम्राज्य पतन की और अग्रसर हो गया। देवपाल के बाद विग्रहपाल प्रथम शासक बना, जिसका शासन अल्पकालीन रहा। विग्रहपाल के पुत्र नारायण पाल (854–908ई0) के समय 860 ई0 में राष्ट्रकूटों ने तथा उसके बाद गुर्जर–प्रतिहार किया। इन पराजयों से पाल साम्राज्य की प्रतिष्ठा को ठेस पहुँची। प्रतिहार शासक महेन्द्रपाल ने नारायण पाल से मगध तथा उत्तरी बंगाल को जीत लिया। इसी के समय उड़ीसा और कामरूप (असम प्रदेश) राज्य स्वतंत्र हो गए। इसके परिणाम स्वरूप पाल साम्राज्य सिमट सा गया। हालांकि अपने शासन काल के अन्तिम समय में नारायणपाल ने उत्तरीबंगाल तथा दक्षिणी बिहार को प्रतिहार शासकों से छीनने में पुनः सफलता प्राप्त किया। नारायणपाल के बाद क्रमशः राज्यपाल, गोपाल द्वितीय, और विग्रह पाल द्वितीय ने लगभग 80 वर्षो तक शासन किया। ये सभी अयोग्य एवं निर्बल शासक थे। इनके समय में चन्देल, कलचुरि और कम्बोज शासकों ने पाल साम्राज्य पर आक्रमण कर राज्य के विभिन्न भागों पर अधिकार कर लिया तथा पूर्वी एवं दक्षिणी बंगाल क्षेत्र पर 'चन्द्र वंश' के शासकों ने अपना अलग स्वतंत्र राज्य बना लिया।

5.3.4 परवर्ती पाल भाासक एवं पाल वंश का पतन

विग्रहपाल द्वितीय का उत्तराधिकारी महीपाल प्रथम हुआ जिसने पुनः पाल वंश की प्रतिष्ठा को स्थापित किया। महीपाल प्रथम ने 988 से 1038ई. तक शासन किया। उसने उत्तरी, पश्चिमी एवं पूर्वी बंगाल को कम्बोज और चन्द्र–शासकों से छीन लिया तथा सम्पूर्ण बिहार को जीत लिया और सम्भवतः बनारस तक अपने राज्य की सीमाओं का विस्तार किया। परन्तु महीपाल प्रथम की शक्ति को एक बड़ी क्षति 1021–1023 ई में हुए चोल–आक्रमणों ने पहुँचाई। चोल–शासक राजेन्द्र चोल के एक सेनापति ने बंगाल पर आक्रमण किया और उसे परास्त कर दिया। चोल स्वयं तो अधिक समय बंगाल में न रह सके परन्तु उन्होने महीपाल प्रथम के कुछ अधीनस्थ सामन्तों को विद्रोह करने तथा 1026 ई. के निकट गांगेयदेव कलचुरि को बंगाल पर आक्रमण करने के लिए प्रोत्साहित किया, जिसके परिणाम स्वरूप महीपाल को अपने राज्य का कुछ भाग खोना पडा। परन्तु इन असफलताओं के बावजूद भी महीपाल बंगाल और बिहार के पर्याप्त बड़े भाग को अपने अधिकार में रखकर पाल वंश की शक्ति को पुनः स्थापित करने में सफल हुआ। महीपाल ने बंगाल में कई नगरों और तालाबों का निर्माण कराया। उसने सारनाथ, नालन्दा और बनारस के अनेक बौद्ध–विहारों को दान दिया तथा नवीन विहारों का निर्माण कराया।

महीपाल का उत्तराधिकारी उसका पुत्र नयपाल हुआ, जिसने 1038–1055 ई. तक राज्य किया। नयपाल के समय की एक मुख्य घटना कलचुरि शासकों से युद्ध है। यह युद्ध इतनी भीषणता से लड़ा गया कि अन्त में तत्कालीन बौद्ध विद्वान दीपांकर सृजनन को उसमें हस्तक्षेप करना पड़ा और दोनों में सन्धि हो गयी जिसके द्वारा दोनों ने जीते हुए प्रदेश एक–दूसरे को वापस कर दिये। नयपाल के पश्चात विग्रहपाल तृतीय (1055–1070 ई.) शासक हुआ। विग्रहपाल तृतीय के समय में बंगाल पर पुनः आक्रमण हुए। कलचुरि शासक कर्ण ने नयपाल के समय में हुई सन्धि को ठुकराकर बंगाल पर आक्रमण किया और पश्चिमी बंगाल की सीमाओं तक पहुँच गया। परन्तु अन्त में दोनों में सन्धि हो गयी और कर्ण ने अपनी पुत्री का विवाह विग्रहपाल तृतीय से कर दिया। इसके पश्चात् चालुक्य–शासक विक्रमादित्य ‘ाष्ठ और उसके पश्चात् कौसल के शासक ययाति ने बंगाल पर आक्रमण किया। इन आक्रमणों के कारण विग्रहपाल तृतीय की शक्ति को बहुत धक्का लगा और पूर्वी बंगाल तथा अन्य भागों में स्वतन्त्र राज्य स्थापित हो गये। विग्रहपाल तृतीय बड़ी कठिनाई से गौड़ और मगध पर अपना शासन कायम रख सका। 1070 ई. में विग्रहपाल तृतीय का पुत्र महीपाल द्वितीय शासक हुआ। परन्तु महीपाल द्वितीय अयोग्य

शासक सिद्ध हुआ। उसके सामन्तों ने उसके विरूद्ध विद्रोह किया और उन्हीं में से एक दिव्य अथवा दिवोक ने उत्तरी बंगाल (बरेन्द्र) में एक स्वतन्त्र राज्य स्थापित कर लिया। महीपाल द्वितीय मारा गया और बंगाल के अन्य भागों में भी स्वतन्त्र राज्य स्थापित हो गये।

महीपाल द्वितीय ने शूरपाल और रामपाल नामक अपने दो भाइयों को कैद में डाल दिया था। वे दोंनों भाई अवसर पाकर मगध भाग गये और शूरपाल ने कुछ समय तक मगध पर अपना शासन किया। शूरपाल की मृत्यु के पश्चात् रामपाल ने मगध पर शासन किया और पुनः पाल वंश की प्रतिष्ठा को स्थापित किया तथा बंगाल पर अधिकार कर लिया। रामपाल ने उत्तरी बंगाल के शासक और दिव्य के वंशज भीम को परास्त करके उत्तरी बंगाल को पुनः विजित किया। रामपाल ने असम के शासक को परास्त करके उसे अपनी अधीनता में ले लिया। उसने उड़ीसा के आन्तरिक झगड़ों में भाग लेकर उड़ीसा में कलिंग राज्य के बढ़ते हुए प्रभाव को रोकने का प्रयत्न किया। उसने कन्नौज के शासक गोविन्दचन्द्र से विवाह–सम्बन्ध स्थापित किये और शक्ति–प्रदर्शन द्वारा उसको आगे बढ़ने से रोके रखा तथा पश्चिमी बंगाल के सेन–शासक और उत्तरी बिहार के शासक नन्यदेव के प्रभाव को बढने से रोका। रामपाल पाल वंश का अन्तिम योग्य शासक था, जिसने मगध को आधार बनाकर बंगाल में पुनः पाल वंश की शक्ति को स्थापित किया। 1120 ई. में रामपाल की मृत्यु हो गयी और उसके पश्चात् पाल वंश का पतन प्रारम्भ हो गया।

रामपाल के पश्चात क्रमशः कुमारपाल, गोपाल तृतीय और मदनपाल ने शासन किया। उसका कुल शासन 30 वर्ष का रहा। उसके समय में आन्तरिक संघर्षों, सामन्तों के विद्रोहों और विदेशी आक्रमणों ने पालवंश को क्षति पहुंचाई। कुमारपाल के समय में कामरूप (असम) में विद्रोह हुआ कुमारपाल ने अपने मंत्री वैद्यदेव को उसे दबाने के लिए भेजा। बैद्यदेव ने विद्रोह को तो दबा दिया परन्तु कामरूप में अपने स्वतंत्र राज्य की स्थापना कर ली। उसी प्रकार पूर्वी बंगाल के अधीन सामन्त भोज वर्मा ने अपने को स्वतंत्र शासक बना लिया उसी समय पाल शासकों पर अन्य शासकों ने आक्रमण किये। कलिंग के शासक अनन्त वर्मा ने उड़ीसा पर अधिकार करके बंगाल में हुगली तक आक्रमण किये और कन्नौज के शासक गोविन्द चन्द्र ने पटना पर अधिकार कर लिया। परन्तु पालवंश के मुख्य शत्रु सेन और नन्य शासक सिद्ध हुए। विजयसेन ने मदनपाल से गौड़ को छीन लिया और गांगेयदेव ने उससे उत्तरी बिहार छीन लिया जिसके कारण पालवंश के अन्तिम शासक मदनपाल की शक्ति केवल मध्य बिहार तक सीमित रह गयी। मदनपाल के उत्तराधिकारियों के बारे में जानकारी

का अभाव है। 12वीं सदी के मध्य तक पाल वंश समाप्त हो गया और उसके अन्तिम शासक मदनपाल की मृत्यु के समय वह मात्र एक साधारण सामन्त था।

5.4 सारांश

इस प्रकार उपर्युक्त विवेचन से स्पष्ट है कि पाल शासकों के द्वारा बंगाल में एक समृद्धशाली साम्राज्य की स्थापना की गयी। पाल शासकों के द्वारा लगभग 400 वर्षों तक भारतीय राजनीति में बंगाल के महत्व को बरकरार रखा गया। इनके शासन काल में बंगाल का राजनैतिक एवं सांस्कृतिक दोनों ही दृष्टियों से महत्वपूर्ण विकास हुआ। पाल शासक बौद्ध धर्मानुयायी थे, उनके द्वारा बौद्ध धर्म को राजाश्रय प्रदान किया गया था। बौद्ध धर्म के प्रति लगाव के कारण उन्होंने बंगाल और बिहार में अनेक चैत्य एवं विहारों का निर्माण करवाया। इसके अतिरिक्त पाल शासकों नें ब्राह्मणों को भी दान दिया तथा मंदिरों के निर्माण में सहयोग किया, जो कि उनके धर्मसहिष्णु होने का परिचायक है। धर्म के अतिरिक्त पाल शासकों ने अपने साम्राज्य में शिक्षा एवं साहित्य के विकास में अपना योगदान किया। सोमपुरी, उदन्तपुर तथा विक्रमशिला में विद्यापीठ की स्थापना की गयी। साथ ही नालन्दा विश्वविद्यालय के विकास में भी योगदान किया गया। धर्मपाल के द्वारा स्थापित विक्रमशिला विश्वविद्यालय कालान्तर में एक प्रतिष्ठित विश्वविद्यालय बन गया। 12वीं शताब्दी ई0 में यहाँ पर लगभग तीन हजार विद्यार्थी अध्ययन, न्याय, तन्त्र विद्या आदि की शिक्षा प्रदान की जाती थी। विक्रमशिला विश्वविद्यालय में देश – विदेश से लोग शिक्षा प्राप्त करने आते थे। 1203ई0 में मुस्लिम आक्रमणकारी बख्तियार खिलजी के द्वारा विक्रमशिला विश्वविद्यालय को नष्ट कर दिया गया। इसके अतिरिक्त पाल शासकों के द्वारा बंगाली भाषा और साहित्य के विकास में भी योगदान किया गया। उनके समय चित्रकला, मूर्तिकला और स्थापत्य कला का ऐसा विकास हुआ, जिसे दक्षिण–पूर्व एशिया तक के देशों ने भी अपनाया।

5.5 शब्दावली

रामचरित : 'रामचरित' नामक ग्रन्थ की रचना सन्ध्याकर नंदी के द्वारा की गई है। इस ग्रन्थ में पाल शासक रामपाल की उपलब्धियों का वर्णन किया गया है। यह पाल वंश के बारे में जानकारी प्रदान करने वाला महत्वपूर्ण ग्रन्थ है।

विक्रमशिला : यह स्थल बिहार राज्य के भागलपुर जिले में स्थित है। 8वीं शताब्दी ई0 में पाल शासक धर्मपाल ने यहाँ पर एक महत्वपूर्ण बौद्ध शिक्षा

केन्द्र की स्थापना की, जिसे विक्रमशिला विश्वविद्यालय के नाम से जाना जाता है।

5.6 बोध प्रश्न

1. पाल वंश के इतिहास की जानकारी प्रदान करने वाले स्रोतों की चर्चा कीजिए?
2. पाल वंश के प्रारम्भिक इतिहास पर प्रकाश डालिए।
3. पाल शासक धर्मपाल की उपलब्धियों का वर्णन कीजिए ?
4. पाल शासक देवपाल की उपलब्धियों का वर्णन कीजिए ?

5.7 सन्दर्भ–ग्रन्थ

- पाण्डेय, विमलचन्द्र, *प्राचीन भारत का राजनीतिक एवं सांस्कृतिक इतिहास,* सेन्ट्रल बुक डिपो, प्रयागराज।
- पाठक, विशुद्धानन्द, *उत्तर भारत का राजनीतिक इतिहास,* उत्तर प्रदेश हिन्दी संस्थान, लखनऊ।
- पाण्डेय, आर.एन., *प्राचीन भारत का राजनीतिक एवं सांस्कृतिक इतिहास,* इण्डिया बुक एजेंसी, प्रयागराज।
- श्रीवास्तव, के.सी., *प्राचीन भारत का इतिहास तथा संस्कृति,* यूनाईटेड बुक डिपो, प्रयागराज।
- सिंह, उपिन्दर, *प्राचीन एवं पूर्व मध्यकालीन भारत का इतिहास,* पियर्सन इण्डिया एजुकेशन सर्विसेज प्रा .लि. नई दिल्ली।

इकाई 6 गुर्जर–प्रतिहार वंश–स्रोत एवं प्रारम्भिक इतिहास– नागभट्ट प्रथम, मिहिरभोज

इकाई की रूपरेखा

6.0 प्रस्तावना

6.1 उद्देश्य

6.2 ऐतिहासिक स्रोत

6.3 गुर्जर–प्रतिहार वंश की उत्पत्ति

6.4 प्रारम्भिक इतिहास

6.5 नागभट्ट प्रथम

6.5.1 अरब आक्रमण

6.5.2 नागवलोक से पहचान

6.6 मिहिरभोज

6.7 सारांश

6.8 अभ्यासार्थ प्रश्न

6.9 संदर्भ ग्रन्थ

6.0 प्रस्तावना

गुर्जर–प्रतिहार राजवंश भारतीय उपमहाद्वीप में प्राचीन एवं मध्यकालीन दौर के संक्रमण काल में साम्राज्य स्थापित करने वाला एक राजवंश था जिसके शासकों ने मध्य–उत्तर भारत के बड़े हिस्से पर मध्य 8वीं सदी से 11वीं सदी के बीच शासन किया। इस राजवंश का संस्थापक प्रथम नागभट्ट था, जिनके वंशजों ने पहले उज्जैन और बाद में कन्नौज को राजधानी बनाते हुए एक विस्तृत भूभाग पर शासन किया। नागभट्ट प्रथम द्वारा 725 ईसवी में साम्राज्य की स्थापना से पूर्व भी गुर्जर–प्रतिहारों द्वारा मंडोर, मारवाड़ इत्यादि इलाकों में सामंतों के रूप में 6ठीं से 9वीं सदी के बीच शासन किया गया किंतु एक संगठित साम्राज्य के रूप में इसे स्थापित करने का श्रेय नागभट्ट को जाता है।

उमय्यद खिलाफत के नेतृत्व में होने वाले अरब आक्रमणों का नागभट्ट और परवर्ती शासकों ने प्रबल प्रतिकार किया। कुछ इतिहासकार भारत की ओर

इस्लाम के विस्तार की गति के इस दौर में धीमी होने का श्रेय इस राजवंश की सबलता को देते हैं। दूसरे नागभट्ट के शासनकाल में यह राजवंश उत्तर भारत की सबसे प्रमुख राजनीतिक शक्ति बन गया था। मिहिर भोज और उसके परवर्ती महेन्द्रपाल प्रथम के शासन काल में यह साम्राज्य अपने चरमोत्कर्ष पर पहुँचा और इस समय इस साम्राज्य की सीमाएँ पश्चिम में सिंध से लेकर पूर्व में आधुनिक बंगाल तक और हिमालय की तलहटी से नर्मदा पार दक्षिण तक विस्तृत थीं। यह विस्तार मानों गुप्तकाल के अपने समय के सर्वाधिक राज्यक्षेत्र से स्पर्धा करता हुआ सा प्रतीत होता है। इस विस्तार ने तत्कालीन भारतीय उपमहाद्वीप में एक त्रिकोणीय संघर्ष को जन्म दिया जिसमें गुर्जर–प्रतिहारों के अलावा राष्ट्रकूट और पाल वंश शामिल थे। इसी दौरान इस राजवंश के राजाओं ने महाराजाधिराज की उपाधि धारण की।

गुर्जर–प्रतिहार विशेषकर शिल्पकला के लिए जाने जाते हैं। इनके शासन काल में उत्कीर्ण पटलों वाले और खुले द्वारांगन वाले मंदिरों का निर्माण हुआ। इस शैली का चरमोत्कर्ष हमें खजुराहो के मंदिरों में देखने को मिलता है जिन्हें आज यूनेस्को की विश्व विरासत में शामिल किया जा चुका है।

6.1 उद्देश्य

इस इकाई का मुख्य उद्देश्य आपको गुर्जर प्रतिहार वंश के प्रारम्भिक इतिहास, इतिहास जानने के स्रोत तथा नागभट्ट प्रथम और मिहिरभोज से संबंधित जानकारी प्रदान करना है।

6.2 ऐतिहासिक स्रोत

अग्निकुल के राजपूतों में सर्वाधिक प्रसिद्ध प्रतिहारवंश था जो गुर्जरों की शाखा से सम्बन्धित होने के कारण इतिहास में गुर्जर–प्रतिहार कहा जाता है। इस वंश की प्राचीनता पाँचवीं शती तक जाती है। पुलकेशिन् द्वितीय के ऐहोल लेख में गुर्जर जाति का उल्लेख सर्वप्रथम हुआ है। बाण के हर्षचरित में भी गुर्जरों का उल्लेख किया गया है। चीनी यात्री हुएनसांग कु–चे–लो (गुर्जर) देश का उल्लेख करता है जिसकी राजधानी पि–लो–मो–ली अर्थात भीनमल में थी।

गुर्जर–प्रतिहार वंश के इतिहास के प्रामाणिक साधन उसके बहुसंख्यक अभिलेख है। इनमें सर्वाधिक उल्लेखनीय मिहिरभोज का ग्वालियर अभिलेख है जो एक प्रशस्ति के रूप में हैं। इसमें कोई तिथि अंकित नहीं है। यह प्रतिहार वंश के शासकों की राजनैतिक उपलब्धियों तथा उनकी वंशावली को ज्ञात करने का मुख्य साधन है।

इसके अतिरिक्त इस वंश के राजाओं के अन्य अनेक लेख मिलते है जो न्यूनाधिक रूप में उनके काल की घटनाओं पर प्रकाश डालते है। प्रतिहारों के समकालीन पाल तथा राष्ट्रकूट वंशों के लेखों से प्रतिहार शासकों का उनके साथ सम्बन्धों का ज्ञान होता है। उनके सामन्तों के लेख भी मिलते हैं जो उनके साम्राज्य विस्तार तथा शासन–सम्बन्धी घटनाओं पर प्रकाश डालते है।

प्रतिहार युग में अनेक साहित्यिक कृतियों की रचना हुई। इनके अध्ययन से भी तत्कालीन राजनीति तथा संस्कृति का ज्ञान होता है। संस्कृत का प्रसिद्ध विद्वान् राजशेखर प्रतिहार राजाओं–महेन्द्रपाल प्रथम तथा उसके पुत्र महीपाल प्रथम के दरवार में रहा था। उसने काव्यमीमांसा, कर्पूरमन्जरी, विद्धशालभंजिका, बालरामायण, भुवनकोश आदि ग्रन्थों की रचना की थी।

इनके अध्ययन से तत्कालीन समाज एवं संस्कृति का ज्ञान होता है। जयानक कवि द्वारा रचित 'पृथ्वीराजविजय' से पता चलता है कि चाहमान शासक दुर्लभराज प्रतिहार वत्सराज का सामन्त था तथा उसकी ओर से पालों के विरुद्ध संघर्ष किया था। जैन लेखक चन्द्रप्रभसूरि के ग्रन्थ 'प्रभावकप्रशस्ति' से नागभट्ट द्वितीय के विषय में कुछ सूचनायें मिलती है।

कश्मीरी कवि कल्हण की 'राजतरंगिणी' से मिहिरभोज की उपलब्धियों का ज्ञान प्राप्त होता है। समकालीन अरब लेखकों के विवरण भी प्रतिहार इतिहास पर कुछ प्रकाश डालते हैं। इनमें सुलेमान का विवरण उल्लेखनीय है। वह मिहिरभोज की शक्ति एवं उसके राज्य की समृद्धि की प्रशंसा करता है।

दूसरा लेखक अलमसूदी है जो दसवीं शताब्दी के प्रारम्भ में पंजाब आया था। उसके विवरण से महीपाल प्रथम के विषय में कुछ सूचनायें प्राप्त होती है। प्रायः सभी मुसलमान लेखक प्रतिहारों की शक्ति, देशभक्ति तथा समृद्धि की प्रशंसा करते है। इस प्रकार अभिलेख, साहित्य तथा अरब लेखकों के विवरण, इन तीनों का उपयोग हम प्रतिहार वंश के इतिहास का अध्ययन करने के लिये करते हैं।

6.3 गुर्जर–प्रतिहार वंश की उत्पत्ति

'प्रतिहार वंश' को गुर्जर प्रतिहार वंश (छठी शताब्दी से 1036 ई.) इसलिए कहा गया, क्योंकि ये गुर्जरों की ही एक शाखा थे, जिनकी उत्पत्ति गुजरात व दक्षिण–पश्चिम राजस्थान में हुई थी। प्रतिहारों के अभिलेखों में उन्हें श्रीराम के अनुज लक्ष्मण का वंशज बताया गया है, जो श्रीराम के लिए प्रतिहार (द्वारपाल) का कार्य करता था। कन्नड़ कवि 'पम्प' ने महिपाल को 'गुर्जर राजा' कहा है।

'स्मिथ' ह्वेनसांग के वर्णन के आधार पर उनका मूल स्थान आबू पर्वत के उत्तर–पश्चिम में स्थित भीनमल को मानते हैं। कुछ अन्य विद्वानों के अनुसार उनका मूल स्थान अवन्ति था।

विभिन्न राजपूत वंशों की उत्पत्ति के समान गुर्जर–प्रतिहारवंश की उत्पत्ति भी विवादग्रस्त है। राजपूतों की उत्पत्ति के विदेशी मत के समर्थन में विद्वानों ने उसे 'खजर' नामक जाति की संतान कहा है जो हूणों के साथ भारत में आई थी। इस मत का समर्थन सबसे पहले कैम्पबेल तथा जैक्सन ने किया और बाद में भण्डारकर तथा त्रिपाठी आदि भारतीय विद्वानों ने भी इसे पुष्ट कर दिया।

किन्तु यह मत कोरी कल्पना पर आधारित है क्योंकि विदेशी आक्रमणकारियों में खजर नामक किसी भी जाति के विषय में हमें भारतीय अथवा विदेशी साक्ष्य से कोई भी सूचना नहीं मिलती। खजर तथा गूजर या गुर्जर में शब्दों के अतिरिक्त कोई भी साम्य नहीं लगता।

सी. वी. वैद्य, जी. एस. ओझा, दशरथ शर्मा जैसे अनेक विद्वान् गुर्जर प्रतिहारों को भारतीय मानते है। वे इस शब्द का अर्थ 'गुर्जरदेश का प्रतिहार अर्थात शासक' लगाते है। के. एम. मुंशी ने विभिन्न उदाहरणों से यह सिद्ध किया है कि गुर्जर शब्द स्थानवाचक है, जातिवाचक नहीं। 'गुर्जर' शब्द का उल्लेख पाँचवीं–छठीं शती से मिलने लगता है।

इन विद्वानों का विचार है कि यदि गुर्जर जाति विदेशों से आकर भारतीय क्षत्रिय समाज में समाहित होती तो उसका पुराना नामोनिशान बिल्कुल समाप्त नहीं होता। भारत के शास्त्रकारों ने विदेशियों को सदा पद प्रदान किया है। हूणों को म्लेच्छ कहा गया है। किन्तु जहाँ तक गुर्जरों का प्रश्न है उन्हें सर्वत्र ब्राह्मण कहा गया।

हुएनसांग गुर्जर नरेश को क्षत्रिय बताता है। पृथ्वीराजरासो में अग्निकुल के राजपूतों की जो कथा मिलती है उसकी ऐतिहासिकता संदिग्ध है। दशरथ शर्मा, ओझा आदि ने बताया है कि इस कथा का उल्लेख रासो की प्राचीन पाण्डुलिपियों में अप्राप्य है। इस प्रकार खजर जाति से गुर्जरों की उत्पत्ति सिद्ध नहीं होती है।

साहित्य अथवा इतिहास में कहीं भी उन्हें विदेशियों से नहीं जोड़ा गया है। उनके लेखों से जो संकेत मिलते हैं उनके आधार पर हम उन्हें ब्राह्मण मूल का स्वीकार कर सकते हैं जिन्होंने कालान्तर में क्षात्र–धर्म ग्रहण कर लिया था। तैत्तिरीय ब्राह्मण में प्रतिहारी नामक वैदिक याजकों का उल्लेख मिलता है।

लगता है कि उन्होंने ही बाद में अपने कार्य को छोडकर क्षत्रियों की वृत्ति अपना ली तथा अपने को राम के भाई लक्ष्मण से सम्बद्ध कर लिया। गुर्जर–प्रतिहारों ने आठवीं शताब्दी से लेकर ग्यारहवीं शताब्दी के प्रारम्भ तक शासन किया। ग्वालियर अभिलेख में इस वंश के शासक राम के भाई लक्ष्मण, जो उनके प्रतिहार (द्वारपाल) थे, का वंशज होने का दावा किया गया है।

कुछ विद्वानों के अनुसार इस वंश का आदि शासक राष्ट्रकूट राजाओं के यहाँ प्रतिहार के पद पर काम करता था, अतः इन्हें प्रतिहार कहा गया। गुर्जर–प्रतिहारों का मूल स्थान निश्चित रूप से ज्ञात नहीं है। स्मिथ, हुएनसांग के आधार पर उनका आदि स्थान आबू पर्वत के उत्तर–पश्चिम में स्थित भीममल मानते है। कुछ अन्य विद्वानों के अनुसार उनका मूल निवास–स्थान उज्जयिनी (अवन्ति) में था।

6.4 प्रारम्भिक इतिहास

नागभट्ट प्रथम (730–756 ई०) को इस राजवंश का पहला राजा माना गया है। आठवीं शताब्दी में भारत में अरबों का आक्रमण शुरू हो चुका था। सिन्ध और मुल्तान पर उनका अधिकार हो चुका था। फिर सिंध के राज्यपाल जुनैद के नेतृत्व में सेना आगे मालवा, जुर्ज और अवंती पर हमले के लिये बढ़ी, जहां जुर्ज पर उसका कब्जा हो गया। परन्तु आगे अवंती पर नागभट्ट ने उन्हें खदेड़ दिया। अजेय अरबों की सेना को हराने से नागभट्ट का यश चारों ओर फैल गया। अरबों को खदेड़ने के बाद नागभट्ट वहीं न रुकते हुए आगे बढ़ता गया। और उन्होंने अपना नियंत्रण पूर्व और दक्षिण में मंडोर, ग्वालियर, मालवा और गुजरात में भरूच के बंदरगाह तक फैला दिया। उन्होंने मालवा में अवंती (उज्जैन) में अपनी राजधानी की स्थापना की, और अरबों के विस्तार को रोके रखा, जो सिंध में स्वयं को स्थापित कर चुके थे। अरबों से हुए इस युद्ध (738 ई०) में नागभट्ट ने गुर्जर–प्रतिहारों का एक संघीय का नेतृत्व किया।यह माना जाता है कि वह राष्ट्रकूट शासक दन्तिदुर्ग के साथ अरबों को हराने में शामिल हुए थे।

एक विशेष ''हिरण्यगर्भ–महादान'' अनुष्ठान समारोह का उल्लेख है जिसमें स्वर्ण 'ब्रह्मांडीय अंड' का भी उल्लेख है,कई राजाओं की उपस्थिति में और उनकी ओर से ऐसा लगता है कि संयुक्त रूप से उज्जयिनी में किया गया था, अरबों को पराजित करने और वापस भगाने के बाद नागभट्ट ने संभवतः इसमें भाग लिया था। एक राष्ट्रकूट रिकॉर्ड, संजान प्लेट्स, हमलावर अरबों के खिलाफ दंतिदुर्ग की भूमिका की प्रशंसा करता है, हमें बताता है कि गुर्जरेश को

('गुर्जरात्रा क्षेत्र का राजा'(गुर्जरात्रा, गुजरात और राजस्थान का प्राचीन नाम था), इस समारोह में प्रतिहार या प्रहरी (भी द्वारपाल या संरक्षक) का कार्य सौंपा गया था। दशरथ शर्मा सुझाव देते हैं कि नागभट्ट प्रथम ने जल्द ही एक विशाल क्षेत्र पर अपना नियंत्रण बढ़ा दिया, जिसमें, भीलमला, जालोर, आबू के आसपास के रास्ते और संक्षेप में, लता (दक्षिणी गुजरात), और मालवा। जालोर उनकी राजधानी बनी। नागभट्ट और उनके उत्तराधिकारियों के तहत, जालोर एक संपन्न शहर के रूप में विकसित हुआ, जो मंदिरों और अमीरों के मकानों से सजी।

नागभट्ट प्रथम विद्वानों, कलाकारों और ऋषियों का संरक्षक था। जैन विद्वान यक्षदेव उनमें से थे जिन्हें नागभट्ट ने अपना संरक्षण दिया था।

प्रतिहार मालवा और लाट के कब्जे को अनिश्चित काल तक कायम नहीं रख सके, हालाँकि,अपने पूर्व सहयोगी,राजा दंतिदुर्ग राष्ट्रकूट ने इन दो क्षेत्रों को सफलतापूर्वक प्रतिहारों से कब्जे में ले लिया।

हर्षवर्धन की मृत्यु के बाद कन्नौज को शक्ति निर्वात का सामना करना पड़ा, जिसके परिणामस्वरूप हर्ष के साम्राज्य का विघटन होने लगा। जोकि अंततः लगभग एक सदी के बाद यशोवर्मन ने भरा। लेकिन उसकी स्थिति भी ललितादित्य मुक्तपीड के साथ गठबंधन पर निर्भर थी। जब मुक्तापीड ने यशोवर्मन को कमजोर कर दिया, तो शहर पर नियंत्रण के लिए त्रिकोणीय संघर्ष विकसित हुआ, जिसमें पश्चिम और उत्तर क्षेत्र से गुर्जर प्रतिहार साम्राज्य, पूर्व से बंगाल के पाल साम्राज्य और दक्षिण में दक्कन में आधारभूत राष्ट्रकूट साम्राज्य शामिल थे। वत्सराज ने कन्नौज के नियंत्रण के लिए पाल शासक धर्मपाल और राष्ट्रकूट राजा दन्तिदुर्ग को सफलतापूर्वक चुनौती दी और पराजित कर दो राजछत्रों पर कब्जा कर लिया।

786 ई0 के आसपास, राष्ट्रकूट शासक ध्रुव धारवर्ष (780–793) नर्मदा नदी को पार कर मालवा पहुंचा और वहां से कन्नौज पर कब्जा करने की कोशिश करने लगा। लगभग 800 ई० में वत्सराज को ध्रुव धारावर्ष ने पराजित किया और उसे मरुदेश (राजस्थान) में शरण लेने को मजबूर कर दिया। और उसके द्वार गौंड़राज से जीते क्षेत्रों पर भी अपना कब्जा कर लिया। वत्सराज को पुनः अपने पुराने क्षेत्र जालोन से शासन करना पडा, ध्रुव के प्रत्यावर्तन के साथ ही पाल नरेश धर्मपाल ने कन्नौज पर कब्जा कर, वहाँ अपने अधीन चक्रायुध को राजा बना दिया।

वत्सराज के बाद उसका पुत्र नागभट्ट द्वितीय (805–833) राजा बना, उसे शुरू में राष्ट्रकूट शासक गोविन्द तृतीय (793–814) ने पराजित किया था,

लेकिन बाद में उसने अपनी शक्ति को पुनः बढ़ा कर राष्ट्रकूटों से मालवा छीन लिया। तदानुसार उसने आन्ध्र, सिन्ध, विदर्भ और कलिंग के राजाओं को हरा कर अपने अधीन कर लिया। चक्रायुध को हरा कर कन्नौज पर विजय प्राप्त कर लिया। आगे बढ़कर उसने धर्मपाल को पराजित कर बलपुर्वक आनर्त, मालव, किरात, तुरुष्क, वत्स और मत्स्य के पर्वतीय दुर्गो को जीत लिया। शाकम्भरी के चाहमानों ने कन्नौज के गुर्जर प्रतीहारों की अधीनता स्वीकार कर ली। उसने प्रतिहार साम्राज्य को गंगा के मैदान में आगे पाटलिपुत्र (बिहार) तक फैला दिया। उसने पश्चिम में पुनः अरबों को रोक दिया। उसने गुजरात में सोमनाथ के महान शिव मंदिर को पुनः बनवाया, जिसे सिंध से आये अरब हमलावरों ने नष्ट कर दिया था। कन्नौज, गुर्जर–प्रतिहार साम्राज्य का केंद्र बन गया, अपनी शक्ति के चरमोत्कर्ष (836–910) के दौरान अधिकतर उत्तरी भारत पर इनका अधिकार रहा।

833 ई० में नागभट्ट के जलसमाधी लेने के बाद, उसका पुत्र रामभद्र प्रतिहार साम्राज्य का अगला राजा बना। रामभद्र ने सर्वोत्तम घोड़ों से सुसज्जित अपने सामन्तों के घुड़सवार सेना के बल पर अपने सारे विरोधियो को रोके रखा। हालांकि उसे पाल साम्राज्य के देवपाल से कड़ी चुनौतियाँ मिल रही थीं। और वह गुर्जर प्रतीहारों से कलिंजर क्षेत्र लेने मे सफल रहा।

रामभद्र के बाद उसका पुत्र मिहिरभोज या भोज प्रथम ने गुर्जर प्रतिहार की सत्ता संभाली। मिहिरभोज का शासनकाल प्रतिहार साम्राज्य के लिये स्वर्णकाल माना गया है। अरब लेखकों मिहिरभोज के काल को सम्पन्न काल बताते हैं। मिहिरभोज के शासनकाल मे कन्नौज के राज्य का अधिक विस्तार हुआ। उसका राज्य उत्तर–पश्चिम में सतुलज, उत्तर में हिमालय की तराई, पूर्व में पाल साम्राज्य कि पश्चिमी सीमा, दक्षिण–पूर्व में बुन्देलखण्ड और वत्स की सीमा, दक्षिण–पश्चिम में सौराष्ट्र, तथा पश्चिम में राजस्थान के अधिकांश भाग में फैला हुआ था। इसी समय पालवंश के शासक देवपाल के बीच में कई घमासान युद्ध हुए। अन्त में इस पाल–प्रतिहार संघर्स में भोज कि विजय हुई।

दक्षिण की ओर मिहिरभोज के समय अमोघवर्ष और कृष्ण द्वितीय राष्ट्रकूट शासन कर रहे थे। अतः इस दौर में गुर्जर प्रतिहार–राष्ट्रकूट के बीच शान्ति ही रही, हालांकि वारतो संग्रहालय के एक खण्डित लेख से ज्ञात होता है कि अवन्ति पर अधिकार के लिये भोज और राष्ट्रकूट राजा कृष्ण द्वितीय (878–911 ई०) के बीच नर्मदा नदी के पास युद्ध हुआ था। जिसमें राष्ट्रकूटों को वापस लौटना पड़ा था। अवन्ति पर गुर्जर प्रतिहारों का शासन भोज के कार्यकाल से महेन्द्रपाल द्वितीय के शासनकाल तक चलता रहा। मिहिर भोज के

बाद उसका पुत्र महेन्द्रपाल प्रथम नया राजा बना, इस दौर में साम्राज्य विस्तार तो रुक गया लेकिन उसके सभी क्षेत्र अधिकार में ही रहे। इस दौर में कला और साहित्य का बहुत विस्तार हुआ। महेन्द्रपाल ने राजशेखर को अपना राजकवि नियुक्त किया था। इसी दौरान ''कर्पूरमंजरी'' तथा संस्कृत नाटक ''बालरामायण'' को अभिनीत किया गया। गुर्जर–प्रतिहार साम्राज्य अब अपने उच्च शिखर को प्राप्त हो चुका था।

महेन्द्रपाल की मृत्यु के बाद उत्तराधिकार का युद्ध हुआ, और राष्ट्रकूटों कि मदद से महिपाल का सौतेला भाई भोज द्वितीय (910–912) ने कन्नौज पर अधिकार कर लिया हलांकि यह अल्पकाल के लिये था, राष्ट्रकूटों के जाते ही महिपाल प्रथम (912–944 ई०) ने भोज द्वितीय के शासन को उखाड़ फेंका। गुर्जर–प्रतिहारों की अस्थायी कमजोरी का फायदा उठा, साम्राज्य के कई सामंतवादियों विशेषकर मालवा के परमार, बुंदेलखंड के चन्देल, महाकोशल का कलचुरि, हरियाणा के तोमर और चौहान स्वतंत्र होने लगे। राष्ट्रकूट वंश के दक्षिणी भारतीय सम्राट इंद्र तृतीय ने 912 ई० में कन्नौज पर कब्जा कर लिया। यद्यपि गुर्जर प्रतिहारों ने शहर को पुनः प्राप्त कर लिया था, लेकिन उनकी स्थिति 10वीं सदी में कमजोर ही रही, पश्चिम से तुर्को के हमलों, दक्षिण से राष्ट्रकूट वंश के हमले और पूर्व में पाल साम्राज्य की प्रगति इनके मुख्य कारण थे। गुर्जर–प्रतिहारों ने राजस्थान का नियंत्रण अपने सामंतों के हाथ खो दिया और चंदेलो ने 950 ई० के आसपास मध्य भारत के ग्वालियर के सामरिक किले पर कब्जा कर लिया। 10वीं शताब्दी के अंत तक, गुर्जर–प्रतिहार कन्नौज पर केन्द्रित एक छोटे से राज्य में सिमट कर रह गया। कन्नौज के अंतिम गुर्जर–प्रतिहार शासक यशपाल के 1036 ई0 में निधन के साथ ही इस साम्राज्य का अन्त हो गया।

6.5 नागभट्ट प्रथम

नागभट्ट को उनके वंशज मिहिर भोज के ग्वालियर शिलालेख में शाही गुर्जर–प्रतिहार राजवंश के संस्थापक के रूप में नामित किया गया है। नागभट्ट के राज्यारोहण की सही तिथि ज्ञात नहीं है। उनके पोते वत्सराज को 783–784 ईस्वी में अवंती में शासन करने के लिए जाना जाता है। प्रत्येक पीढ़ी के लिए 25 वर्ष की अवधि मानते हुए, यह माना जा सकता है कि नागभट्ट 730 ई.पू. के आसपास सिंहासन पर बैठा था।

ग्वालियर शिलालेख इस राजवंश की उत्पत्ति महान नायक लक्ष्मण से बताता है। उन्होंने अवंती क्षेत्र में उज्जैन से शासन किया। जैन पाठ हरिवंश

(783–784 सीई) में कहा गया है कि उनके पोते वत्सराज राजा और ''अवंती मिट्टी के पुत्र'' (अवंती–भूब्रति) थे। इसमें अन्य पड़ोसी राज्यों का भी वर्णन किया गया है, जिससे किसी को भी इसके स्थान के बारे में कोई संदेह नहीं है। राष्ट्रकूट शासक अमोघवर्ष का 871 ई. संजन ताम्रपत्र शिलालेख भी उज्जैन के साथ गुर्जर–प्रतिहारों के संबंध का सुझाव देता है। इसके आधार पर, आरसी मजूमदार और बैज नाथ पुरी सहित कई इतिहासकारों का मानना है कि अवंती की राजधानी उज्जैन, नागभट्ट के राजवंश का मूल घर था।

दूसरी ओर, दशरथ शर्मा ने सिद्धांत दिया कि नागभट्ट की उत्पत्ति वर्तमान राजस्थान से हुई थी। उनका सिद्धांत नाहड़ा के साथ नागभट्ट की पहचान पर आधारित है, जिनका उल्लेख मध्ययुगीन जैन प्रबंध (पौराणिक इतिहास) में ''भाग्य के सैनिक'' और उनके परिवार के पहले शासक के रूप में किया गया है। पाठ में कहा गया है कि नाहाडा ने जाबालिपुरा (जालोर के साथ पहचाना गया) को अपनी राजधानी बनाया और एक मुस्लिम शासक के साथ संघर्ष में आ गया, जिसे उसने हरा दिया। शर्मा ने यह विचार रखा कि जालोर गुर्जर–प्रतिहारों का मूल घर था, जहां से वे प्रवासित हुए होंगे।

6.5.1 अरब आक्रमण

उनके वंशज मिहिर भोज के ग्वालियर शिलालेख के अनुसार, नागभट्ट ने म्लेच्छ आक्रमण को विफल कर दिया था। इन म्लेच्छों की पहचान अरब मुस्लिम आक्रमणकारियों से की जाती है। 9वीं शताब्दी के मुस्लिम इतिहासकार अल–बालाधुरी ने उजैन (उज्जैन) पर अरब आक्रमणों का उल्लेख किया है। ऐसा प्रतीत होता है कि यह नागभट्ट के साथ उनके संघर्ष का संदर्भ है। आक्रमण का नेतृत्व जुनैद इब्न अब्द अल–रहमान अल–मुरी या उमय्यद खलीफा हिशाम इब्न अब्द अल–मलिक के अधीन सिंध के एक जनरल और गवर्नर अल हकम इब्न अवाना ने किया था। अल–बालाधुरी ने इन आक्रमणकारियों द्वारा कई अन्य स्थानों पर विजय का उल्लेख किया है, लेकिन उज्जैन के बारे में, उन्होंने केवल यह उल्लेख किया है कि शहर पर आक्रमण किया गया था। यह एक मौन स्वीकृति प्रतीत होती है कि आक्रमण असफल रहा।

ऐसा कहा जाता है कि अर्ध–पौराणिक गुहिला शासक बप्पा रावल ने अरब आक्रमण को विफल कर दिया था। इतिहासकार आरवी सोमानी का मानना है कि वह नागभट्ट द्वारा गठित अरब विरोधी संघ का हिस्सा थे।

6.5.2 नागवलोक से पहचान

चाहमान शासक भर्तृवद्ध के 756 ई. के हंसोट शिलालेख में उनके अधिपति नागवलोक के शासनकाल के दौरान एक गाँव के अनुदान का उल्लेख है। डी आर भंडारकर और अन्य इतिहासकारों ने नागवोल्का की पहचान नागभट्ट से की है। यदि यह धारणा सत्य है, तो यह संभव है कि राष्ट्रकूटों के चले जाने के बाद, नागभट्ट ने अपनी शक्ति पुनः प्राप्त कर ली, और भृगुकच्छ (भरूच) के आसपास के क्षेत्र पर विजय प्राप्त कर ली, जहाँ चाहमान की एक शाखा उसके आधिपत्य में शासन करती थी। इतिहासकार बीएन पुरी के अनुसार, नागभट्ट ने संभवतः इस क्षेत्र को चालुक्य सामंत अवनिजनाश्रय पुलकेशिन से जीता था। इस प्रकार, मालवा के अलावा, नागभट्ट के साम्राज्य में वर्तमान गुजरात और राजस्थान के कुछ हिस्से शामिल हो सकते हैं।

6.6मिहिरभोज

रामभद्र का पुत्र और उत्तराधिकारी मिहिरभोज प्रथम (836–885 ईस्वी) इस वंश का सर्वाधिक महत्वपूर्ण शासक हुआ। वह उसकी पत्नी अप्पादेवी से उत्पन्न हुआ था। लेखों से उसके दो अन्य नाम प्रभास तथा आदिवराह भी मिलते हैं। उसके शासनकाल की घटनाओं की सूचना अनेक लेखों से प्राप्त होती है जिनमें से कुछ स्वयं उसी के तथा कुछ उसके उत्तराधिकारियों के है।

उसका सर्वप्रमुख लेख ग्वालियर से मिलता है जो प्रशस्ति के रूप में है। लेखों के अतिरिक्त कल्हण तथा अरब यात्री सुलेमान के विवरणों से भी हम उसके काल की घटनाओं का ज्ञान प्राप्त करते है। राजा बनने के उपरान्त मिहिरभोज का पहला महत्वपूर्ण कार्य साम्राज्य का सुदृढ़ीकरण था।

सर्वप्रथम उसने अपने पिता के निर्बल शासन–काल में स्वतन्त्र हुए प्रान्तों को पुन अपनी अधीनता में किया। उसने मध्य भारत तथा राजपूताना में पुनः अपनी स्थिति सुदृढ़ कर ली। उसने कलचुरि चेदि तथा गुहिलोत वंशों के साथ मैत्री सम्बन्ध स्थापित किया।

इन वंशों के राजाओं ने उसके अभियानों में सहायता की। ग्वालियर लेख में कहा गया है कि 'अगस्त्य ऋषि ने तो केवल विन्ध्य पर्वत का विस्तार अवरुद्ध किया था किन्तु इसने (भोज ने) कई राजाओं पर आक्रमण कर उसका विस्तार रोक दिया।'

उत्तर भारत में किये गये उसके अभियानों में गुहिलवंशी हर्षराज, जो उसका एक सामान्त था, ने भोज की सहायता की थी। चाट्सु लेख के अनुसार

उसने उत्तर भारत के राजाओं को परास्त कर भोज को घोड़े उपहार में दिये थे। यह भी वर्णित है कि उसने गौडनरेश को पराजित किया तथा पूर्वी भारत के शासकों से कर प्राप्त किया था।

कलचुरि वंशी गुणाम्बोधिदेव धो उसका सामन्त था। पहेवा (पूर्वी पंजाब) लेख से सूचित होता है कि हरियाणा प्रदेश उसके राज्य में शामिल था। भोज का एक खण्डित लेख दिल्ली में पुराना किला से मिलता है जो वहाँ उसके अधिकार का सूचक है।

बी. एन. पुरी का मत है कि ऊणा लेख में उल्लिखित बलवर्मा मिहिरभोज का काठियावाड़ में सामन्त था जिसने अपने स्वामी की ओर से लड़ते हुए हूणों को हराया था। देवगढ़ (झांसी) तथा ग्वालियर के लेखों से भोज का मध्य भारत पर अधिकार पुष्ट होता है। इस प्रकार अपने राज्यारोहण के पश्चात मिहिरभोज ने अपनी राजनीतिक स्थिति विभिन्न क्षेत्रों में काफी सुदृढ बना लिया।

मिहिरभोज के समय में भी प्रतिहारों की पालों तथा राष्ट्रकूटों के साथ पुरानी प्रतिद्वन्दद्विता चलती रही। मिहिरभोज दो पाल राजाओं– देवपाल तथा विग्रहपाल का समकालीन था। एक ओर जहाँ पाल लेख प्रतिहारों पर विजय का विवरण देते है, वहीं दूसरी ओर प्रतिहार लेख पालों पर विजय का दावा प्रस्तुत करते है।

पालकालीन बादल लेख में कहा गया है कि देवपाल ने गुर्जर नरेश को पराजित किया। इसके विपरीत ग्वालियर लेख में वर्णित है कि 'जिस लक्ष्मी ने धर्म (पाल) के पुत्र का वरण किया था उसी ने बाद में, भोज को दूसरे पति के रूप में चुना।'

अतः वस्तुस्थिति यह प्रतीत होती है कि प्रारम्भिक युद्ध में तो देवपाल को मिहिरभोज के विरुद्ध सफलता प्राप्त हुई, लेकिन उसकी मृत्यु के उपरान्त उसके उत्तराधिकारी नारायणपाल के समय में अथवा देवपाल के शासन के अन्तिम दिनों में ही मिहिरभोज ने अपनी पराजय का बदला ले लिया। पाल साम्राज्य के पश्चिमी भागों पर उसका अधिकार हो गया।

मिहिरभोज के दूसरे शत्रु राष्ट्रकूट थे। पालों से निपटने के पश्चात वह राष्ट्रकूटों की ओर मुड़ा। मिहिरभोज दो राष्ट्रकूट राजाओं–अमोघवर्ष तथा कृष्ण द्वितीय का समकालीन था। अमोघवर्ष शान्त प्रकृति का शासक था। उसके समय में मिहिरभोज ने उज्जैन पर अधिकार करते हुए नर्मदा नदी तक धावा बोला और इसमें कोई सफलता नहीं मिली, तथा उसे क्षणिक पराभव का मुख देखना पड़ा।

अमोघवर्ष के पुत्र कृष्ण द्वितीय के समय में भी दोनों राजवंशों का संघर्ष चलता रहा। इस समय राष्ट्रकूट नरेश कृष्ण द्वितीय (878–914 ईस्वी) चालुक्यों के साथ युद्ध में फँसा हुआ था। भोज ने उस पर आक्रमण कर नर्मदा नदी के तट पर उसे परास्त किया। इस विजय के फलस्वरूप मालवा पर उसका अधिकार स्थापित हो गया।

इसके बाद वह गुजरात की ओर बढ़ा तथा खेटक (खेड़ा जिला) के आस–पास के भूभाग को जीत लिया। गुजरात शाखा के राष्ट्रकूटों का 888 ईस्वी के बाद कोई उल्लेख नहीं मिलता जो इस बात का सूचक है कि यह प्रदेश प्रतिहारों ने जीत लिया था। राष्ट्रकूट अभिलेखों देवली तथा करहाट से पता चलता है कि भोज तथा कृष्ण के बीच उज्जयिनी में एक भीषण युद्ध हुआ जिसमें कृष्ण ने भोज को भयाक्रान्त कर दिया।

किन्तु ऐसा लगता है कि इस युद्ध का कोई निर्णायक परिणाम नहीं निकला तथा मालवा पर भोज का अधिकार बना रहा। इसके बाद भी दोनों वंशों में उज्जैन पर अधिकार को लेकर युद्ध होते रहे। लेकिन खेटक के आस–पास का भाग पुन राष्ट्रकूटों के हाथों में चला गया।

910 ई. में हम उत्तरी गुजरात में ब्रह्मवलोक वंश के प्रचण्ड नामक एक नये सामन्त को शासन करते हुए पाते है। इन्द्र तृतीय (914–928 ई.) के समय में गुजरात का शासन सीधे मान्यखेत से होने लगा। 915 ई. में इन्द्र ने वहाँ एक ब्राह्मण को दिये गये दान की पुष्टि की जो वही उसके अधिकार का सूचक है।

इस प्रकार भोज ने उत्तर भारत में एक विशाल साम्राज्य स्थापित कर लिया। उत्तर–पश्चिम में उसका साम्राज्य पंजाब तक विस्तृत था। पूर्व में गोरखपुर के कलचुरि उसके सामन्त थे तथा सम्पूर्ण अवध का क्षेत्र उसके अधीन था। कहल लेख (गोरखपुर जिला) से पता चलता है कि कलचुरिशासक गुणाम्बोधि ने भोज से कुछ भूमि पाई थी।

जयपुर क्षेत्र का गुहिलोत शासक हर्षराज भी उसका सामन्त था। दक्षिणी राजस्थान के प्रतापगढ से भोज के उत्तराधिकारी महेन्द्रपाल का लेख मिलता है जो उस भाग पर उसके अधिकार की पुष्टि करता है। बुन्देलखण्ड के चन्देल उसकी अधीनता स्वीकार करते थे।

दक्षिण में उसका साम्राज्य नर्मदा नदी तक विस्तृत था। उसने कन्नौज को इस विशाल साम्राज्य की राजधानी बनाई तथा लगभग 50 वर्षों तक शासन किया। भोज वैष्णव धर्मानुयायी था तथा उसने 'आदिवाराह' एवं 'प्रभास' जैसी

उपाधियाँ धारण की थीं। निश्चयतः वह गुर्जर प्रतिहारों का सर्वाधिक शक्तिशाली शासक हुआ। भोज के शासन काल का अरब यात्री सुलेमान बड़े उच्च शब्दों में वर्णन करता है।

उसके अनुसार–''इस राजा के पास बहुत बड़ी सेना है। अन्य किसी राजा के पास उसके जैसी अश्वसेना नहीं है। वह अरबों का सबसे बड़ा शत्रु है, यद्यपि वह अरबों के राजा को सबसे बड़ा राजा मानता है। भारत के राजाओं में उससे बड़ा इस्लाम का कोई दूसरा शत्रु नहीं है। वह अपार धन एवं ऐश्वर्य युक्त है। भारत में उसके अतिरिक्त कोई राज्य नहीं है जो डाकुओं से इतना सुरक्षित हो।"

भोज के लेखों तथा मुद्राओं पर अंकित 'आदिवराह' उपाधि यह सूचित करती है कि देश को म्लेच्छों (अरबों) से मुक्त कराना वह अपना पुनीत कर्तव्य समझता है। अरब उससे बहुत अधिक डरते थे। 915–16 ई. में सिन्ध की यात्रा करने वाले मुस्लिम यात्री अलमसूदी यहां तक लिखता है कि 'अपनी शक्ति के केन्द्र मुल्तान में अरवी ने एक सूर्य मन्दिर को तोड़ने से बचा रखा था। जब भी प्रतिहारों के आक्रमण का भय होता था तो वे उस मन्दिर की मूर्ति को नष्ट कर देने का भय पैदा कर अपनी रक्षा कर लेते थे।'

विलादुरी कहता है कि अरबों को अपनी रक्षा के लिये कोई सुरक्षित स्थान मिलना ही कठिन था। उन्होंने एक झील के किनारे अलहिन्द सीमा पर अल–महफूज नामक एक शहर बसाया था जिसका अर्थ सुरक्षित होता है। इन विवरणों से स्पष्ट हो जाता है कि भोज ने पश्चिम में अरबों के प्रसार को रोक दिया था। अपने इस वीर कृत्य द्वारा उसने भारत–भूमि की महान् सेवा की थी।

6.7 सारांश

इस प्रकार भारत में गुर्जर समाज और इस समाज के लोग प्राचीन काल से ही एक गुरुतर उत्तरदायित्व को निभाते चले आए हैं। यह गुरुतर दायित्व देशसेवा, धर्मसेवा, राष्ट्रसेवा, जनसेवा और संस्कृति सेवा का दायित्व था। स्पष्ट है कि इन्हीं दायित्वों के निर्वाह से किसी भी देश, धर्म व संस्कृति का निर्माण होता है। इस प्रकार भारत की महान संस्कृति के निर्माण में गुर्जर समाज का महत्त्वपूर्ण योगदान है। इसे किसी भी दृष्टिकोण से नकारा नहीं जा सकता। भारत में गुर्जर समाज को गुर्जर, गूजर, गुज्जर, गोजर, और वीर गुर्जर आए के नाम से लोग सम्बोधित करते हैं। शब्द एक ही है, पर उच्चारण थोड़ा अलग–अलग है, परन्तु इस सबके उपरांत भी प्रत्येक उच्चारण से कुछ ऐसा जातिबोध होता है जो कहीं गुरुतर दायित्व की ओर ही संकेत करता है। प्रत्येकशब्द जातिबोध ही नहीं कराता, अपितु धर्मबोध भी कराता है। धर्मबोध का

अभिप्राय है कि मानवीय मूल्यों के प्रति समर्पित रहकर अपने देश, धर्म और संस्कृति की रक्षा के लिए उत्कृष्ट और मानवीय कार्यों को पूर्ण तन्मयता के साथ संपादित करते रहना।

अपने दिव्य और भव्य गुणों के कारण गुर्जर समाज ने अपने दिव्य और भव्य इतिहास का निर्माण किया है। भारत में ही नहीं, अपितु हम संसार के अनेक देशों में गुर्जर जाति के नाम पर पड़े अनेक शहरों के नाम देखते हैं। जिनसे पता चलता है कि इस जाति के पूर्वजों ने किसी क्षेत्र विशेष तक ही अपने आपको बांधकर नहीं रखा, अपितु इसने देशसेवा के अपने गुरुत्तर दायित्व का निर्वाह करते हुए विश्व के अनेकों स्थानों पर रह–रहकर अपने पवित्र कायों का सम्पादन किया। जहाँ–जहाँ समाज के भीतर अशान्ति व्याप्त हुई या जहाँ–जहाँ भी असामाजिक लोगों ने समाज के शान्तिप्रिय लोगों को सताना आरम्भ किया, वहीं पर गुर्जर जाति के लोगों ने असामाजिक तत्त्वों का सफाया करने का महानतम और श्रेष्ठतम कार्य सम्पादित किया। अफगानिस्तान, पाकिस्तान या उससे आगे अन्य देशों में जहाँ–जहाँ पर भी गुर्जर जाति के ध्वंसावशेष हमें अभी तक प्राप्त होते हैं, उन–उन ध्वंसावशेषों को हमें इस जाति के अतीत के उन प्रकाश स्तम्भों के रूप में देखना व समझना चाहिए जहाँ कभी दुष्टों, आतंकियों और समाज विरोधी लोगों का संहार करने के लिए इस जाति ने अपना गौरवपूर्ण इतिहास रचा था।

6.8 अभ्यासार्थ प्रश्न

1. गुर्जर प्रतिहार वंश के ऐतिहासिक स्रोतों की विवेचना कीजिये।

   .....

   .....

2. गुर्जर प्रतिहार वंश का संस्थापक कौन था, उपलब्धियों के विषय में वर्णन कीजिये।

   .....

   .....

3. गुर्जर प्रतिहार वंश के प्रारम्भिक इतिहास के बारें में संक्षेप में वर्णन कीजिये।

   .....

   .....

6.9 संदर्भ ग्रन्थ

झा व श्रीमाली : प्राचीन भारत का इतिहास, दिल्ली वि.वि.दिल्ली।

मजूमदार, आर.सी. : द ऐज ऑफ इम्पीरियल कन्नौज।

मजूमदार, आर.सी. : द स्ट्रगल फॉर एम्पायर।

त्रिपाठी, आर.एस. : हिस्ट्री ऑफ कन्नौज टू द मुस्लिम कनक्वेस्ट।

थापर, रोमिला : पूर्वकालीन भारत, दिल्ली वि.वि. दिल्ली।

शर्मा, प्रो0 कृष्णगोपाल : भारत का राजनीतिक एवं सांस्कृतिक इतिहास, राजस्थान हिन्दी ग्रन्थ अकादमी, जयपुर।

इकाई 7–सुल्तान महमूद गजनवी का आक्रमण

इकाई की रूपरेखा

7.0 उद्देश्य

7.1 प्रस्तावना

7.2 तत्कालीन भारत की राजनीतिक स्थिति

7.3 महमूद गजनवी का भारत पर आक्रमण

7.3.1 महमूद गजनवी के आक्रमण के कारण

7.3.2 महमूद गजनवी का मूल्यांकन

7.3.3 अलबरूनी का भारत विवरण

7.4 सारांश

7.5 शब्दावली

7.6 बोध प्रश्न

7.7 सन्दर्भ ग्रन्थ

7.0 प्रस्तावना

यामिनी वंश को प्रायः गजनवी–वंश के नाम से जाना जाता है, यह ईरान के शासकों की एक शाखा थी। अरब आक्रमणों के अवसर पर इस वंश के व्यक्ति तुर्किस्तान भाग गये, जहाँ वे तुर्कों के साथ इतने घुल–मिल गये कि उनके वंशज तुर्क कहलाये। अलप्तगीन ने इस वंश का एक स्वतन्त्र राज्य स्थापित किया और उसने 963 ई॰ में अमीर अबूबक्र लाविक से जाबुलिस्तान तथा उसकी राजधानी गजनी को छीन लिया। उस समय से गजनी उस देश के राज्य की राजधानी बन गया। इस समय भारत के उत्तर–पश्चिम में हिन्दुशाही राज्य था, जिसका विस्तार हिन्दुकुश पर्वतमाला तक था और जिसने काबुल को तुर्कों से पुनः छीन लिया था। इस कारण गजनी और हिन्दुशाही राज्य की सीमाएँ एक–दूसरे से टकराने लगी थीं। अलप्तगीन के समय से इन राज्यों में छुटपुट युद्ध शुरू हो गये। अलप्तगीन की मृत्यु 963 ई॰ में हुई। कुछ समय पश्चात सुबुक्तगीन ने गद्दी पर अपना अधिकार कर लिया। आरम्भ में सुबुक्तगीन अलप्तगीन का गुलाम रहा था। परन्तु बाद में वह उसका दामाद भी बना। वह साहसी और योग्य था। धीरे–धीरे उसने बस्त, दवार, कुसदार,

बामियान, तुर्किस्तान और गोर को जीत लिया। उसने हिन्दुशाही राज्य की सीमाओं पर आक्रमण करने शुरू किये और निकट के कई किलों एवं नगरों को जीत लिया। 997 ई. में सुबुक्तगीन की मृत्यु हो गयी। मरने से पहले उसने अपने छोटे पुत्र इस्माइल को अपना उत्तराधिकारी नियुक्त किया। उसके बड़े पुत्र महमूद ने 998 ई. में अपने पिता के राज्य पर अधिकार कर लिया। यह वही महमूद गजनवी था, जिसने भारत पर निरन्तर आक्रमण किये और तुर्कों की भारत विजय के लिए मार्ग प्रशस्त किया।

महमूद गजनवी का जन्म 1 नवम्बर, 971 ई. को हुआ था। उसने पर्याप्त शिक्षा प्राप्त की थी और अपने पिता के समय में ही अनेक युद्धो में भाग लिया था। 998 ई. में 27 वर्ष की आयु में वह अपने पिता के राज्य का वारिस बना। इतिहासकारों ने मुस्लिम इतिहास में महमूद को प्रथम सुल्तान माना है, यद्यपि कि उसके सिक्कों पर सिर्फ 'अमीर महमूद' अंकित किया गया था। परन्तु महमूद अपनी विजयों के कारण सुल्तान के पद के योग्य था। प्रारम्भ में महमूद ने अपनी शाक्ति को हिरात, बल्ख तथा बस्त में दृढ़ किया और खुरासान की विजय किया। बगदाद के खलीफा अल–कादिर बिल्लाह ने 999 ई. में इन प्रदेशों पर उसके अधिकार को स्वीकार कर लिया और उसे 'यमीन–उद–दौला' तथा 'आमीन–उल–मिल्लाह' की उपाधियाँ दी। यह कहा जाता है कि इसी अवसर पर उसने भारत पर प्रत्येक वर्ष आक्रमण करने की शपथ ली।

7.1 उद्देश्य

प्रस्तुत इकाई में महमूद गजनवी के भारत पर किए गए आक्रमणों पर विस्तृत प्रकाश डाला गया है। इसके साथ ही साथ तत्कालीन भारत की राजनीतिक स्थिति की जानकारी भी प्रदान की गयी है। महमूद गजनवी के साथ आए विद्वान अलबरूनी के भारत विवरण पर भी विस्तृत चर्चा की गयी है। इस इकाई के अध्ययन से आप जान सकेंगे कि–

- महमूद गजनवी के भारत पर आक्रमण के कारण क्या थे?
- महमूद गजनवी ने भारत पर इतनी बार आक्रमण क्यों किया?
- महमूद गजनवी के आक्रमणों का भारत पर क्या प्रभाव पड़ा?

7.2 तत्कालीन भारत की राजनीतिक स्थिति

भारत उस समय राजनीतिक दृष्टि से विभिन्न राज्यों में बँटा हुआ था। उनमें से कुछ राज्य शक्तिशाली भी थे। परन्तु उनकी पारस्परिक प्रतिस्पर्धा

उनकी मुख्य दुर्बलता थी, जिसके कारण वे विदेशी शत्रु का मुकाबला मिलकर न कर सके। मुल्तान और सिन्ध में दो मुस्लिम राज्य थे। हिन्दुशाही राज्य चिनाब नदी से हिन्दूकुश पर्वतमाला तक फैला हुआ था। जयपाल उसका साहसी, बहादुर और दूरदर्शी शासक था। पड़ोस के गजनी राज्य को समाप्त करने के लिए उसने आक्रमणकारी नीति का पालन किया, यद्यपि वह उसमें सफल नहीं हुआ। महमूद के आक्रमणों का प्रथम और दृढ़तापूर्वक मुकाबला इसी राजवंश ने किया। उस समय कश्मीर में ब्राम्हण वंश का राज्य था और उसकी राजी दिद्दा थी। हिन्दुशाही राज्य से उसके पारिवारिक सम्बन्ध थे। कन्नौज में प्रतिहार वंश का राज्य था। वत्सराज और नागभट्ट के समय में यह राज्य पर्याप्त शक्तिशाली था। परन्तु दक्षिण–भारत के राष्ट्रकूट शासकों तथा उत्तर–भारत के पड़ोसी राज्यों से उसका निरन्तर संधर्ष रहा, जिससे 11वीं सदी के आरम्भ तक यह राज्य दुर्बल हो गया। उसके सामन्त बुन्देलखण्ड के चन्देल, मालवा के परमार और गुजराज के चालुक्य उसके आधिपत्य से मुक्त हो गये। इस वंश का अन्तिम राजा राज्यपाल था, जिसके समय में इस राज्य पर महमूद का आक्रमण हुआ। बंगाल में पाल वंश का राज्य था। इस वंश में महमूद का समकालीन शासक महीपाल प्रथम था। उस समय उसकी शक्ति बहुत दुर्बल थी। उसका राज्य छोटा हो गया था और राजेन्द्र चोल के आक्रमण ने बंगाल को क्षत–विक्षत स्थिति में छोड़ दिया था। दूर होने के कारण वह महमूद के आक्रमण से बच गया। गुजरात, मालवा और बुन्देलखण्ड में भी स्वतन्त्र राज्य थे। दक्षिण–भारत में परवर्ती चालुक्य और चोल वंश के शक्तिशाली राज्य थे। इनमें से प्रत्येक राजवंश शक्तिशाली था। परन्तु वे आपस में संघर्षरत थे और उत्तर–भारत की राजनीति में विशेष रूचि नहीं रखते थे। जिस समय महमूद उत्तर–भारत को अपने पैरों के तले रौंद रहा था उस समय भी वे अपने संघर्षो में लगे रहे। भारत के यह सभी राज्य प्रायः राजपूत–वंशों के थे। राजपूतों को प्राणों का मोह न था और न उनमें साहस और शौर्य की कमी थी, परन्तु उनमें दूरदर्शिता और परिस्थितियों को समझने तथा उनके अनुकूल उठ खड़े होने का सर्वथा अभाव रहा जिसके कारण वे सभी बार–बार महमूद से पराजित होते रहे और अपने धर्म और देश की रक्षा करने में असमर्थ रहे।

सामाजिक दृष्टि से भारत दुर्बल था। जातियों–उपजातियों का विभाजन, स्त्रियों की असहनीय स्थिति और अनैतिक आचार–विचार इस बात के प्रमाण थे। ब्राम्हण, क्षत्रिय, वैश्य और शूद्र इन चारों वर्णों के अतिरिक्त समाज का एक बहुत बड़ा भाग ऐसा था, जिसे अन्त्यज पुकारते थे। इन्हें समाज के किसी भी वर्ण में स्थान प्राप्त न था। चमार, जुलाहे, मछली पकड़ने वाले, टोकरी बुनने वाले, शिकारी आदि इस वर्ग में सम्मिलित थे। इनसे भी निम्न स्तर हादी, डोम,

चाण्डाल, बधाटू आदि वर्गों का था, जो सफाई और स्वच्छता के कार्यों में लगे हुए थे, परन्तु जिन्हें नगरों और गाँवों से बाहर रहना पड़ता था। वैश्यों तथा शूद्रों को वेद और धार्मिक शास्त्रों को पढ़ने का अधिकार न था। यदि उनमें से कोई ऐसा करता था तो अलबरूनी के अनुसार उसकी जीभ काट ली जाती थी। समाज से पृथक वर्गों की स्थिति का अनुमान तो इसी से लगाया जा सकता है कि उनकी स्थिति वैश्य और शूद्रों से भी निम्न थी। जाति–प्रथा के कारण भारत का समाज ऊँच–नीच की भावना से ही विषाक्त नहीं था, अपितु ऐसे विभिन्न वर्गों में भी बँटा हुआ था जिनमें एक दूसरे के प्रति घृणा की भावना ही पनप सकती थी। जाति–बन्धन उस समय तक कठोर हो गये थे और जाति परिवर्तन और अन्तर्जातीय खान–पान तथा विवाह सम्बन्ध सम्भव नहीं थे। स्त्रियों की स्थिति निरन्तर गिरती जा रही थी और वे पुरूष की भोग्या मात्र बनती जा रही थी। उच्च वर्गों में बहु–विवाह, बाल–विवाह और सती प्रथा प्रचलित हो चली थी और विधवाओं के विवाह सम्भव न थे।

धार्मिक दृष्टि से भी भारत पतनोन्मुख था। हिन्दू और बौद्ध दोनों ही धर्मों में अनाचार प्रवेश कर गया था। धर्म की मूल भावना लुप्त होती जा रही थी और उसका स्थान कर्मकाण्ड ने ले लिया था। वाममार्गी सम्प्रदाय लोकप्रिय होते जा रहे थे, मुख्यतया बंगाल और कश्मीर में। सुरापान, माँस का प्रयोग और व्यभिचार इन वाममार्गी अनुयायियों की धार्मिक क्रियाओं में सम्मिलित थे। इनका प्रभाव समाज के अन्य वर्गों पर भी आ रहा था। बौद्ध–विहार, मठ और हिन्दू मन्दिर अनाचार और भोग–विलास के केन्द्र बन गये थे। मन्दिरों में देवदासियाँ (अविवाहित लड़कियाँ, जो देवताओं की पूजा के लिए रखी जाती थी) भ्रष्टाचार का मुख्य साधन बन गयी थी। ऐसी ही स्थिति बौद्ध–विहारों और मठों की थी। शिक्षा–संस्थाएँ भी इस भ्रष्टाचार से मुक्त न थी। विक्रमशिला के महान विश्वविद्यालय में एक विद्यार्थी के पास शराब की बोतल पायी गयी, जिसके बारें में उसने बताया कि वह उसे एक भिक्षुणी ने दी थी। इससे भी अधिक महत्वपूर्ण बात यह हुई कि उस विद्यार्थी ने अनाचार या दण्ड पाने के योग्य कोई कार्य किया था अथवा नहीं इस प्रश्न को लेकर विश्वविद्यालय के अधिकारियों में परस्पर मतभेद था। धार्मिक और शिक्षा–संस्थाओं में अनैतिकता का प्रवेश समाज की अनैतिकता का कारण और शिक्षितों पर अनैतिकता का प्रभाव देश की दुर्बलता के लिए पर्याप्त था। धर्म जो सत्कर्म, त्याग, देश–प्रेम और मनोबल की बृद्धि में सहायक हो सकता था, उस समय में अनाचार, भोग–विलास और आलस्य का कारण बना हुआ था।

समाज और धर्म की यह स्थिति भारत की सांस्कृतिक विलासिता का भी

कारण थी। कला और साहित्य दोनों ही उस समय की दशा के अनुकूल बन गये थे। स्थापत्य कला, मूर्ति–कला, चित्र–कला आदि सभी में हमें लालित्य और भोगविलास की प्रवृत्ति का आभास होता हैं, यद्यपि इन सभी क्षेत्रों में भारत ने इस काल में प्रगति की थी। साहित्य में 'कुटिनी–मतम' और 'समय–मत्रक' (वेश्या की आत्मकथा) उस समय के साहित्य की प्रतीक मात्र थी। खजुराहो, पुरी आदि के मन्दिर और मूर्तियाँ उस समय की रूचि का प्रतीक थी यद्यपि इस काल में बने हुए मन्दिर, किले, महल आदि अद्वितीय थे और साहित्यिक क्षेत्र में क्षेत्रीय भाषाओं का उद्‌गम इस काल की अपनी ही विशेषता रहे हैं।

सैनिक दृष्टि से भारत ने अपने शस्त्रों और युद्ध–शैली में सुधार करने का कोई प्रयत्न नहीं किया था। भारतीय उस समय भी हाथियों पर निर्भर करते थे। तलवार, कटार और भाला उनके मुख्य हथियार थे तथा उनकी युद्ध–शैली रक्षात्मक अधिक आक्रमणकारी कम थी। पश्चिमोत्तर सीमा पर भारतीयों ने न तो किले बनवाये थे और न ही किसी अन्य रक्षा–पंक्ति का निर्माण किया था, जबकि उसी दिशा से आक्रमण का भय था। इस कारण सैनिक दृष्टि से भारत दुर्बल था।

इस प्रकार राजनीतिक, सामाजिक, धार्मिक, नैतिक और सैनिक दृष्टि से भारत दुर्बल था। उसकी इस दुर्बलता का मुख्य कारण यह था कि भारत ने विदेशों से कुछ सीखने का प्रयत्न नहीं किया था। भारतीयों ने विदेशों के मुख्यतया, अपने सीमावर्ती देशों के सामाजिक, धार्मिक, सांस्कृतिक और सैनिक परिवर्तनों की ओर ध्यान नहीं दिया। इस कारण उनमें अज्ञानता और दम्भ दोनों भावनाओं की उत्पत्ति हुई और वे अपनी उन्नति के प्रति असावधान हो गये। इस सम्बन्ध में महमूद गजनवी के साथ भारत में आने वाले विद्वान अलबरूनी का विवरण हमारी आँखें खोलने वाला है। अलबरूनी ने हिन्दू–दर्शन, धर्म और संस्कृत भाषा का अध्ययन किया था। हिन्दुओं का यह विचार है कि हमारे जैसा देश, राष्ट्र, धर्म, राजा और विज्ञान संसार में कहीं नहीं है। उसने लिखा है कि हिन्दू यह नहीं चाहते कि जो वस्तु एक बार अपवित्र हो जाये, उसे शुद्ध करके पुनः अपना बना लिया जाय। इस प्रकार अलबरूनी ने हिन्दूओं को संकीर्ण विचारों का बताया यद्यपि कि उसने यह भी लिखा है कि हिन्दुओं के पूर्वज इतने संकीर्ण विचारों के न थे। इस प्रकार भारतीयों ने अपनी प्रगति के मार्ग को स्वयं ही बन्द कर लिया था।

परन्तु भारत आर्थिक दृष्टि से सम्पन्न था। विस्तृत उपजाऊ भू–प्रदेश और खनिज पदार्थ उसकी सम्पन्नता के लिए उत्तरदायी थे। विदेशी व्यापार भी अच्छा था, परन्तु आर्थिक सम्पन्नता के साथ–साथ भारत में आर्थिक असमानता

भी थी। देश की सम्पत्ति कुछ विशेष वर्गों के हाथों में ही संचित थी। राज परिवार और व्यापारी–वर्ग के अतिरिक्त मन्दिर भी धन के केन्द्र थे। विदेशी आक्रमणकारियों के लिए कुछ विशेष स्थानों पर संचित यह धन उनके लालच का कारण था और भारत की दुर्बलता उसके लिए एक प्रेरणा। भारत की सम्पत्ति एक दुर्बल व्यक्ति के हाथों की सम्पत्ति के समान थी, जिसको हथियाने के लिए कोई भी शक्तिशाली व्यक्ति उत्साहित हो सकता था। महमूद गजनवी ने बिल्कुल ऐसा ही किया।

7.3 महमूद गजनवी का भारत पर आक्रमण

भारत की उपर्युक्त परिस्थितियों में महमूद ने भारत पर आक्रमण किया। उसके आक्रमण 11वीं सदी में आरम्भ हुए। सर हेनरी इलियट ने बताया है कि महमूद ने भारत पर 17 आक्रमण किये, यद्यपि सभी आक्रमणों के बारे में सर्वस्वीकृत प्रमाण प्राप्त नहीं होते हैं। तब भी सभी इतिहासकार यह अवश्य मानते हैं कि महमूद ने भारत पर कम से कम 12 आक्रमण अवश्य किये थे। महमूद के आक्रमण 1000 ई. में आरम्भ हुए। पहले उसने सीमावर्ती कुछ किलों को जीता। उसने दूसरा आक्रमण 1001 ई. में किया। इस बार हिन्दुशाही राजा जयपाल ने पेशावर के निकट उसका मुकाबला किया। युद्ध में महमूद की विजय हुई और वह जयपाल की राजधानी वैहिन्द के निकट तक आ गया और वहाँ लूटमार की। राजा जयपाल के गले की हीरों की माला, जो महमूद ने छीन ली उसकी कीमत प्रायः दो लाख दिरहम थी। जयपाल और उसके सम्बन्धियों को महमूद ने 25 हाथी और 250,000 दीनार लेकर मुक्त कर दिया। इस प्रकार बहुत अधिक धन लेकर महमूद भारत से वापस गया। जयपाल ने निरन्तर पराजयों से अपने आपको इतना अधिक अपमानित अनुभव किया कि उसने स्वयं को चिता में जला दिया। उसके बाद उसका पुत्र आनन्दपाल गद्दी पर बैठा।

1004 ई. में महमूद ने भेरा पर आक्रमण करने का निश्चय किया। भेरा के शासक बाजीराय ने उसका मुकाबला किया, परन्तु परास्त हुआ। 1006 ई. में महमूद मुल्तान पर आक्रमण के लिए आगे बढ़ा। मुल्तान के शिया–सम्प्रदायी करमार्थियों के शासक अब्दुल फतह दाऊद से भी महमूद उतनी ही घृणा करता था, जितनी कि हिन्दुओं से। मार्ग में जयपाल के पुत्र आनन्दपाल ने भेरा के निकट उसका मुकाबला किया। परन्तु उसकी पराजय हुई महमूद ने 1006 ई. में मुल्तान को जीत लिया। दाऊद ने महमूद को 20,000 दिरहम प्रति वर्ष देने का वायदा किया। अपनी उत्तर–पश्चिमी सीमाओं पर तुर्की–आक्रमणकारियों की सूचना पाकर महमूद दाऊद को मुल्तान और अन्य विजित भारतीय क्षेत्रों को

नौशाशाह (यह जयपाल का नाती सुखपाल था, जिसे महमूद ने इस्लाम स्वीकार करने के लिए बाध्य किया था) को देखभाल के लिए देकर वापस चला गया। परन्तु उसके जाने के बाद नौशाशाह और दाऊद ने विद्रोह कर दिया। 1008ई. में महमूद लौटकर वापस आया और उसने नौशाशाह और दाऊद को कैद करके मुल्तान को अपने राज्य में मिला लिया।

मुल्तान के महमूद के हाथों में चले जाने से हिन्दुशाही राजा आनन्दपाल को अपने राज्य पर दो तरफ से आक्रमण का भय हो गया। इस कारण उसने एक विशाल सेना एकत्रित की और पड़ोसी राज्यों से भी जो सहायता मिल सकी उसे प्राप्त किया। उसके पश्चात् वह अपनी सेना को लेकर पेशावर की ओर बढ़ा। वैहिन्द के निकट 1009 ई. में महमूद ने उसका मुकाबला किया। युद्ध में आनन्दपाल की पराजय हुई। उसका हाथी भाग खड़ा हुआ, उसके साथ ही साथ उसकी सेना भी भाग खड़ी हुई। महमूद ने नगरकोट तक आक्रमण किया और उसे जीत लिया। आनन्दपाल की यह पराजय उसके राज्य और भारत के लिए दुर्भाग्यपूर्ण थी। हिन्दुशाही राज्य और उसकी शक्ति बहुत सीमित हो गयी और वह महमूद से आक्रामक युद्ध करने की स्थिति में न रहा। आनन्दपाल ने नन्दन को अपनी राजधानी बनाकर अपनी शक्ति को दृढ़ करने का प्रयत्न किया। परन्तु वह अधिक सफल न हो सका। सिन्ध से नगरकोट तक का सम्पूर्ण भू–क्षेत्र महमूद की अधीनता में चला गया। सिन्ध तथा पश्चिमी पंजाब में मुसलमानों के पैर जम गये। आनन्दपाल ने महमूद से एक सन्धि भी की। उसके पश्चात् उसका पुत्र त्रिलोचनपाल गद्दी पर बैठा। उसके समय में महमूद ने नन्दन को भी अपने अधिकार में कर लिया। त्रिलोचनपाल ने भागकर कश्मीर के राजा से सहायता ली। परन्तु महमूद ने उन दोनों की संयुक्त सेना को परास्त कर दिया। कश्मीर की सीमाओं पर महमूद ने लूटमार अवश्य की, परन्तु उसने कश्मीर में प्रवेश नहीं किया। त्रिलोचनपाल ने शिवालिक की पहाड़ियों में अपनी स्थिति को सुदृढ़ किया और बुन्देलखण्ड के शासक विद्याधर से मित्रता की। परन्तु 1019 ई. में एक बार फिर महमूद ने उसे परास्त किया। 1021–22 ई. में किसी व्यक्ति ने त्रिलोचनपाल की हत्या कर दी और जिस समय उसका पुत्र भीमपाल राजा बना उस समय उसका राज्य एक राजा का राज्य नहीं अपितु एक सामन्त की जागीर मात्र था। 1026 ई. में उसकी मृत्यु हो गयी। अन्ततोगत्वा हिन्दुशाही राज्य समाप्त हो गया और सम्पूर्ण पंजाब पर महमूद का अधिकार हो गया। इस प्रकार ब्राह्मणवंशीय हिन्दुशाही राज्य एक लम्बे और कठोर संघर्ष के बाद समाप्त हुआ। उस समय में वही एक ऐसा हिन्दू राज्य था, जिसके शासकों ने दूरदर्शिता का परिचय दिया और अपनी तथा भारत की

सुरक्षा के लिए आक्रमणकारी नीति को अपनाया, हिन्दुओं का संयुक्त मोर्चा बनाया और मुल्तान के मुसलमानों को भी नवीन विदेशी आक्रमणकारी के विरूद्ध अपने साथ रखने में सफलता पायी। उसके पतन से हिन्दुओं की विदेशियों के विरूद्ध संयुक्त होकर मुकाबला करने की योजना नष्ट हो गयी, पश्चिमोत्तर भारत के प्रवेश–द्वार पर मुसलमानों का अधिकार हो गया और महमूद को भारत में प्रवेश करने तथा अपनी धन–पिपासा को सन्तुष्ट करने का अवसर मिल गया।

हिन्दुशाही राज्य को दुर्बल करने से महमूद को भारत में आगे बढ़ने का अवसर मिल गया। जो धन उसे पंजाब की लूटमार में प्राप्त हुआ था। उसने उसकी धन–लिप्सा को और बढ़ा दिया। नगरकोट की लूट में ही उसे जो धन, वस्त्र और बहुमूल्य वस्तुएँ प्राप्त हुई थीं, वह उसकी अपेक्षा से कहीं अधिक थी। इसके अतिरिक्त महमूद को जयपाल जैसा शत्रु भी अन्य स्थानों पर प्राप्त नहीं हुआ। इस कारण बार–बार भारत पर आक्रमण करने की उसकी योजना सफल हो सकी। ऐसा प्रतीत होता हैं कि पेशावर के युद्ध के पश्चात सम्पूर्ण उत्तर–भारत अपंग हो गया था। महमूद एक के बाद एक नगर और मन्दिरों को लूटता और नष्ट करता गया, भय से भारतीय अपने धन, धर्म, मन्दिरों और नगरों को मुसलमानों को समर्पित करते चले गये और जिसने थोड़ा बहुत विरोध किया, भी वह सफल न हुआ। महमूद वर्षो तक एक भीषण तूफान की भॉति उत्तर–भारत को रौंदता रहा और हिन्दू राज्य तिनकों की भाँति उसके सामने बिखर गये। प्रत्येक देवता की मूर्ति का भंजन, प्रत्येक स्थान की लूटमार, लाखों स्त्रियों का अपमान और लाखों पुरूषों का कत्ल या उनका इस्लाम में परिवर्तन भी हिन्दू भारत को महमूद का मुकाबला करने का आत्मबल और शक्ति प्रदान न कर सका।

1009 ई. में आनन्दपाल की पराजय के पश्चात् महमूद ने अलवर राज्य में स्थित नारायनपुर नामक स्थान को जीता और लूटा। 1014 ई. में उसने थानेश्वर को लूटा। मार्ग में भेरा के शासक राजाराम ने उससे युद्ध किया, परन्तु उसकी पराजय हुई। सभी मन्दिरों और मूर्तियों को तोड़कर और नगरों को लूटकर महमूद वापस चला गया। वह प्रसिद्ध चक्रस्वामी की मूर्ति को अपने साथ ले गया, जिसे उसने गजनी के सार्वजनिक चौक में फेंकवा दिया। विश्वास किया जाता है कि दिल्ली के राजा ने पड़ोसी हिन्दू राजाओं से सहायता लेकर महमूद को रोकने का प्रयत्न किया था। परन्तु वह असफल हुआ था और थानेश्वर की रक्षा के लिए कोई हिन्दू सेना नहीं पहुंची थी। 1018 ई. में महमूद कन्नौज राज्य पर आक्रमण करने के लिए आया। शाही वंश का शासक

त्रिलोचनपाल पूर्वी पंजाब से भाग खड़ा हुआ और मार्ग के सभी छोटे–छोटे राज्य उसके समक्ष आत्मसमर्पण करते चले गए। मथुरा के निकट महावन में यदुवंश के शासक कुलचन्द्र ने उसका मुकाबला किया, परन्तु परास्त हुआ आगे बढ़कर महमूद ने मथुरा पर आक्रमण किया जो दिल्ली के राज्य में था। मथुरा की रक्षा का कोई प्रबंध नहीं किया गया था और महमूद ने वहाँ इच्छानुसार लूटमार की। मथुरा हिन्दूओं का महान तीर्थस्थान था और वहां हजारों मंदिर थे। उतबी ने लिखा है कि "महमूद ने एक ऐसा नगर देखा जो योजना तथा निर्माण कला की दृष्टि से अद्‌भुत था। उसके चारों ओर पत्थर के बने हुए एक हजार दुर्ग थे, जिनका प्रयोग मंदिरों की भांति किया जाता था। उसके मध्य में एक सबसे ऊँचा मंदिर था जिसके सौन्दर्य और सजावट का वर्णन करने में न किसी लेखक की लेखनी समर्थ है और न किसी चित्रकार की तूलिका।" उतबी के कथन के अनुसार मंदिरों में सोने और चांदी की हीरो–जवाहरातों से जड़ी हुई हजारों मूर्तियाँ थीं। उनमें से कुछ सोने की मूर्तियाँ पाँच–पाँच हाथ ऊँची थीं, जिनमें से एक में 50,000 दीनार के मूल्य की लाल मणियाँ जड़ी हुई थीं और एक अन्य मूर्ति में एक ऐसा नीलम जड़ा हुआ था, जिसका मूल्य 4,000 मिरकाल था। विभिन्न मूर्तियों के नीचे अतुल धनराशि गड़ी हुई थी, जिसे महमूद ने प्राप्त किया। महमूद ने मथुरा का कोना–कोना लूटा, मंदिरों को तोड़ा, भूमि को खोद–खोद कर धन निकाला, सभी मूर्तियों को तोड़कर धन की तरह से अपने साथ ले गया, नगर को नष्ट कर दिया और अनेक स्त्री पुरुषों का कत्ल कर दिया या गुलाम बना लिया। मथुरा के निकट के उतने ही भव्य स्थान वृन्दावन का भी यही हाल हुआ और महमूद को वहां से लूट में अपार धन मिला। यहाँ से महमूद कन्नौज गया, जहाँ गुर्जर–प्रतिहार वंश के अंतिम शासक राज्यपाल का शासन था। राज्यपाल बिना युद्ध किए भाग गया और कन्नौज को महमूद ने लूट लिया। उसके पश्चात् महमूद ने कानपुर के निकट मंझावन नामक स्थान पर आक्रमण किया जो ब्राह्मणों के किले के नाम से विख्यात था। 25 दिन तक महमूद किले को न जीत सका, परन्तु उसके पश्चात् किले के स्त्री और बच्चे जल मरे और पुरुष युद्ध में मारे गए। उसके बाद असी के शासक चंद्रपाल और सिरसावा (सहारनपुर के निकट) के शासक चाँदराय ने उसका मुकाबला नहीं किया। मार्ग में अन्य स्थानों पर भी महमूद का कोई मुकाबला नहीं हुआ और विभिन्न स्थानों पर लूटमार करता हुआ महमूद गजनी वापस चला गया।

महमूद के वापस जाने के उपरान्त बुन्देलखण्ड के शासक विद्याधर (गण्ड) ने कुछ हिन्दू राजाओं का एक मित्र संघ बनाया, जिसका मुख्य उद्देश्य कन्नौज के शासक राज्यपाल को सजा देना था। उसकी दृष्टि में राज्यपाल ने

मथुरा और वृन्दावन जैसे तीर्थ स्थानों को लूटने वाले महमूद से बिना युद्ध किये भागकर एक बड़ा अपराध किया था। इन राजाओं ने राज्यपाल पर आक्रमण करके उसे मार दिया। महमूद ने विद्याधर को दण्ड देने का निश्चय किया और इस उद्देश्य की पूर्ति के लिए 1019 ई. में वह पुनः भारत आया। हिन्दूशाही राजा त्रिलोचनपाल ने इस बार यमुना नदी के निकट उसका मुकाबला किया। त्रिलोचनपाल साहसी था और इस अवसर पर वह चंदेलों का साथ दे रहा था, परन्तु महमूद ने उसे परास्त कर दिया और वह भाग खड़ा हुआ। वहां से महमूद बरी की ओर बढ़ा, जिसे प्रतिहारों ने कन्नौज की लूट के पश्चात् अपनी राजधानी बना लिया था। राज्यपाल का पुत्र त्रिलोचनपाल (प्रतिहार वंशीय) वहां का शासक था। भय के कारण वह भाग खड़ा हुआ और महमूद ने बरी को धूल में मिला दिया। उसके पश्चात् महमूद अपने मुख्य शत्रु विद्याधर को परास्त करने के लिए बुन्देलखण्ड की सीमा पर पहुंचा (1020–21 ई.)। विद्याधर एक बड़ी सेना के साथ उसका मुकाबला करने के लिए तैयार था। विद्याधर की विशाल सेना को देखकर महमूद को घबराहट हो गई, परन्तु शाम को एक युद्ध में हिन्दुओं की सेना के एक भाग की पराजय हुई। सम्भवतया किसी अन्य कारणवश अथवा झुटपुट के इस युद्ध की पराजय से विद्याधर साहस खो बैठा और रात को चुपके से भाग निकला। प्रातः काल शत्रु की सेना को सामने न पाकर महमूद को बड़ा आश्चर्य हुआ, विद्याधर का साहस छोड़ देना उसके राज्य के लिए विनाशकारी सिद्ध हुआ। महमूद ने उसके सम्पूर्ण राज्य में लूटमार की और बहुत सी सम्पति लेकर वापस लौट गया, परन्तु विद्याधर की शक्ति तोड़ी नहीं गई थी। 1021–22 में महमूद पुनः वापस आया, मार्ग में ग्वालियर के राजा कीर्तिराज को सन्धि के लिए बाध्य करता हुआ महमूद कालिंजर के किले के सम्मुख पहुंचा। किले का घेरा बहुत समय तक पड़ा रहा, परन्तु उसे जीता न जा सका। विद्याधर ने सन्धि की बात चीत की और महमूद ने उसे स्वीकार कर लिया। महमूद ने विद्याधर को 15 किले इनाम के रूप में दिए, इसके पश्चात् महमूद वापस चला गया।

1024 ई. में महमूद एक विशाल सेना लेकर सोमनाथ पर आक्रमण के लिए आगे बढ़ा। काठियावाड़ (गुजरात) में समुद्र तट पर बना हुआ शिव का यह मंदिर उत्तर–भारत में सबसे अधिक सम्मानित मन्दिर था। लाखों व्यक्तियों की प्रतिदिन की भेंट के अतिरिक्त 10,000 गाँवों की स्थायी आय उसे प्राप्त होती थी। यह मन्दिर एक परकोटे से घिरा हुआ था, आकर और सौन्दर्य की दृष्टि से मंदिर अद्वितीय था और वहां अत्यधिक धन संचित था, हजारों प्रकार के हीरे जवाहरातों से शिवलिंग का छत्र बना हुआ था, स्वयं शिवलिंग बीच अधर में

बिना किसी सहारे के लटका हुआ था, 200 मन की सोने की जंजीर से उसका एक घंटा बजाया जाता था, 350 स्त्री और पुरुष शिवलिंग के सम्मुख सर्वदा नाचते रहने के लिए नियुक्त थे, लिंग के भूगर्भ स्थल में अकूत संपत्ति एकत्रित थी और एक हजार पुजारी देवता की पूजा में संलग्न रहते थे। सोमनाथ का शिव मन्दिर अद्वितीय था, परन्तु उसके पुजारियों का दम्भ आश्चर्यजनक था। उनका कहना था कि महमूद ने उत्तर–भारत के देव मन्दिरों को इस कारण नष्ट किया था कि भगवान सोमनाथ उन सभी से असंतुष्ट थे, उन्होंने यह तक गर्वोक्ति की कि महमूद भगवान सोमनाथ को क्षति पहुचाने की शक्ति ही नहीं रखता। पुजारियों का यह दम्भ और मन्दिर की अतुल सम्पति महमूद के आक्रमण का कारण बनी। मुल्तान के मार्ग से महमूद ने काठियावाड़ में प्रवेश किया और मार्ग की साधारण बाधाओं को हटाता हुआ वह 1025 ई. में काठियावाड़ की राजधानी अन्हिलवाड़ पहुँच गया। राजा भीमदेव प्रथम भाग खड़ा हुआ और महमूद ने बिना किसी विरोध के राजधानी को लूटा। उसके पश्चात् महमूद सोमनाथ के मंदिर के निकट पहुँचा। मन्दिर में हजारों हिन्दू–भक्त एकत्र हो गये थे और वे पूरे विश्वास के साथ युद्ध के लिए तत्पर थे। महमूद का पहले दिन का आक्रमण सफल न हुआ, परन्तु दूसरे दिन वह मंदिर की प्राचीर को पार कर गया। युद्ध में 50,000 से अधिक व्यक्ति मारे गये। महमूद ने मंदिरों को पूर्णतया नष्ट कर दिया। उसने छत में लगे हुए चकमक पत्थर को हटा दिया, जिसके कारण शिवलिंग अधर में लटका हुआ था और वह भूमि पर गिर पड़ा। महमूद ने उसे तोड़ दिया, प्रत्येक प्रकार से मंदिर को खोद–खोद कर लूटा गया, अतुल सम्पति लेकर महमूद सिन्ध के रेगिस्तान के रास्ते वापस लौटा। मार्ग में उसके भारतीय मार्गदर्शक ने उसे मार्ग में भटकाकर काफी क्षति पहुचाई, परन्तु अंत में मुल्तान होता हुआ महमूद अपने लूटे हुए खजाने के साथ सुरक्षित गजनी पहुँच गया। सोमनाथ के शिवलिंग के टूटे हुए टुकड़े को उसने गजनी की जामी–मस्जिद की सीढ़ियों में लगवा दिया। जिस समय महमूद सोमनाथ को लूटकर वापस जा रहा था, मार्ग में सिन्ध के जाटों ने उसे तंग किया। जाटों को दंड देने के लिए 1027 ई में महमूद अन्तिम बार भारत आया। जाटों को उसने कठोर दंड दिया, उनकी सम्पत्ति लूट ली गयी और उनकी स्त्रियों एवं बच्चों को दास बना लिया गया। यह महमूद का अन्तिम आक्रमण था।

इस प्रकार महमूद ने भारत पर विभिन्न आक्रमण किये। उनकी संख्या ठीक प्रकार निश्चित नहीं है, परन्तु उपर्युक्त महत्वपूर्ण आक्रमण उसकी सफलता, भारत की दुर्बलता और उसके परिणामों पर प्रकाश डालने के लिए

पर्याप्त हैं। महमूद ने न केवल भारत की सदियों से संचित सम्पति को ही लूटने में सफलता प्राप्त की, वरन पंजाब, सिन्ध, मुल्तान और अफगानिस्तान के प्रदेशों में गजनवी–वंश का राज्य स्थापित किया। 1030 ई. में महमूद की मृत्यु हो गयी।

7.3.1 महमूद गजनवी के आक्रमण के कारण

इतिहासकारों ने भारत पर महमूद के आक्रमणों के बारे में भिन्न–भिन्न मत प्रकट किये हैं, उनसे पता चलता है कि महमूद के भारत पर आक्रमण करने के निम्नलिखित कारण थे–महमूद भारत में इस्लाम धर्म की प्रतिष्ठा को स्थापित करना चाहता था। परन्तु प्रो0 हबीब ने महमूद को पूर्णतया सांसारिक व्यक्ति बताया है। उनका कहना है वह धर्मान्ध न था। वह मुस्लिम उलेमा–वर्ग की आज्ञाओं को मानने के लिए तैयार न था और उसके बर्बरतापूर्ण कार्यों ने इस्लाम का प्रचार नहीं किया अपितु इस्लाम को संसार की दृष्टि में गिराया ही। इतिहासकार जाफर ने लिखा है महमूद का उद्देश्य भारत में इस्लाम का प्रचार नहीं अपितु धन लूटना था। उसने हिन्दू–मन्दिरों पर इसलिए आक्रमण किये क्योंकि वहाँ धन संचित था। प्रो. नाजिम ने लिखा है यदि उसने हिन्दू–राजाओं को तंग किया तो उसने ईरान और ट्रान्स–ऑक्सियाना के मुस्लिम शासकों को भी नहीं छोड़ा, जो लूटमार उसने गंगा के मैदान में की, वैसी ही उसने ऑक्सस नदी के किनारे पर भी की। इसी प्रकार हैवेल का कथन है कि वह बगदाद को भी वैसी ही निर्दयता से लूटता जैसी निर्दयता से उसने सोमनाथ को लूटा था, यदि उसे वहाँ से भी उतना ही धन मिलने की आशा होती। इस प्रकार इन विभिन्न इतिहासकारों के मतानुसार महमूद के भारत पर आक्रमण का उद्देश्य धार्मिक न होकर आर्थिक था। परन्तु महमूद के दरबारी इतिहासकार उतबी ने उसके आक्रमणों को जिहाद माना था, जिसका मूल उद्देश्य इस्लाम का प्रसार और बुतपरस्ती (मूर्ति–पूजा) को समाप्त करना था। तुर्कों के नवीन धार्मिक जोश और उस समय की परिस्थितियों को देखते हुए इसे अस्वाभाविक भी नहीं माना जा सकता है। महमूद ने भारत में मन्दिरों को लूटा ही नहीं अपितु मूर्तियों और मन्दिरों को बर्बाद भी किया था। इस कारण यह माना जाता है कि महमूद का एक उद्देश्य धर्म का प्रचार और इस्लाम की प्रतिष्ठा को स्थापित करना था।

महमूद के भारत पर आक्रमण का उद्देश्य भारत की सम्पत्ति को लूटना था, इससे कोई भी इतिहासकार इन्कार नहीं करता है। वह धन का लालची था और उसे गजनी के ऐश्वर्य तथा राज्य–विस्तार के लिए धन की आवश्यकता थी। उसके प्रारम्भिक आक्रमणों की सफलता एवं धन की लूटमार ने उसे और

अधिक लालची बना दिया था। प्रत्येक अवसर पर जो धनराशि उसे भारत से प्राप्त हुई उसने उसे भारत की सम्पन्नता से परिचित करा दिया और प्रत्येक आक्रमण को उसने अधिक से अधिक धन प्राप्त करने का साधन बनाया।

अपने पड़ोस के हिन्दू–राज्यों को नष्ट करना महमूद का राजनीतिक उद्देश्य था। गजनी और हिन्दुशाही राज्यों के झगड़े अलप्तगीन के समय से चल रहे थे और तीन बार हिन्दुशाही राज्य गजनी के राज्य पर आक्रमण कर चुका था। अपने इस शत्रु को समाप्त करना महमूद के लिए आवश्यक था। इस कारण महमूद ने स्वयं आक्रमणकारी नीति अपनायी। हिन्दुशाही राज्य को समाप्त करने के पश्चात् उसका साहस बढ़ गया और उसने भारत में दूर–दूर तक आक्रमण किये।

यश की लालसा भी महमूद के आक्रमणों का एक प्रमुख कारण थी। महमूद महत्वाकांक्षी व्यक्ति था और सभी महान् शासकों की भाँति वह भी राज्य–विस्तार और यश का भूखा था। उसने पश्चिम की ओर अपने राज्य का विस्तार किया था। पूर्व की ओर हिन्दुशाही राज्य को समाप्त करना भी उसका उद्देश्य था।
डॉ. ए. बी. पाण्डेय के अनुसार भारत से हाथी प्राप्त करना भी उसका एक उद्देश्य था, जिनका प्रयोग वह मध्य–एशिया में अपने शत्रुओं के विरूद्ध करना चाहता था।

उपर्युक्त तथ्यों से स्पष्ट है कि महमूद गजनवी के आक्रमण का उद्देश्य धन लूटना था, क्योंकि पड़ोस के हिन्दू–राज्यों को नष्ट करने के लिए और अपने राज्य विस्तार की महत्वाकांक्षाओं को पूरा करने के लिए उसे अधिक धन की आवश्यकता थी, जिसकी पूर्ति भारतीय मन्दिरों से की जा सकती थी। वह यह भलीभाँति जानता था क्योंकि उस समय भारतीय मन्दिरों में काफी धन संचित था, जिसके बारे में उसने काफी पहले से सुन रखा था और फिर प्रत्येक आक्रमण के अवसर पर भारतीय मन्दिरों से प्राप्त होने वाली धनराशि ने उसे भारत की सम्पन्नता से परिचित करा दिया था, तथा प्रत्येक आक्रमण की सफलता ने उसे और अधिक लालची बना दिया। अगर वह धर्मान्ध होता तो वह ईरान और ट्रान्स ऑक्सियाना के मुस्लिम शासकों को परेशान न करता।

7.3.2 महमूद गजनवी का मूल्यांकन

महमूद एक साहसी सैनिक और सफल सेनापति था। उसकी गणना संसार के उन सफलतम सेनापतियों में की जाती है, जिन्हें जन्मजात सेनापति पुकारा जाता है। उसमें नेतृत्व करने और अपने साधनों एवं परिस्थितियों से पूर्ण

लाभ उठाने की क्षमता थी। उसमें मानवीय गुणों को परखने की बुद्धि थी और वह प्रत्येक व्यक्ति को उसकी योग्यतानुसार कार्य देता था तथा प्रत्येक से अपनी इच्छानुसार कार्य लेता था। उसकी सेना में अरब, तुर्क और अफगान ही नहीं, अपितु हिन्दू सैनिक भी थे। परन्तु विभिन्न नस्लों से मिल जुलकर बनी हुई उसकी सेना उसके नेतृत्व में एक शक्तिशाली तथा विजयी सेना बन गयी थी। अपनी योग्यता के अनुकूल महमूद महत्वाकांक्षी भी था। वह सर्वदा सम्मान और साम्राज्य की लालसा करता रहा। अपने इन गुणों के कारण वह सफल भी हुआ था। अपने पिता से उसे गजनी और खुरासान का एक छोटा सा राज्य प्राप्त हुआ था, अपनी योग्यता से उसने इसे इराक और कैस्पियन सागर से लेकर गंगा–तट तक फैला दिया। उसका साम्राज्य बगदाद के खलीफ से बड़ा और शक्तिशाली था। जब खलीफा ने महमूद को समरकन्द देने से इन्कार किया था, तब महमूद ने उस पर आक्रमण करने की धमकी दी थी। इस प्रकार महमूद एक शक्तिशाली और विशाल साम्राज्य का निर्माता था। यह कहना भूल है कि महमूद ने दुर्बल भारतीय शासकों को परास्त करने में ही सफलता पाई थी। महमूद ने मध्य–एशिया और ईरान के शत्रुओं के विरुद्ध भी इसी प्रकार सफलता प्राप्त की थी। एक साहसी सैनिक, महान सेनापति और साम्राज्य–निर्माता की दृष्टि से महमूद का स्थान श्रेष्ठ है।

महमूद शिक्षित और सुसभ्य था तथा विद्वानों एवं कलाकारों का सम्मान करता था। उसने अपने समय के महान विद्वानों को गजनी में एकत्र किया था। गणित, दर्शन ,ज्योतिष और संस्कृत का उच्चकोटि का विद्वान अलबरूनी, इतिहासकार उतबी, दर्शनशास्त्र का विद्वान फाराबी, 'तारीख–ए–सुबुक्तगीन' का लेखक बैहाकी, जिसे इतिहासकार लेनपूल ने 'पूर्वी पेप्स' की उपाधि दी, फारस का कवि उजारी, खुरासानी विद्वान तुसी, महान शिक्षक और विद्वान उन्सुरी, विद्वान अस्जदी और फर्रुखी तथा 'शाहनामा' का रचयिता विद्वान फिरदौसी आदि उसके दरबार में थे। वे सभी योग्य थे और महमूद के संरक्षण ने उनको अधिक योग्य बनने में सहायता दी थी। महमूद ने गजनी में एक विश्वविद्यालय, एक बड़ा पुस्तकालय और एक बड़ा अजायबघर स्थापित किया था। वह कलाकारों को भी संरक्षण देता था। उसने देश–विदेश के कलाकारों को बुलाकर गजनी में भव्य इमारतों का निर्माण कराया। अनेक महलों, मस्जिदों, मकबरों आदि से उसने गजनी को सुशोभित किया। गजनी की विख्यात जामी मस्जिद का निर्माण भी उसी ने कराया था। उसके समय में गजनी इस्लामी संसार की शोभा, वैभव और विद्वत्ता का महान केन्द्र बन गया।

महमूद एक न्यायप्रिय शासक था। अपने भतीजे को एक अन्य व्यक्ति की

पत्नी से अवैध सम्बन्ध रखने के कारण उसने उसे स्वयं कत्ल किया। एक अन्य अवसर पर उसने शाहजादे मसूद को एक व्यापारी का कर्जा न चुकाने के कारण काजी की अदालत में जाने और व्यापारी का कर्जा चुकाने के लिए बाध्य किया। ऐसी ही अनेक कहानियाँ महमूद की लोकप्रियता के बारे में प्रचलित हैं। महमूद ने अपने सूबेदारों को अपने नियन्त्रण में रखने, अपने राज्य में शान्ति और व्यवस्था बनाये रखने, व्यापार और कृषि की उन्नति करने तथा अपनी प्रजा के जीवन और सम्मान की सुरक्षा करने में सफलता पायी थी।

महमूद धार्मिक दृष्टि से कट्टर था। वह सुन्नी था और हिन्दुओं के प्रति ही नहीं, अपितु शियाओं के प्रति भी अनुदार था तथा उनको दण्ड देने के लिए तत्पर रहता था। बाद के समय के अथवा मुहम्मद हबीब जैसे आधुनिक इतिहासकार चाहे किसी प्रकार भी उसकी धार्मिक कट्टरता को ढकने का प्रयत्न करें, परन्तु यह मानना पड़ता है कि विधर्मियों के प्रति उसका व्यवहार कठोरता का और हिन्दुओं के प्रति नृशंसता का था। महमूद के विषय में तत्कालीन विचारधारा को मानना अधिक उपयुक्त है। हिन्दुओं के प्रति उसके व्यवहार की आलोचना अलबरूनी ने भी की थी। तत्कालीन समय में मुसलमान उसे इस्लाम धर्म का महान प्रचारक मानते थे। उसे गाजी (विधर्मियों को कत्ल करने वाला) और मूर्तिभंजक अथवा बुतशिकन पुकारा गया था। खलीफा ने सोमनाथ के आक्रमण की सफलता पर उसे और उसके पुत्रों को सम्मान–पत्र और वस्त्र भेजे थे तथा तत्कालीन मुस्लिम संसार ने उसे विधर्मियों को नष्ट करके दूरस्थ देशों में इस्लाम की प्रतिष्ठा और शक्ति को स्थापित करने वाला माना था। इस कारण तत्कालीन विचारधारा के आधार पर महमूद को धर्मान्ध माना जा सकता है। तर्क के आधार पर भी हिन्दुओं और हिंदू–मंदिरों के प्रति महमूद के नृशंस व्यवहार का कारण केवल धन की लालसा ही हो, यह स्वीकार नहीं किया जा सकता है।

महमूद धन का लालची था, यद्यपि इसके साथ–साथ वह मुक्त–हृदय से धन व्यय भी करता था। भारत पर उसके आक्रमणों का प्रमुख उद्देश्य धन की लालसा था। अपनी मृत्यु के अवसर पर वह यह सोचकर बहुत दुखी हुआ कि उसे अपनी सम्पूर्ण सम्पति को छोड़कर जाना पड़ेगा। प्रख्यात विद्वान फिरदौसी को उसने प्रत्येक छन्द की रचना के लिए एक सोने की दीनार देने का वायदा किया था, परन्तु जब उसने 1,000 छन्द के 'शाहनामा' को उसके सामने प्रस्तुत किया तो उसने सोने के स्थान पर चाँदी की दीनारें देने की इच्छा प्रकट की, जिन्हें लेने से फिरदौसी ने इन्कार कर दिया। यद्यपि इसका मुख्य कारण महमूद के कृपापात्र अयाज का फिरदौसी के विरुद्ध षडयंत्र था और महमूद ने बाद में

फिरदौसी के पास स्वर्ण की दीनारें भेज भी दीं (यद्यपि तब तक फिरदौसी की मृत्यु हो चुकी थी) परन्तु तब भी उपर्युक्त घटना से महमूद की लालची प्रकृति का आभास अवश्य होता है। प्रो. ब्राउन ने लिखा है कि "वह किसी भी उपाय से धन–प्राप्ति के लिए प्रयत्नशील रहता था। इसके अतिरिक्त उसके चरित्र में कुछ भी निन्दनीय न था।"

परन्तु महमूद की सबसे बड़ी दुर्बलता उसका कुशल शासन–प्रबन्धक न होना था। इस कारण महमूद अपने राज्य को स्थायित्व प्रदान न कर सका। उसका विशाल साम्राज्य उसके दुर्बल उत्तराधिकारियों के हाथों में जाते ही नष्ट होने लगा। महमूद उस साम्राज्य का निर्माता था और उसका व्यक्तित्व ही उसे सुरक्षित रख सका। इससे स्पष्ट होता है कि महमूद अपने शासन को स्थायी सिद्धांतों पर स्थापित न कर सका था। लेनपूल ने लिखा है कि "महमूद महान सैनिक था और उसमें अपार साहस तथा अथाह शारीरिक एवं मानसिक शक्ति थी, परन्तु वह रचनात्मक और दूरदर्शी राजनीतिज्ञ न था। हमें ऐसे किन्हीं नियमों, संस्थाओं अथवा शासन–प्रणालियों का पता नहीं है जिनकी नींव उसने डाली हो।" एल्फिन्स्टन ने भी जिसने महमूद के अन्य गुणों की प्रशंसा की है, लिखा है कि "उसके भारतीय कार्य भी जिनके लिए उसने अपनी अन्य योजनाएं त्याग दी थी, किसी प्रकार के संगठन अथवा व्यवस्था की भावना का परिचय नही देते।"

इसके उपरान्त भी महमूद मुस्लिम इतिहास का एक महान शासक था। मुस्लिम इतिहास में सुल्तान कहलाने योग्य वह प्रथम शासक था। मध्य–एशिया के महान शासकों में उसका स्थान है। प्रो. हबीब के शब्दों में "अपने समकालीन व्यक्तियों में वह चरित्र–बल से नहीं, अपितु योग्यता के कारण ही इतना उच्च पद प्राप्त कर सका था। उसकी विजयें उसके साम्राज्य की शान्ति और समृद्धि, सांस्कृतिक प्रगति और उसके प्रयत्नों के द्वारा इस्लाम की प्रतिष्ठा का विस्तार उसे महान शासकों में स्थान प्रदान करते हैं। महमूद के समय से गजनी इस्लामी संसार की शक्ति, वैभव, शिक्षा, विद्वता, सौन्दर्य और ललित कलाओं की प्रगति का केन्द्र–स्थान बन गया था और यह सब कुछ महमूद की अद्वितीय सफलताओं का कारण था।

परन्तु भारतीय इतिहास में महमूद का स्थान एक धर्मान्ध और बर्बर विदेशी लुटेरे के समान है। महमूद गजनी का सुल्तान था, भारत का नहीं। पंजाब, सिन्ध और मुल्तान जो उसके राज्य में सम्मिलित किये गए थे, उसकी पूर्वी सीमाओं की सुरक्षा और भारत पर निरंतर आक्रमण करने का आधार मात्र थे। इस कारण महमूद ने इन प्रदेशों के शासन की ओर कोई घ्यान नहीं दिया।

भारत पर अपने निरन्तर आक्रमणों में महमूद ने प्रत्येक स्थान और प्रत्येक व्यक्ति से धन लूटा, प्रत्येक मंदिर को नष्ट किया, प्रत्येक मूर्ति को खंडित किया, लाखों व्यक्तियों को इस्लाम स्वीकार करने के लिए बाध्य किया अथवा उनका कत्ल कर दिया, लाखों को गुलाम बनाया, लाखों स्त्रियों के सतीत्व को नष्ट करने का कारण बना, हजारों सुन्दरतम स्त्रियों को गजनी ले गया, श्रेष्ठतम कलाकृतियों को नष्ट किया तथा हजारों नगरों और गाँवों को जलाकर राख कर दिया। महमूद ने हिन्दुओं के धन, सम्मान, वैभव, संस्कृति आदि सभी को लूटा। एक भयंकर तूफान की भांति महमूद जहाँ भी गया वहाँ विनाश करता हुआ गया। जो कुछ वह अपने साथ ले जा सकता था, वह ले गया और जिसको वह नष्ट कर सकता था, उसको उसने नष्ट कर दिया। इस कारण भारत के निवासियों के लिए महमूद एक धर्मान्ध और बर्बर विदेशी लुटेरे से अधिक और हो भी क्या सकता है।

7.3.3 अलबरूनी का भारत विवरण

अलबरूनी महमूद गजनवी के साथ भारत आया था। वह अरबी भाषा का विद्वान था तथा भारत आकर उसने संस्कृत भाषा का भी गम्भीर अध्ययन किया। उसने भारतीय दर्शन, ज्योतिष शास्त्र आदि का भी ज्ञान प्राप्त किया। उसने कई ग्रन्थ लिखे जिनमें से 'तहकीक–ए–हिन्द' बहुत प्रसिद्ध हुआ। अलबरूनी ने उसे अरबी भाषा में लिखा था और उसमें उसने भारत की राजनीतिक, सामाजिक, धार्मिक तथा आर्थिक स्थिति के बारें मे विस्तृत रूप से लिखा। इस कारण उसका भारत–विवरण तत्कालीन भारत के बारे में जानकारी का एक महत्वपूर्ण स्रोत है।अलबरूनी ने भारत की जलवायु, भाषाएँ, रीति–रिवाज, सामाजिक–व्यवस्था, दर्शन, कर्म–सिद्धान्त, जीव के आवागमन का सिद्धान्त, धर्म, वेश–भूषा, भोजन, मनोरंजन के साधन, त्यौहार, मेले तथा उत्तरी–भारत के शासकों और राज्यों आदि के सम्बन्ध में लिखा है। उसने अपने विवरण में भगवत्–गीता, वेद, उपनिषद, पतंजलि के योगशास्त्र आदि के बारे में भी लिखा है। इस प्रकार भारत के विषय में उसका विवरण बहुत महत्वपूर्ण है।

अलबरूनी ने उत्तर–भारत के राजवंशों का विवरण दिया, जबकि दक्षिण–भारत के राजवंशों का उसने कोई विवरण नहीं दिया है। उसके अनुसार भारतीय राज्यों में एकता का अभाव था और वे विदेशी आक्रमणकारियों के विरूद्ध भी एक नहीं हो सके। उसने भारतीय सामाजिक विभाजन, अस्पृश्यता और वैश्य तथा शूद्रों की बुरी स्थिति के बारें में लिखा। उसके अनुसार प्रत्येक कार्य में ब्राह्मण का अधिकार है, जैसे स्तुति करना, वेद पाठ करना आदि। अगर ये ज्ञात हो जाय कि किसी वैश्य या शूद्र ने वेद–पाठ किया है तो उसकी

जीभ काट ली जाती है। उसने अस्पृश्य जाति को अन्त्यज बताया और यह भी बताया कि वे नगर से बाहर रहते थे। अलबरूनी का यह भी कहना है कि भारतीय सामाजिक दृष्टि से बहुत संकीर्ण विचार के हैं। धर्म के सम्बन्ध में अलबरूनी ने लिखा था, हिन्दू एक ईश्वर में विश्वास करते हैं जो शाश्वत है और अनादि–अनन्त है। अलबरूनी ने भारत के वैभवपूर्ण मन्दिरों का भी वर्णन किया है। अलबरूनी ने यह भी लिखा है कि भारतीय विदेशों से कुछ भी सीखना नहीं चाहते तथा उन्हें अपने देश, धर्म ज्ञान, राजा आदि पर गर्व है। इस प्रकार अलबरूनी ने भारतीय जीवन के विविध पहलुओं पर दृष्टिपात किया तथा अपने ग्रन्थ में उनका उल्लेख किया। भारतीय जन–जीवन के सभी क्षेत्रों के सम्बन्ध में जानकारी प्राप्त करने का यह ग्रन्थ एक प्रमुख साधन है।

7.4 सारांश

इस प्रकार स्पष्ट है कि भारत पर महमूद के आक्रमण एक भीषण झंझावात के समान थे। कभी–कभी यह कहा जाता है कि उसने भारत में विनाश तो किया, परन्तु कोई स्थायी प्रभाव नहीं छोड़ा। भारतीय थोड़े समय के पश्चात उन दुर्घटनाओं को भूल गए और उन्होंने पुनः अपने नगरों, मंदिरों एवं वैभव का निर्माण कर लिया। निसंदेह भारतीयों ने महमूद के आक्रमणों को भुला दिया जिसका दुष्परिणाम भी उन्हें भुगतना पड़ा, परन्तु यह कहना भूल है कि महमूद के आक्रमणों का भारत पर कोई प्रभाव नहीं पड़ा। महमूद ने पंजाब, सिन्ध और मुल्तान को अपने राज्य में सम्मिलित करके अन्य मुस्लिम आक्रमणकारियों के लिए भारत का मार्ग खोल दिया। महमूद गोरी ने गजनी के भारतीयों क्षेत्रों को अपने अधिकार में करने के आशय से भारत पर आक्रमण आरम्भ किये। महमूद ने भारत की सम्पति को लूटकर और उसकी सैनिक शक्ति को नष्ट करके भारत को आर्थिक एवं सैनिक दृष्टि से दुर्बल बना दिया। निरंतर पराजय के कारण हिन्दुओं को मुसलमानों के विरुद्ध युद्ध करने के मनोबल में भी कमी आ गई। महमूद किसी भी हिन्दू राजा से पराजित नहीं हुआ, इससे हिन्दू शासकों में मुस्लिम आक्रमणकारियों की शक्ति के प्रति भय उत्पन्न हुआ, जिसका प्रभाव पर्याप्त समय तक रहा। इन सभी ने भारत की भविष्य की राजनीति को प्रभावित किया। मुस्लिम आक्रमणकारियों की दृष्टि से महमूद की सबसे बड़ी देन हिन्दुशाही राज्य का विनाश था, जिसके कारण मुसलमानों के लिए भारत को विजित करना सम्भव हो सका।

7.5 शब्दावली

तहकीक–ए–हिन्द– यह अलबरूनी के द्वारा लिखा गया एक प्रमुख ग्रन्थ है। अलबरूनी महमूद गजनवी के साथ भारत आया था। उसने अरबी

भाषा में 'तहकीक–ए–हिन्द' नामक ग्रन्थ की रचना की। इस ग्रन्थ में तत्कालीन भारत की राजनीतिक, सामाजिक, धार्मिक और आर्थिक स्थिति के बारे में विस्तार से चर्चा की गयी है।

भााहनामा– 'शाहनामा' नामक ग्रन्थ की रचना महमूद गजनवी के दरबारी विद्वान फिरदौसी के द्वारा की गई थी। यह फारसी भाषा का ग्रन्थ है, इस ग्रन्थ में कुल 1000 छन्द हैं। फिरदौसी ने 'शाहनामा' में ईरान के पौराणिक बादशाहों की, जिनके कार्यों से वह अत्यधिक प्रभावित था, उनकी अत्यधिक प्रशंसा की है। बाद के दिनों में 'शाहनामा' की पहचान फारस के राष्ट्रीय महाकाव्य के रूप में हो गयी।

7.6 बोध प्रश्न

01– महमूद गजनवी के भारत पर आक्रमण के कारणों पर प्रकाश डालिए?

02– महमूद गजनवी के आक्रमण के समय उत्तर भारत की राजनीतिक स्थिति का विवरण दीजिए?

03– महमूद गजनवी के सोमनाथ के मंदिर पर किए गए आक्रमण का वर्णन कीजिए?

04– महमूद गजनवी के चरित्र का मूल्यांकन कीजिए?

7.7 सन्दर्भ ग्रन्थ

- पाण्डेय, विमलचन्द्र, *प्राचीन भारत का राजनीतिक एवं सांस्कृतिक इतिहास,* सेन्ट्रल बुक डिपो, प्रयागराज।
- पाठक, विशुद्धानन्द, *उत्तर भारत का राजनीतिक इतिहास,* उत्तर प्रदेश हिन्दी संस्थान, लखनऊ।
- पाण्डेय, आर.एन., *प्राचीन भारत का राजनीतिक एवं सांस्कृतिक इतिहास,* इण्डिया बुक एजेंसी, प्रयागराज।
- श्रीवास्तव, के.सी., *प्राचीन भारत का इतिहास तथा संस्कृति,* यूनाईटेड बुक डिपो, प्रयागराज।
- सिंह, उपिन्दर, *प्राचीन एवं पूर्व मध्यकालीन भारत का इतिहास,* पियर्सन इण्डिया एजुकेशन सर्विसेज प्रा .लि. नई दिल्ली।

इकाई 8 गाहड़वाल वंश–स्रोत एवं प्रारम्भिक इतिहास– गोविन्दचन्द्र, विजयचन्द्र एवं जयचन्द्र

इकाई की रूपरेखा

8.0 प्रस्तावना

8.1 उद्देश्य

8.2 स्रोत तथा प्रारंभिक इतिहास

8.2.1 प्रमुख स्रोत

8.2.2 प्रारंभिक इतिहास

8.3 गोविन्दचन्द्र

8.4 विजयचन्द्र

8.5 जयचन्द्र

8.6 सारांश

8.7 अभ्यासार्थ प्रश्न

8.8 संदर्भ ग्रन्थ

8.0 प्रस्तावना

गाहड़वाल राजवंश भारतीय उपमहाद्वीप की एक राजपूत शक्ति थी, जिसने 11वीं और 12वीं शताब्दी के दौरान उत्तर प्रदेश और बिहार के वर्तमान भारतीय राज्यों के कुछ हिस्सों पर शासन किया था। उनकी राजधानी वाराणसी में स्थित थी, और एक संक्षिप्त अवधि के लिए उन्होंने कान्यकुब्ज (आधुनिक कन्नौज) पर भी शासन किया। गहड़वाल शासकों को 'काशी नरेश' के रूप में भी जाना जाता था, क्योंकि बनारस इनके राज्य की पूर्वी सीमा के निकट था।

प्रतिहार–साम्राज्य के पतन के बाद जो अराजकता फैली, उससे गंगा–यमुना के दोआब में बहुधा आक्रमण होने लगे। पंजाब के शासक निआल्तिगिन ने काशी तक आक्रमण किया। कलचुरी गंग और उसके पुत्र कर्ण ने उत्तर की ओर से कुछ देश जीते। परमारभोज ने कन्नौज पर आक्रमण किया। जब इस प्रकार देश आक्रांत था, तभी गाहड़वाल वंश का उदय हुआ। गाहड़वाल प्राचीन प्रतिष्ठान अथवा कौशांबी के चन्द्रवंशियों की संतान थे और

इस समय मिर्जापुर की पहाड़ियों के प्रदेश में राजनीतिक शक्ति के रूप में प्रकट हुए। उनकी उत्पत्ति के संबंध में ठीक–ठीक पता नहीं है। कुछ लोग उन्हें राष्ट्रकूट अथवा राठौर की शाखा मानते हैं। गहड़वाल– अनुश्रुतियों में ययाति के किसी दूरवंशज से उनका संबंध जोड़ा जाता है। कुछ लोग उसे दक्षिणी आक्रमण के फलस्वरूप स्थापित सामंतों का वंश मानते हैं। इसके संबंध में निश्चित रूप से कुछ कहना मुश्किल है।

8.1 उद्देश्य

इस इकाई का मुख्य उद्देश्य आपको गाहड़वालों के इतिहास, स्रोत व उनके कुछ मुख्य शासकों से संबंधित जानकारी प्रदान करना है।

8.2 स्रोत तथा प्रारंभिक इतिहास

प्रतिहार साम्राज्य के पतन के पश्चात कन्नौज तथा बनारस में जिस राजवंश का शासन स्थापित हुआ उसे गहड़वाल वंश कहा जाता है। इस वंश की उत्पत्ति के विषय में कोई निश्चित सूचना किसी भी साक्ष्य से नहीं मिलती है। कुछ लेख इसे 'क्षत्रिय' कहते है।

कुछ विद्वान इस वंश का संबंध राष्ट्रकूटों से जोड़ते है किन्तु यह काल्पनिक है क्योंकि स्वयं इस वंश के सारनाथ से प्राप्त लेख में राष्ट्रकूट तथा गहड़वाल, दोनों का पृथक–पृथक उल्लेख मिलता है। वास्तविकता जो भी हो, इतना तो स्पष्ट है कि इस वंश के शासक हिन्दू धर्म और संस्कृति के पोषक थे तथा पूर्वमध्यकाल में इनकी गणना प्रसिद्ध राजपूत कुलों में की जाती थी।

8.2.1 प्रमुख स्रोत

गाहड़वाल वंश का इतिहास मुख्यतः हम अभिलेख तथा साहित्य से ज्ञात करते हैं।

इस वंश के प्रमुख लेखों का विवरण इस प्रकार है –

(1) चन्द्रदेव का चन्द्रावली (वाराणसी) दानपत्र

(2) मदनपाल के राहन तथा बसही अभिलेख

(3) गोविन्दचन्द्र के वाराणसी तथा कमौली के ताम्रपत्राभिलेख

(4) गोविन्दचन्द्र का लार (देवरिया) से प्राप्त अभिलेख

(5) कुमारदेवी का सारनाथ अभिलेख

उपर्युक्त लेखों के अतिरिक्त कुछ अन्य लेख भी मिलते हैं। ये अधिकतर दानपरक हैं तथा इनसे राजनैतिक महत्व की बहुत कम बातें ज्ञात हो पाती हैं। समकालीन साहित्यिक कृतियाँ भी इस वंश के इतिहास पर कुछ प्रकाश डालती हैं। इनमें सर्वप्रमुख चन्दबरदाई का पृथ्वीराजरासो है जो गाहड़वाल शासक जयचन्द्र तथा चाहमान शासक पृथ्वीराज तृतीय के सम्बन्धों पर प्रकाश डालता है, किन्तु इसका विवरण अधिकांशतः अनैतिहासिक तथा काल्पनिक है। मेरुतुंग द्वारा रचित प्रबन्ध–चिन्तामणि में भी जयचन्द्र के विषय में कुछ सूचनायें दी गयी हैं।

गोविन्दचन्द्र का मन्त्री लक्ष्मीधर राजनीतिशास्त्र का प्रकाण्ड पंडित था जिसने 'कृत्यकल्पतरु' नामक ग्रंथ की रचना की थी। इससे तत्कालीन राजनीति, समाज तथा संस्कृति पर सुन्दर प्रकाश पडता है। मुसलमान लेखकों के विवरण से गहड़वाल तथा मुसलमानों के बीच संघर्ष का ज्ञान होता है।

फरिश्ता जयचन्द्र की सैनिक शक्ति का विवरण देता है। हसन निजाम के विवरण से जयचन्द्र तथा मुहम्मद गोरी के बीच होने वाले संघर्ष तथा मुहम्मद गोरी के विजय की सूचना मिलती है। इन सभी साक्ष्यों के आधार पर गहडवाल वंश के इतिहास का वर्णन किया जायेगा।

8.2.2 प्रारंभिक इतिहास

चन्द्रदेव

प्रतिहार–साम्राज्य के विघटन से फैली हुई अव्यवस्था का लाभ उठाकर 1090 ईस्वी के लगभग चन्द्रदेव नामक व्यक्ति ने कन्नौज पर अधिकार कर लिया। उसके पूर्वजों में महीचन्द्र तथा यशोविग्रह के नाम मिलते हैं। इनमें यशोविग्रह इस वंश का प्रथम पुरुष था जो कलचुरि शासन में कोई अधिकारी था।

उसका पुत्र महीचन्द्र, चन्द्रदेव का पिता था। उसकी उपाधि 'नृप' की मिलती है जिसमें सूचित होता है कि वह एक सामन्त शासक था जो संभवतः कलचुरियों के अधीन था। गाहड़वाल वंश की स्वतंत्रता का जनक चन्द्रदेव ही था। कन्नौज से उसके चार अभिलेख मिलते हैं जो दानपत्र के रूप में हैं। इनसे पता चलता है कि उसने वाराणसी, अयोध्या तथा दिल्ली आदि स्थानों पर भी अपना अधिकार दृढ़ कर लिया। अभिलेखों में उसे परमभट्टारक, महाराजाधिराज, परमेश्वर आदि उपाधियों से सम्बोधित किया गया है। उसके पुत्र मदनपाल तथा पौत्र गोविन्दचन्द्र का बसही से लेख मिलता है। इससे ज्ञात होता है कि 'भोज

की मृत्यु हो जाने तथा कर्ण के यशमात्र शेष बच जाने के बाद विपत्तिग्रस्त पृथ्वी ने चन्द्रदेव राजा को अपना रक्षक चुना।' इस विवरण से स्पष्ट है कि चन्द्रदेव ने कर्ण की मृत्यु (1073 ईस्वी) के बाद ही कन्नौज पर अधिकार किया था।

चन्द्रदेव ने चंदेल राजा कीर्तिवर्मा के सेनापति गोपाल को परास्त कर अपने राज्य की नींव रखी थी, जैसा कि एक शिलालेख से ज्ञात होता है। उसमे उसे काशी, कन्नौज, दिल्ली आदि हिंदूधर्म के पवित्र स्थानों का परित्राता कहा गया है। गहड़वालों की प्रथम राजधानी वाराणसी थी। चन्द्रदेव ने अपने राज्य का विस्तार पश्चिम की ओर करते हुए कान्यकुब्ज के राजा गोपाल को 1085 ई० में हराया और कन्नौज पर अधिकार कर लिया। उसने समस्त उत्तर–प्रदेश पर अपना अधिकार कायम किया और पूर्व में बंगाल के सेनों के बढ़ाव को भी रोका। उसकी 'परमभट्टारक', 'महाराजाधिराज' और 'परमेश्वर' उपाधि थी।

पृथ्वी के विपत्ति में पड़ने का कारण संभवतः तुर्क आक्रमण था। आक्रमणकारी लूटपाट करते हुए आगरा तक आ पहुँचे तथा उन्हें रोकने वाली कोई प्रबल शक्ति दोआब में नहीं रही। इसी आक्रमण से भारी अव्यवस्था उत्पन्न हो गयी जिसका लाभ चन्द्रदेव को मिला तथा उसने काशी, कन्नौज, कोशल और इन्द्रप्रस्थ के ऊपर अधिकार जमा लिया। इस विजय की प्रक्रिया में उसे कई शक्तियों से युद्ध करने पड़े होंगे। उसके चन्द्रावती लेख (1093 ई.) में बताया गया है कि उसने नरपति, गजपति, गिरिपति एवं त्रिशंकुपति को जीता था। इनमें प्रथम दो कलचुरि राजाओं की उपाधियां थीं। इस आधार पर ऐसा निष्कर्ष निकाला जाता है कि चन्द्रदेव ने कलचुरि नरेश यशःकर्ण को पराजित कर अन्तर्वेदी (गंगा–यमुना का दोआब) का प्रदेश जीत लिया था।

काशी, कन्नौज, कोशल तथा इन्द्रप्रस्थ पर अधिकार कर लिया। आर. एस. त्रिपाठी का विचार है कि कन्नौज को चन्द्रदेव ने गोपाल नामक राजा से छीना था जिसे बदायूं तथा सेतमाहेत लेखों में 'कान्नोज का राजा' (गाधिपुराधिप) कहा गया है। कन्नौज पर अधिकार हो जाने से उसका पान्चाल प्रदेश पर भी अधिकार हो गया होगा।

इन्द्रप्रस्थ दिल्ली तथा उसका समीपवर्ती प्रदेश था। यहाँ संभवतः तोमरवंशी राजाओं का शासन था जिन्होंने चन्द्रदेव की अधीनता स्वीकार की होगी। कुछ विद्वानों ने 'रामचरित' के आधार पर यह प्रतिपादित करने का प्रयास किया है कि चन्द्रदेव ने बंगाल में भी अधि पहर किया किन्तु उसे सफलता नहीं मिली तथा पालनरेश रामपाल के सामन्त भीमशय ने उसे पराजित कर दिया।

किन्तु इस संबंध में निश्चित रूप से कुछ भी नहीं कहा जा सकता।

चन्द्रदेव ने 1103 ईस्वी तक शासन किया। निःसंदेह वह एक शक्तिशाली राजा था जिसने अनेक राज्यों को जीत कर एक विशाल साम्राज्य स्थापित किया तथा अपने साम्राज्य को शक्ति और सुव्यवस्था प्रदान की।

उसने तुरुष्कदंड नामक एक विशेष कर लगाया था, जिससे या तो मुसलमानों के आक्रमण रोकने के लिए सेना का खर्च चलाया जाता था या उन्हें कर देने की व्यवस्था की जाती थी। उसका पुत्र मदनपाल था, जो आयुर्वेद का अच्छा ज्ञाता था। मदनपाल के संबंध में कोई जानकारी नहीं है। उसने ताम्र एवं रजत के सिक्के जारी किए। वह शैव मतावलंबी था और एक लेखक था।

मदनपाल

चन्द्रदेव का पुत्र तथा उत्तराधिकारी मदनपाल एक निर्बल शासक था जिसकी उपलब्धियों के विषय में हम कुछ भी नहीं जानते। उसकी रानी के एक दानपत्र में उसे 'परमभट्टारक महाराजाधिराज परमेश्वर' की उपाधि प्रदान की गयी है। किन्तु यह निश्चित नहीं है कि उसकी उपलब्धियां क्या थीं।

कुछ विद्वानों का विचार है कि मदनपाल के समय में शासन की वास्तविक सत्ता एक संरक्षक समिति के हाथ में थी तथा वह नाममात्र का ही राजा था। ज्ञात होता है कि उसे तुर्क आक्रमणकारियों ने कन्नौज पर आक्रमण कर बन्दी बना लिया तथा उसके पुत्र गोविन्दचन्द्र ने कड़े संघर्ष के बाद उसे मुक्त कराया था।

राहन लेख में कहा गया है कि बारम्बार वीरता प्रदर्शित करते हुए उसने अपने युद्ध कौशल से हम्मीर को शत्रुता त्यागने के लिये विवश कर दिया था (हम्मीरन्यस्तबैर मुहुरसमरक्रीडया यो विधत्ते)। यहाँ 'हम्मीर' से तात्पर्य 'अमीर' से है जो संभवत मसूद तृतीय का कोई सैनिक सरदार रहा होगा।

ऐसा लगता है कि गोविन्दचन्द्र को तुर्कों से लम्बा संघर्ष करना पड़ा था। एच. सी. रे का विचार है कि गोविन्दचन्द्र को अपने पिता को छुड़ाने के लिये तुर्क आक्रान्ता को धन देना पड़ा था। इस प्रकार गोविन्द चन्द्र युवराज के रूप में ही काफी प्रसिद्ध हो गया था।

8.3 गोविन्दचन्द्र

मदनपाल के पश्चात उसकी रानी राल्हादेवी से उत्पन्न पुत्र गोविन्दचन्द्र (1114–1155 ई.) गहड़वाल वंश का शासक बना। वह इस वंश का सर्वाधिक योग्य एवं शक्तिशाली शासक था। उसने कन्नौज के प्राचीन गौरव को पुनः

स्थापित करने का प्रयास किया। इस उद्देश्य से उसने कई स्थानों की विजय की।

अपने पिता के शासनकाल में ही तुर्क आक्रमणकारियों का सफल प्रतिरोध कर वह अपनी वीरता का परिचय दे चुका था। उसकी पत्नी कुमारदेवी के सारनाथ लेख में कहा गया है कि 'दुष्ट तुरुष्क वीर से वाराणसी की रक्षा करने के लिये शिव द्वारा भेजा गया विष्णु का मानो वह अवतार ही था।'उसके राजा बनने के बाद तुर्कों को आक्रमण करने का साहस नहीं हुआ। गोविन्दचन्द्र ने विभिन्न दिशाओं में सैनिक अभियान किया तथा विजयें भी प्राप्त की। गोविन्दचन्द्र की विजयों की सूचना उसके कुछ लेखों से मिलती है। पालि लेख (1114 ई.) में कहा गया है कि उसने 'नवराज्यगज' पर अधिकार किया।

किन्तु इस शब्द के वास्तविक समीकरण के विषय में मतभेद है। वी. एन. पाठक का विचार है कि संभव है कि गोविन्दचन्द्र ने घाघरा नदी के उत्तर के क्षेत्रों (सरयूपार) को जीतकर वहाँ एक नया राज्य स्थापित किया हो। गोरखपुर से प्राप्त एक दूसरे लेख में दरदगण्डकी देश (घाघरा तथा बड़ी गण्डक के बीच स्थित प्रदेश) के शासक कीर्त्तिपाल की चर्चा है।

संभव है गोविन्दचन्द्र ने उसे ही पराजित कर पूर्वोत्तर में बड़ी गण्डक नदी तक अपनी सीमा विस्तृत कर लिया हो। लार (देवरिया) लेख से पता चलता है कि उसने ब्राह्मणों को भूमिदान में दिया था। इससे भी सरयूपार क्षेत्र पर गोविन्दचन्द्र का अधिकार प्रमाणित होता है। पूर्वी भारत अर्थात् विहार और बंगाल में इस समय पाल राजाओं का शासन था।

गोविन्दचन्द्र का रामपाल के साथ संघर्ष पहले से ही चल रहा था। राजा बनने के बाद उसने बिहार के कुछ पाल क्षेत्रों को विजित कर लिया जैसा कि उसके कुछ लेखों से सिद्ध होता है। पटना के समीप मनेर नामक स्थान से उसका एक लेख मिलता है जिसमें मालयारी पत्तला के गुणाव एवं पडाली गाँवों को दान में देने का उल्लेख है।

उसी प्रकार लार लेख से भी पता चलता है कि मुगेर में निवास के समय उसने पोटाचवाड नामक ग्राम दान में दिया था। ऐसा लगता है कि गोविन्दचन्द्र ने मदनपाल को हराकर मुंगेर क्षेत्र को जीत लिया था जबकि पटना क्षेत्र की विजय उसने रामपाल के समय में ही की होगी। किन्तु यह अधिकार स्थायी नहीं रहा तथा मदनपाल ने पुनः वहाँ अपना अधिकार जमा लिया। संभव है गोविन्दचन्द्र के बाद ही पाली ने मुंगेर क्षेत्र पर अपना अधिकार किया हो। इसी प्रकार कलचुरियों को पराजित कर गिबिंदचन्द्र ने यमुना तथा सोन नदियों के

बीच स्थित उनके कुछ प्रदेश अपने अधिकार में कर लिये थे।

उसी ने सबसे पहले कलचुरि राजाओं द्वारा धारण की जाने वाली उपाधियां– अश्वपति, गजपति, नरपति, राजत्रयाधिपति धारण किया था। उसके एक लेख से विदित होता है कि करण्ड तथा करण्डतल्ल नामक ग्राम जो पहले कलचुरि नरेश यशकर्ण के अधीन थे, को गोविन्दचन्द्र ने एक ब्राह्मण को दान में दिया था। रंभामखरी नाटक जिसकी रचना जयचन्द्र ने की थी, से पता लगता है कि गोविन्दचन्द्र ने दशार्ण को जीता था। इससे तात्पर्य पूर्वी मालवा प्रदेश से है। यहाँ पहले परमारवंश का शासन था। संभवतः परमारवंशी राज्य यशोवर्मा को पराजित कर गोविन्दचन्द्र ने दशार्ण पर अधिकार किया था।

जयचन्द्र लिखता है कि जिस दिन उसने दशार्ण को जीता उसी दिन उसके पौत्र का जन्म हुआ। इसी कारण उसका नाम जयचन्द्र रखा गया। इस प्रकार गोविन्दचन्द्र ने एक विशाल साम्राज्य पर शासन किया। विजेता होने के साथ–साथ वह एक महान् कूटनीतिज्ञ भी था। उसका चन्देल, चोल, कलचुरि, चालुक्य तथा कश्मीर के शासकों के साथ मैत्री–सम्बन्ध था।

पालों तथा उनके सामन्तों से मैत्री सबध सुदृढ़ करने के उद्देश्य से गोविन्दचन्द्र ने पीठी के चिक्कोरवंशी देवरक्षित की पुत्री तथा रामपाल के मामा मथनदेव राष्ट्रकूट की दौहित्री कुमारदेवी के साथ अपना विवाह किया। इस वैवाहिक संबंध से सरयूपार के क्षेत्रों की विजय में उसे सहायता प्राप्त हुई।

एच. सी. रे का अनुमान है कि कलचुरियों के विरुद्ध गाहड़वालों तथा चोलों के बीच परस्पर मैत्री संबंध स्थापित हुआ था। इसी का प्रमाण त्रिचनापल्ली के गंगैकोंडचोलपुरम् मन्दिर से प्राप्त वह गहड़वाल लेख है जिसमें यशोविग्रह से लेकर चन्द्रदेव तक की वंशावली अंकित है।

तुम्माण के कलचुरि शासक जाज्जलदेव प्रथम, जो पहले त्रिपुरी के कलचुरियों के अधीन था, को गोविन्दचन्द्र ने अपनी ओर मिला लिया था। प्रबन्धचिन्तामणि से पता चलता है कि चालुक्य नरेश जयसिंह सिद्धराज ने अपना एक दूत कन्नौज के दरबार में भेजा था। यह कन्नौज नरेश गोविन्दचन्द्र ही था। कल्हण के विवरण से ज्ञात होता है कि कश्मीर तथा कन्नौज के बीच मैत्री संबंध था।

इस प्रकार विविध राजनयिक संबंधों द्वारा गोविन्दचन्द्र ने अपनी स्थिति मजबूत बना ली। गोविन्दचन्द्र के अनेक दान–पत्र तथा सिक्के मिलते है, जो इस बात के प्रमाण हैं कि उसके समय में कन्नौज पुनः एक महत्वपूर्ण नगर बन

गया था। वहाँ अनेक लब्धप्रतिष्ठ विद्वान् निवास करते थे। उसके कुछ सिक्के जो कलचुरियों के सिक्कों के अनुकरण पर ढाले गये हैं 'बैठी हुई लक्ष्मी' शैली के हैं।

गोविन्दचन्द्र को उसके लेखों में 'विविधविद्याविचारवाचस्पति' कहा गया है जो इस बात का सूचक है कि वह स्वयं बहुत बड़ा विद्वान् था। उसका मन्त्री लक्ष्मीधर भी शास्त्रों का प्रकाण्ड पंडित था जिसने 'कृत्यकल्पतरु' नामक ग्रंथ लिखा था। इसमें चौदह अध्याय हैं। प्रत्येक को 'कल्पतरु' कहा गया है। इसका राजधर्म कल्पतरु तथा व्यवहार कल्पतरु क्रमशः राजनीति एवं विधि से संबंधित है। लक्ष्मीधर को यंत्र महिमा का आश्चर्य कहा गया है जिसकी सहायता एवं परामर्श से ही गोविन्दचन्द्र को सफलता प्राप्त हुई थी।

उसके एक अभिलेख से पता चलता है कि उसने सूर्य, शिव, वासुदेव आदि देवताओं की पूजा की थी तथा उत्कल के बौद्ध भिक्षु शाक्यरक्षित तथा चोल देश के उनके शिष्य वागेश्वररक्षित का सम्मान करने के लिये उनके द्वारा संचालित जेतवन विहार को गाँव दान में दिया था। उसकी पत्नी कुमारदेवी बौद्ध मतानुयायी थी।

8.4 विजयचन्द्र

गोविन्दचन्द्र के पश्चात् उसका पुत्र विजयचन्द्र (1155–1169 ईस्वी) शासक हुआ। उसके दो अन्य नाम मल्लदेव तथा विजयपाल भी मिलते है। गोविन्दचन्द्र के दो अन्य पुत्रों, अस्फोटचन्द्र तथा राज्यपालदेव, के नाम भी लेखों से मिलते हैं किन्तु वे शासक नहीं बन पाये।

या तो उनकी मृत्यु पिता के समय में ही हो गयी अथवा विजयचन्द्र ने उन्हें उत्तराधिकार युद्ध में पराजित कर मार डाला। उसने लाहौर के मुसलमान शासक को परास्त किया था। उसके पुत्र जयचन्द्र के कमौली (बनारस) लेख में इसका विवरण मिलता है जिसमें कहा गया है कि उसने पृथ्वी का करते हुए हम्मीर की स्त्रियों के आंखों के आसूओं से, जो बादलों से गिरते हुए जल के समान थे, पृथ्वी के ताप का हरण किया।

यह हम्मीर लाहौर के तुर्क शासक खुशरी शाह अथवा खुशरोमलिक का कोई अधिकारी था जिसने पूर्व की ओर अपना राज्य विस्तृत करने का प्रयास किया होगा तथा इसी क्रम में गहड़वाल नरेश ने उसे पराजित कर दिया होगा। हम्मीर से तात्पर्य अमीर अथवा तुर्क शासक से ही है।

उत्तर में विजयचन्द्र के फंसे रहने के कारण पूर्व से सेनों को उसके

राज्य पर आक्रमण करने का अच्छा मौका मिल गया। इसका लाभ उठाते हुए बंगाल के सेनवंशी शासक लक्ष्मणसेन ने आक्रमण कर दिया। माधाइ नगर लेख में कहा गया है कि उसने काशी नरेश को पराजित किया था (येनाड सौ काशीराज समरभुवि विजिता)। लेकिन लक्ष्मण सेन को गहड़वाल साम्राज्य के किसी भी भाग पर अधिकार करने में सफलता नहीं मिल सकी। कमौली लेख से पता चलता है कि काशी के ऊपर विजयचन्द्र का अधिकार पूर्ववत् बना हुआ था।

बिहार में सहसाराम क्षेत्र तक उसका अधिकार कम से कम 1168–69 ई. तक बना रहा जैसा कि वहाँ से प्राप्त ताराचण्डी प्रतिमालेख से विदित होता है। किन्तु पश्चिम की ओर विजयचन्द्र को मात खानी पड़ी। दिल्ली में इस समय तोमरवंश का शासन था। वे पहले गहड़वालों के सामन्त के रूप में शासन करते थे।

किन्तु ऐसा प्रतीत होता है कि अब उन्होंने गाहड़वाल सत्ता का जुआ उतार फेका तथा उसके स्थान पर चाहमानों को अपना संप्रभु स्वीकार कर लिया। शाकम्भरी के चाहमान शासक वीसलदेव (1153–1163 ई.) ने दिल्ली तथा हांसी को जीतकर अपने अधिकार में ले लिया। ये प्रदेश पहले गहड़वालों की अधीनता में थे। इस प्रकार विजयचन्द्र के समय में गहड़वाल साम्राज्य की सीमायें संकुचित हो गयी।

8.5 जयचन्द्र

विजयचन्द्र का पुत्र जयचन्द्र (1170–1194 ईस्वी) गाहड़वाल वंश का अन्तिम शासक था। भारतीय लोक साहित्य तथा कथाओं में वह राजा जयचन्द्र के नाम से विख्यात है। मुस्लिम स्रोतों से पता चलता है कि कन्नौज तथा वाराणसी का वह सार्वभौम शासक था।

मुसलमान इतिहासकार उसे भारत का सबसे बड़ा राजा बताते है जिसका साम्राज्य चीन से मालवा तक फैला था। उसके पास एक विशाल सेना थी जिसमें हाथी, घुड़सवार, धनुर्धारी, सैनिक, पदाति सभी सम्मिलित थे। उसकी सेना की विशालता का संकेत चन्द्रवरदायी भी करता है। लेकिन ये विवरण कोरी अतिरंजना लगते हैं।

यह सही है कि जयचन्द्र को उत्तराधिकार में एक विशाल साम्राज्य प्राप्त हुआ जो शक्ति एवं संसाधनों की दृष्टि से अत्यन्त सम्पन्न था। किन्तु राजनीतिक सूझ–बूझ एवं दूरदर्शिता की कमी के कारण जयचन्द्र उसकी सुरक्षा नहीं कर सका।

उसका समकालीन दिल्ली तथा अजमेर का चौहान नरेश पृथ्वीराज तृतीय

था। चन्दबरदाई के 'पृथ्वीराजरासो' से दोनों की पारस्परिक शत्रुता का पता चलता है। इसके अनुसार पृथ्वीराज ने जयचन्द्र की पुत्री संयोगिता का अपहरण कर लिया था। अनेक विद्वान् रासो की सत्यता में संदेह व्यक्त करते है तथापि जयचन्द्र तथा पृथ्वीराज के बीच शत्रुता की बात सही लगती है।

रासो से यह भी पता चलता है कि पृथ्वीराज के विरुद्ध जयचन्द्र ने चन्देल शासक परमदि की सहायता प्राप्त की थी। पूर्व की ओर सेनवंश के साथ भी जयचन्द्र की शत्रुता थी तथा उसका समकालीन सेनवंशी शासक लक्ष्मणसेन था। सेनवंश के लेखों से पता चलता है कि लक्ष्मणसेन ने काशी के राजा को जीता तथा काशी और प्रयाग में उसने विजय–स्तम्भ स्थापित किये थे।

मजूमदार का विचार है कि लक्ष्मणसेन द्वारा पराजित काशी नरेश जयचन्द्र ही था जिससे उसने कुछ प्रदेश जीत लिया होगा। जब मुहम्मद गोरी ने पृथ्वीराज पर आक्रमण किया तब जयचन्द्र तटस्थ रहा। कुछ विद्वानों के अनुसार स्वयं जयचन्द्र ने ही गोरी को पृथ्वीराज के राज्य पर आक्रमण करने के लिये आमन्त्रित भी किया था।

पृथ्वीराज को जीतने के पश्चात् 1194 ईस्वी में मुहम्मद गोरी ने जयचन्द्र के राज्य पर भी आक्रमण किया। कुछ भारतीय ग्रन्थों जैसे विद्यापति कृत पुरुषपरीक्षा, नयचन्द्र कृत रम्भामंजरी नाटक आदि में कहा गया है कि जयचन्द्र ने मोहम्मद गोरी को पहले कई बार हराया था। संभव है कुछ प्रारम्भिक भावों में उसे एकाध बार सफलता मिली हो।

अन्तिम मुठभेड़ चन्दावर (एटा जिला) के मैदान में हुई जहाँ कुतुबउद्दीन के नेतृत्व में पचास हजार सैनिकों का जयचन्द्र की विशाल सेना से सामना हुआ। दुर्भाग्यवश हाथी पर सवार जयचन्द्र की आंख में एक तीर लग जाने से वह गिर पड़ा तथा उसकी मृत्यु हो गयी। सेना में भगदड़ मच गयी तथा मुसलमानों की विजय हुई।

गोरी ने असनी (फतेहपुर) स्थित जयचन्द्र के राजकोष पर अधिकार कर लिया। आक्रमणकारियों ने स्त्रियों तथा बच्चों को छोडकर सबकी हत्या कर दी। मुहम्मद गोरी ने कन्नौज तथा बनारस को खूब लूटा बनारस के लगभग एक हजार मन्दिरों को ध्वस्त कर दिया गया तथा उनके स्थान पर मस्जिदें बनवायी गयी।

आक्रमणकारियों के हाथ लूट की भारी सम्पत्ति एवं बहुमूल्य वस्तुयें लगीं। इस प्रकार गाहड़वाल साम्राज्य का पतन हुआ। ऐसा लगता है कि चन्दावर के युद्ध के बाद भी कुछ समय तक कन्नौज पर गाहड़वालों की सत्ता बनी रही तथा मुसलमानों ने वहाँ अधिकार नहीं किया। मात्र फरिश्ता ही ऐसा लेखक है

जो मुसलमान सेनाओं के कन्नौज पर अधिकार करने की बात करता है।

किन्तु वह बाद का लेखक होने के कारण विश्वसनीय नहीं लगता। कुछ ऐसे संकेत मिलते हैं जिनके आधार पर यह कहा जा सकता है कि जयचन्द्र के पुत्र हरिश्चन्द्र ने कुछ समय तक अपने पिता के बाद कन्नौज पर शासन किया।

मछलीशहर (जौनपुर) से प्राप्त उसके एक लेख (1198 ई०) में उसे "परमभट्टारक महाराजाधिराज परमेश्वराश्वपति गजपति–राजत्रयाधिपति विविध विद्याविचारवाचस्पति श्री हरिश्चन्द्र देव" कहा गया है। इससे स्पष्ट है कि वह एक स्वतंत्र शासक की हैसियत से शासन कर रहा था। लेख से पता चलता है कि उसने पमहई नामक गाँव दान में दिया था। हरिश्चन्द्र के पश्चात कन्नौज के गाहड़वाल साम्राज्य का अन्त हो गया तथा वहाँ चन्देलों का अधिकार स्थापित हुआ।

8.6 सारांश

गहड़वाल राजवंश भारतीय उपमहाद्वीप की एक शक्ति थी, जिसने 11वीं और 12वीं शताब्दी के दौरान उत्तर प्रदेश और बिहार के वर्तमान भारतीय राज्यों के कुछ हिस्सों पर शासन किया था। उनकी राजधानी वाराणसी में स्थित थी, और एक संक्षिप्त अवधि के लिए उन्होंने कान्यकुब्ज (आधुनिक कन्नौज) पर भी शासन किया। गहड़वाल शासकों को काशी नरेश के रूप में भी जाना जाता था, क्योंकि बनारस इनके राज्य की पूर्वी सीमा के निकट था।

8.7 अभ्यासार्थ प्रश्न

1. गाहड़वाल कौन थे? उनकी उत्पत्ति के बारे में प्रकाश डालिये।

   .....

   .....

2. गाहड़वालों के प्रमुख शासकों के बारे में विस्तार पूर्वक लिखिये।

   .....

   .....

3. गाहड़वाल सम्राज्य के इतिहास के विभिन्न स्रोतों के बारे में वर्णन कीजिये।

   .....

8.8 संदर्भ ग्रन्थ

इलिएट एण्ड डाउसन : हिस्ट्री ऑफ इण्डिया एज टोल्ड बाई इट्ज अवन हिस्टोरिअन।

मजूमदार, आर.सी. : द ऐज ऑफ इम्पीरियल कन्नौज।

मजूमदार, आर.सी. : द स्ट्रगल फॉर एम्पायर।

त्रिपाठी, आर.एस. : हिस्ट्री ऑफ कन्नौज टू द मुस्लिम कनक्वेस्ट।

शास्त्री, के.ए. नीलकण्ठ : ए कॉम्परीहेन्सिव हिस्ट्री ऑफ इण्डिया।

स्मिथ, वी.ए. : अर्ली हिस्ट्री ऑफ इण्डिया।

इकाई–9 सेन वंश–स्रोत एवं प्रारम्भिक इतिहास–विजयसेन, बल्लालसेन एवं लक्ष्मणसेन के उत्तराधिकारी

इकाई की रूपरेखा

9.0 प्रस्तावना

9.1 उद्देश्य

9.2 सेन वंश का प्रारंभिक इतिहास

9.3 सेन वंश के ऐतिहासिक स्रोत

9.3.1 देवपाड़ा अभिलेख

9.3.2 बल्लाल चरित

9.3.3 स्मृति दानसागर ग्रंथ एवं अद्भुत सागर

9.3.4 गीतगोविन्द

9.4 सेनवंश के प्रमुख शासक

9.4.1सामंत सेन

9.4.2 हेमन्त सेन

9.4.3 विजय सेन

9.4.4 बल्लाल सेन

9.4.5 लक्ष्मण सेन

9.5 सारांश

9.6 अभ्यासार्थ प्रश्न

9.7 संदर्भ ग्रन्थ

9.0 प्रस्तावना

सेन राजवंश भारत का एक राजवंश का नाम था, जिसने 12वीं शताब्दी के मध्य से बंगाल पर अपना प्रभुत्व स्थापित कर लिया। सेन राजवंश ने बंगाल पर 160 वर्ष राज किया। अपने चरमोत्कर्ष के समय भारतीय महाद्वीप का पूर्वोत्तर क्षेत्र इस साम्राज्य के अन्तर्गत आता था। इस वंश का मूलस्थान

कर्णाटक था। इस काल में कई मन्दिर बने। धारणा है कि बल्लाल सेन ने ढाकेश्वरी मन्दिर बनवाया। कवि जयदेव (गीतगोविन्द का रचयिता) लक्ष्मण सेन के पञ्चरत्न थे।

सेन राजवंश भारतीय उपमहाद्वीप में एक प्रारंभिक मध्ययुगीन हिंदू राजवंश था, जिसने 11वीं और 12वीं शताब्दी से बंगाल पर सेना साम्राज्य के रूप में शासन किया था। बल्लाल सेन द्वारा लिखित पुस्तक के अनुसार, सेन वंश का उदय 9वीं शताब्दी से पहले का है। बंगाल के पाल राजाओं के साथ प्रतिस्पर्धा करने के लिए, उन्होंने एक बार पाल राजाओं को हराकर पाल साम्राज्य की स्थापना की थी। सेन राजाओं का एक महत्वपूर्ण पहलू यह था कि वे राजनीतिक, धार्मिक और सामाजिक शासन स्थापित करने में सक्षम थे। असमुद्र हिमाचल सेन साम्राज्य, जो बंगाल से शासन करता था, बंगाल की खाड़ी की सहायक नदियों से उत्तर भारत (कनौज) तक फैला हुआ था। .सेन राजाओं का मूल निवास राजाभूम के मूल कर्णसुवर्ण में था। सेन जाति है लेकिन लक्ष्मणसेन के ताम्रपत्र के अनुसार बल्लाल सेन की पुस्तक क्षत्रियाचार्य ब्राह्मण और राज्यधर्मासराय ब्राह्मण (अर्थात् दोनों एक ही) में शिलालेखों में वर्णित सैन राजवंश के रूप में राज्यधर्म/क्षत्रियवृत्ति का अभ्यास करने के लिए। राजशाही में मिले विजया सेन काल के देवपरा प्रस्थी में उमापतिधर के पद्य में ब्रह्मक्षत्रिय सेन जाति का वर्णन करने में विद्वानों के बीच यह शब्द अधिक लोकप्रिय है। प्राचीन बंगाल के इतिहास में एक बहुत ही महत्वपूर्ण अध्याय ग्यारहवीं शताब्दी के अंत में पाल वंश की अराजकता का लाभ उठाते हुए सेन का उदय है। बंगाल के पाल वंश के राजा महिपाल द्वितीय के शासनकाल के दौरान, सेन राजवंश के संस्थापक विजया सेन ने बरेंद्र 'सामंथचक्र' के विद्रोह का फायदा उठाते हुए धीरे–धीरे पश्चिम बंगाल में अपने प्रभुत्व का विस्तार किया, और अंत में राजा के शासनकाल के दौरान बंगाल के पाल राजवंश के मदनपाल ने एक स्वतंत्र इकाई विकसित की और सेन–ब्राह्मणिक सेन साम्राज्य का विस्तार किया। भारत के इतिहास में बंगाल के सेन राजाओं में बीर सेन, सामंत सेन, हेमंत सेन, विजय सेन, सुख सेन, बल्लाल सेन और लक्ष्मण सेन हैं।एक प्रमुख पद पर कब्जा करते हुए विश्वरूप सेन– वह बंगाल के एक सेन परिवार नरपति बल्लाल सेन के पोते हैं। लक्ष्मण सेन, तंदरादेवी या तारादेवी की पत्नियों में से एक ने विश्वरूप सेन और केशव सेन नाम के दो पुत्रों को जन्म दिया। लक्ष्मण सेन के निधन के बाद, उनके पुत्र माधव सेन बंगाल के पहले राजा बने। फिर उनके भाई केशव सेन और विश्वरूप सेन एक के बाद एक बंगाल के राजा बनते गए और इस अवधि के दौरान राजकुमारों ने राज्यों की जिम्मेदारियों को

साझा किया। माधव सेन ने बंगाल के राज्य को अपने भाई केशव सेन को सौंप दिया और हिमालयी राज्य के लिए आगे बढ़े और वहां राज्य का विस्तार किया। अल्मोड़ा, उत्तराखंड के कोटेश्वर मंदिर गात्रा शिलालेख में, माधव सेन के करतब को दूरस्थ हिमालय के प्रशासन को संभालने के रूप में वर्णित किया गया है राज्य (वर्तमान उत्तर प्रदेश, हिमाचल प्रदेश और नेपाल) धर्म की रक्षा के लिए और अपने साथ कई रईसों और विद्वानों को ले गया। लक्ष्मण सेन के बाद भी, सेन राजाओं का शासन छोटा नहीं था, जैसा कि बंगाल सरकार द्वारा एकत्र की गई एक प्राचीन संस्कृत पांडुलिपि में वर्णित है, परम भट्टारक महाराजाधिराज परम सौगत ''मधुसेन'' ने 1194 सीई (1272 ईस्वी) में विक्रमपुर पर शासन किया था। उसने कई बार तुर्कों को हराया। इसके अलावा सुर सेन /सूर्य सेन, नारायण सेन, लक्षन सेन, बल्लाल सेन, दामोदर सेन इस राजवंश के राजाओं के रूप में नाम मिला। लेकिन सेन राजवंश के पतन के बारे में पता नहीं है क्योंकि उन्होंने भारत के विभिन्न हिस्सों (विशेषकर उत्तर भारत, हिमाचल, नेपाल) पर शासन करना जारी रखा। पिछले दो सेना राज्य (वर्तमान हिमाचल प्रदेश में स्थित) 1947 में भारत गणराज्य में शामिल हुए, उक्त राज्यों के राजाओं ने अपनी वंशावली को बंगाल से सेन वंश के पूर्वजों के रूप में राजपत्रित किया।

9.1 उद्देश्य

इस इकाई का मुख्य उद्देश्य आपको सेन वंश का प्रारंभिक इतिहास, स्रोत व सेन शासकों के उत्तराधिकारियों के से संबंधित जानकारी प्रदान करना है।

9.2 सेन वंश का प्रारंभिक इतिहास

इस वंश के राजा, जो अपने को कर्णाट क्षत्रिय, ब्रह्म क्षत्रिय और क्षत्रिय मानते हैं, अपनी उत्पत्ति पौराणिक चक्रवर्ती सम्राट महापद्मनंद नंद वंश से मानते हैं, जो दक्षिणापथ या दक्षिण के शासक माने जाते हैं। 9वीं, 10वीं और 11वीं शताब्दी में मैसूर राज्य के धारवाड़ जिले में कुछ जैन उपदेशक रहते थे, जो सेन वंश से संबंधित थे। यह निश्चित रूप से नहीं कहा जा सकता कि बंगाल के सेन का इन जैन उपदेशकों के परिवार से कोई संबंध था। फिर भी इस बात पर विश्वास करने के लिए समुचित प्रमाण हैं कि बंगाल के सेन का मूल वासस्थान दक्षिण था। उद्धरण चाहिए, देवपाल के समय से पाल सम्राटों ने विदेशी साहसी वीरों को अधिकारी पदों पर नियुक्त किया। उनमें से कुछ कर्णाटक देश से संबंध रखते थे। कालांतर में ये अधिकारी, जो दक्षिण से आए थे, शासक बन गए और स्वयं को राजपुत्र कहने लगे।

राजपुत्रों के इस परिवार में बंगाल के सेन राजवंश का प्रथम शासक सामन्त सेन उत्पन्न हुआ था। सामन्तसेन ने दक्षिण के एक शासक, संभवतः द्रविड़ देश के राजेन्द्र चोल, को परास्त कर अपनी प्रतिष्ठा में वृद्धि की। सामन्तसेन का पौत्र विजयसेन ही अपने परिवार की प्रतिष्ठा को स्थापित करने वाला था। उसने वंग के वर्मन शासन का अन्त किया, विक्रमपुर में अपनी राजधानी स्थापित की, पालवंश के मदनपाल को अपदस्थ किया और गौड़ पर अधिकार कर लिया, नान्यदेव को हराकर मिथिला पर अधिकार किया, गहड़वालों के विरुद्ध गंगा के मार्ग से जलसेना द्वारा आक्रमण किया, आसाम पर आक्रमण किया, उड़ीसा पर धावा बोला और कलिंग के शासक अनंत वर्मन चोड़गंग के पुत्र राघव को परास्त किया। उसने वारेंद्री में एक प्रद्युम्नेश्वर शिव का मंदिर बनवाया। विजयसेन का पुत्र एवं उत्तराधिकारी वल्लाल सेन विद्वान तथा समाज सुधारक था। बल्लालसेन के बेटे और उत्तराधिकारी लक्ष्मण सेन ने काशी के गहड़वाल और आसाम पर सफल आक्रमण किए, किंतु सन् 1202 के लगभग इसे पश्चिम और उत्तर बंगाल मुहम्मद खलजी को समर्पित करने पड़े। कुछ वर्ष तक यह वंग में राज्य करता रहा। इसके उत्तराधिकारियों ने वहाँ 13वीं शताब्दी के मध्य तक राज्य किया, तत्पश्चात् देववंश ने देश पर सार्वभौम अधिकार कर लिया। सेन सम्राट विद्या के प्रतिपोषक थे।

9.3 सेन वंश के ऐतिहासिक स्रोत

सेन वंश के अभिलेखों के अनुसार सेन वंश के राजा मूलतः कर्नाटक के रहने वाले थे। सेन वंश की स्थापना सामंत सेन के द्वारा बंगाल के राढ नामक स्थान पर की गई थी। सेन वंश की राजकीय भाषा संस्कृत थी। इसकी प्रारंभिक राजधानी गौड़ (माल्दा जिला में) थी फिर क्रमशः विक्रमपुर (मुंशीगंज, बांग्लादेश) और नवद्वीप (आधुनिक नदिया) में स्थानांतरित हुई। सेन राजवंश के कुछ ऐतिहासिक स्रोत इस प्रकार हैं –

9.3.1 देवपाड़ा अभिलख

'देवपारा प्रशस्ति' बंगाल के सेन राजाओं की स्तुति करने वाला एक पत्थर का शिलालेख (प्रशस्ति) है। इसकी रचना लक्ष्मण सेन (लगभग 1178–1206) के दरबार में मंत्री उमापति धरा ने की थी, जो कई दरबारी कवियों में से एक थे। शिलालेख विशेष रूप से लक्ष्मण सेन के दादा विजय सेन (1095–1158) की प्रशंसा करता है। वर्णमाला आधुनिक बंगाली वर्णमाला का पूर्ववर्ती है, जिसमें 22 अक्षर आधुनिक रूपों का अनुमान लगाते हैं। पत्थर की पट्टिका 1865 में देवपारा गांव के पास मिली थी, जो अब गोदागरी उपजिला में

है।आधुनिक बांग्लादेश का राजशाही जिला। इस शिलालेख में बताया गया है कि सेन राजा विजय सेन, सेन साम्राज्य के वास्तविक संस्थापक हैं।

देवपाड़ा शिलालेख से पता चलता है कि विजय सेन ने कामरुप और कलिङ्ग को जीतने के लिए युद्ध किया था। इसके पश्चात सम्भवतः उत्तर बिहार के कुछ भागों को भी जीता। विजय सेन ने पाल राजवंश के शेष राजा मदन पाल से उसकी राजधानी गौड़ को जीत लिया। मदन पाल उत्तर बङ्गाल पलायन कर गया और आगे के आठ वर्ष तक वहाँ शासन करता रहा।

9.3.2 बल्लाल चरित

इस पुस्तक की रचना आन्नदभट्ट ने की थी। इसमें बंगाल के सेन वंश और1160 ई. से 1179 ई. तक सेन वंश के दूसरे शासक बल्लाल सेन का वर्णन मिलता है। सेन वंश के शिलालेखों के अनुसार बल्लाल सेन भी एक लेखक था और उसने दानसागर और अद्भुतसागर जैसी किताबे भी लिखीं।

9.3.3 स्मृति दानसागर ग्रंथ एवं अद्भुत सागर

उपरोक्त दोनों ग्रन्थों की रचना बल्लाल सेन ने अपने गुरू के साथ मिलकर की थी। अद्भुत सागर ज्योतिष विद्या पर आधारित है, इस ग्रन्थ के पूरा होने के पहले ही बल्लाल सेन की मृत्यु हो गई थी। इस ग्रन्थ को कवि जयदेव ने पूरा किया था।

9.3.4 गीतगोविन्द

गीतगोविन्द जयदेव की काव्य रचना है। गीतगोविन्द में श्रीकृष्ण की गोपिकाओं के साथ रासलीला, राधाविषाद वर्णन, कृष्ण के लिए व्याकुलता, उपालम्भ वचन, कृष्ण की श्रीराधा के लिए उत्कंठा, राधा की सखी द्वारा राधा के विरह संताप का वर्णन है। जयदेव का जन्म ओडिशा में भुवनेश्वर के पास केन्दुबिल्व नामक ग्राम में हुआ था। वे बंगाल के सेनवंश के अन्तिम नरेश लक्ष्मणसेन के आश्रित महाकवि थे। लक्ष्मणसेन के एक शिलालेख पर 1116 ई० की तिथि है अतः जयदेव ने इसी समय में गीतगोविन्द की रचना की होगी।

9.4 सेनवंश के प्रमुख भाासक

सेनवंश के प्रमुख शासक इस प्रकार हैं:

9.4.1 सामंत सेन

राजपुत्रों के इस परिवार में बंगाल के सेन राजवंश का प्रथम शासक

सामन्त सेन उत्पन्न हुआ था। इसका शासनकाल 1070 से 1095 ई0 के मध्य माना जाता है। सामन्तसेन ने दक्षिण के एक शासक, संभवतः द्रविड़ देश के राजेन्द्र चोल, को परास्त कर अपनी प्रतिष्ठा में वृद्धि की। सामन्तसेन का पौत्र विजयसेन ही अपने परिवार की प्रतिष्ठा को स्थापित करने वाला था। उसने वंग के वर्मन शासन का अन्त किया, विक्रमपुर में अपनी राजधानी स्थापित की, पालवंश के मदनपाल को अपदस्थ किया और गौड़ पर अधिकार कर लिया, नान्यदेव को हराकर मिथिला पर अधिकार किया।

9.4.2 हेमन्त सेन

हेमंत सेन भारतीय उपमहाद्वीप के बंगाल क्षेत्र में हिंदू सेना राजवंश के संस्थापक सामंतसेन के पुत्र थे। उसने 1095 से 1096 ई. तक शासन किया। उनके पुत्र, विजया सेना ने उनके बाद शासन किया।

9.4.3 विजय सेन

विजय सेना, जिसे शाश्वत साहित्य में विजय सेन के नाम से भी जाना जाता है, हेमंत सेना के पुत्र थे, और उन्हें भारतीय उपमहाद्वीप के बंगाल क्षेत्र के एक राजवंश शासक के रूप में सफलता मिली। इस राजवंश ने 200 से अधिक वर्षों तक शासन किया। उसने गौड़, कामरूप और कलिंग के राजाओं से लड़ते हुए बंगाल पर विजय प्राप्त की। विजयापुरी और विक्रमपुरा में उनकी राजधानी थी। उनके अभिलेखों से ऐसा प्रतीत होता है कि उन्हें पालों के तहत रार में एक अधीनस्थ शासक का दर्जा प्राप्त था। वह संभवतः निद्रावली के विजयराज के समान ही थे, जो चौदह सामंत राजाओं में से एक थे, जिन्होंने रामपाल को वीरेंद्र की बरामदगी में मदद की थी।

इसका शासनकाल संभवत 1096 से 1158 ईसवी के मध्य में था। विजय सेन, हेमंत सेन के पुत्र एवं उत्तराधिकारी थे। विजयसेन को सेन वंश का वास्तविक संस्थापक माना जाता है। विजय सेन ने परममहेश्वर और अरिराज वृषशंकर की उपाधि धारण की थी। विजय सेन को सेवर धर्म के अनुयाई और कुछ इतिहासकार वैष्णव धर्म के अनुयाई मानते हैं।

विजय सेन के द्वारा देवपाड़ा में प्रद्युमनेश्वर शिव मंदिर तथा एक झील का निर्माण करवाया था। विजय सेन के द्वारा ही देवपाड़ा में एक अभिलेख उत्कीर्ण कराया गया था जिसकी रचना उमापतिधर नामक कवि ने की थी। इसी अभिलेख में विजय सेन के विजयों का उल्लेख किया गया है। विजय सेन की रानी के द्वारा ''कनकतुलापुरुष महादान'' यज्ञ का आयोजन करवाया गया था।

विजय सेन ने पाल वंश के राजा मदन पाल की राजधानी गौड़ पर अधिकार कर लिया था और मदन पाल को मगध में शरण लेनी पड़ी थी।

विजय सेन की पहली राजधानी विजयपुर तथा दूसरी राजधानी विक्रमपुर में थी। विजय सेन ने पाल वंश के शेष राजाओं की दुर्बलता का पूरा लाभ उठाया। सन्ध्याकार नन्दी द्वारा रचित 'रामचरितम में उनके राजकाल का उल्लेख मिलता है। विवाहसूत्र के कारण सूर राजवंश के साथ उनका अच्छा सम्पर्क था। इसके अलव उड़ीसा के शासक अनन्तवर्मण के साथ भी उनकी सामरिक मैत्री सन्धि थी। ये दोनों बातें उनके सेन सम्राज्य के विस्तार में सहायक सिद्ध हुईं। विजय सेन ने वर्मण, भिरा, रागभ आदि राजाओं को पराजित किय। देवपाड़ा शिलालेख से पता चलता है कि विजय सेन ने कामरुप और कलिङ्ग को जीतने के लिए युद्ध किया था। इसके पश्चात सम्भवतः उत्तर बिहार के कुछ भागों को भी जिता। विजय सेन ने पाल राजवंश के शेष राजा मदन पाल से उसकी राजधानी गौड़ को जीत लिया। मदन पाल उत्तर बङ्गाल पलायन कर गया और आगे के आठ वर्ष तक वहाँ शासन करता रहा। ११५२–५३ ई में मदन पाल की मृत्यु के बाद विजय सेन ने समग्र उत्तरबङ्गाल पर अधिकार कर लिया। १२वीं शताब्दी के मध्य तक विजय सेन ने बङ्ग (दक्षिण बांग्ला) पर आक्रमण किया और वर्मनों की राजधानी विक्रमपुर पर अधिकार कर लिया।

9.4.4 बल्लाल सेन

बल्लाल सेन बंगाल के सेन राजवंश के (1158–79 ई.) प्रमुख शासक थे। बल्लाल सेन उसने उत्तरी बंगाल पर विजय प्राप्त की और मगध के पाल वंश का अंत कर दिया और विजय सेन उत्तराधिकारी बन गए 'लघुभारत' एवं 'वल्लालचरित' ग्रंथ के उल्लेख से प्रमाणित होता है कि वल्लाल का अधिकार मिथिला और उत्तरी बिहार पर था। इसके अतिरिक्त राधा, वारेन्द्र, वाग्डी एवं वंगा वल्लाल सेन के अन्य चार प्रान्त थे। वल्लाल सेन कुशल प्रशासक होने के साथ–साथ संस्कृत का ख्याति प्राप्त लेखक थे।

उन्होंने स्मृति दानसागर नाम का लेख एवं खगोल विज्ञान पर अद्भुतसागर लेख लिखा। उन्होंने जाति प्रथा एवं कुलीनता को अपने शासन काल में प्रोत्साहन दिया। उन्होंने गौड़ेश्वर तथा निशंकर की उपाधि से उसके शैव मतालम्बी होने का आभास होता है। उनका साहित्यिक गुरु विद्वान अनिरुद्ध थे। जीवन के अन्तिम समय में वल्लालसेन ने सन्यास ले लिया। उन्हें बंगाल के ब्राह्मणों और कायस्थों में 'कुलीन प्रथा' का प्रवर्तक माना जाता है।

बल्लाल सेन ने पश्चिमी चालुक्य साम्राज्य की राजकुमारी रमादेवी से विवाह किया, जो दर्शाता है कि सेना शासकों ने दक्षिण भारत के साथ घनिष्ठ सामाजिक संपर्क बनाए रखा।

वह सबसे प्रसिद्ध सेन शासक हैं और उन्होंने राज्य को सुदृढ़ किया। उसने उत्तरी बंगाल की विजय पूरी कर ली होगी और मगध और मिथिला पर भी विजय प्राप्त कर ली होगी। बंगाल की एक परंपरा के अनुसार, बल्लाला सेना के साम्राज्य में कई प्रांत शामिल थे।

बल्लाल सेन बंगाल के शाही परिवार के वंशज थे, जो दिल्ली चले गए और उन्हें हिंदुस्तान का सम्राट घोषित किया गया। लेकिन न तो इस क्षेत्र से बचे दो शिलालेख, न ही दो महान साहित्यिक रचनाएँ, जिनका श्रेय उन्हें दिया जाता है, अर्थात्, दान सागर और अदभुत सागर, उनकी सैन्य जीत का संकेत देते हैं। दूसरी ओर, ये उनकी विद्वतापूर्ण गतिविधियों और सामाजिक सुधारों का उल्लेख करते हैं। बल्लाल सेन बंगाल में रूढ़िवादी हिंदू प्रथाओं के पुनरुद्धार से जुड़ी है, विशेष रूप से ब्राह्मणों और कायस्थों के बीच कुलीनवाद की प्रतिक्रियावादी परंपरा की स्थापना के साथ। ब्राह्मणों को कुलीन, श्रोत्रिय, वंशज और सप्तसती में वर्गीकृत किया गया थाय कायस्थों को कुलीन और मौलिक में वर्गीकृत किया गया था, लेकिन इसकी कोई ऐतिहासिक प्रामाणिकता नहीं है। चालुक्य राजकुमारी रमादेवी से उनका विवाह यह भी दर्शाता है कि सेन ने उनके पिता से विरासत में मिले राज्य को बनाए रखा, जिसमें वर्तमान बांग्लादेश, संपूर्ण पश्चिम बंगाल और मिथिला, यानी उत्तरी बिहार के कुछ हिस्से शामिल थे। अदभुत सागर में एक रहस्यमय मार्ग के अनुसार, बल्लाल सेन, अपनी रानी के साथ, अपने बुढ़ापे में गंगा और यमुना के संगम पर अपने बेटे, लक्ष्मण सेन को छोड़कर, अपने राज्य को बनाए रखने और अपने साहित्यिक कार्य को पूरा करने के कार्य के साथ सेवानिवृत्त हो गई थी।

सेन के एक अभिलेख के अनुसार, बल्लाल एक लेखक थे। उन्होंने 1168ई. में दानसागर लिखा। 1169ई. में, उन्होंने अद्भुतसागर लिखना शुरू किया लेकिन खत्म नहीं किया। अद्भुतसागर में, यह उल्लेख किया गया था कि बल्लाल सेन ने मिथिला पर विजय प्राप्त की, जबकि विजय सेन अभी भी जीवित थे। इसके अलावा उन्होंने कुलीनवाद की प्रथा की शुरुआत की।

9.4.5 लक्ष्मण सेन

लक्ष्मण सेना (शासनकालः 1178–1206), जिन्हें आधुनिक भारतीय भाषाओं में लक्ष्मण सेन भी कहा जाता है, भारतीय उपमहाद्वीप पर बंगाल क्षेत्र के सेन

राजवंश के शासक थे। उनका शासन 28 वर्षों तक चला। लक्ष्मण सेन ने अपने पिता बल्लाल सेन के उत्तराधिकारी थे। उनके शासनकाल के इतिहास का पुनर्निर्माण उनके समय के अभिलेखों से किया जा सकता है, जिसमें उनके उत्तराधिकारियों के देवपारा प्रशस्ति पत्थर के शिलालेख और तांबे की प्लेटें शामिल हैं। 1260 में रचित तबकत–ए–नासिरी, उसके शासनकाल के बारे में जानकारी का एक अन्य स्रोत है।

अपनी युवावस्था में, लक्ष्मण सेना ने गौड़ा, कामरूप, कलिंग और वाराणसी (गहड़वाला राजा जयचंद्र के शासन के तहत) के खिलाफ सैन्य अभियानों का नेतृत्व किया, और अपने दादा विजय सेना और पिता बल्लाला सेना को सेना साम्राज्य की सीमाओं का विस्तार करने में मदद की। हालाँकि, वह स्वयं अधिक उम्र में बंगाल की गद्दी पर बैठा।

लक्ष्मण सेना की साहित्य में रुचि थी और उन्होंने कई संस्कृत कविताओं की रचना की। उन्होंने अपने पिता द्वारा अधूरी लिखी गई पुस्तक अदभुत सागर को पूरा किया। उन्होंने समकालीन संस्कृत साहित्य की कुछ प्रमुख हस्तियों – जयदेव, धोयिन और शरण को अपने दरबारी कवियों के रूप में इकट्ठा किया। उनके अन्य दरबारियों में, श्रीधरदास, हलायुध मिश्र और उमापति धरा ने भी महत्वपूर्ण ग्रंथ और साहित्य रचनाएँ लिखीं। लक्ष्मण सेना ने लक्ष्मण युग नामक एक कैलेंडर युग की स्थापना की जिसका उपयोग कम से कम 400 वर्षों तक बंगाल और बिहार में किया गया। उन्होंने प्रमुख मध्ययुगीन शहर लखनौती की भी स्थापना की।

वह एक समर्पित वैष्णव थे और इसे प्रतिबिंबित करने के लिए उन्होंने परमवैष्णव या परमनरसिंघा जैसी उपाधियाँ धारण कीं। लक्ष्मणसेन की उदारता ने तबकात–ए–नासिरी के लेखक मिन्हाज–उस–सिराज का भी ध्यान आकर्षित किया, जिन्होंने उन्हें बंगाल के 'महान राय' के रूप में नामित किया और उनकी तुलना सुल्तान कुतुबुद्दीन से की। 1200ई. में बिहार को अपने अधीन करने के बाद, तुर्क–अफगान आक्रमणकारी बख्तियार खिलजी की सेना ने बंगाल के नबद्वीप में प्रवेश किया। इसके बाद, बख्तियार ने राजधानी और प्रमुख शहर, लखनौती पर कब्जा कर लिया।

बख्तियार ने अच्छी तरह से प्रशिक्षित घुड़सवारों के एक दल के साथ बंगाल के खिलाफ मार्च किया। सबसे पहले उनके साथ नादिया में एक घोड़े के व्यापारी के रूप में व्यवहार किया गया। उस समय लक्ष्मणसेन अस्सी वर्ष के थे। इस आक्रमण का विस्तृत विवरण तबकात–ए–नासिरी में दिया गया है। हालाँकि,

उमापति धरा की प्रशंसात्मक कविता एक म्लेच्छ राजा के खिलाफ लक्ष्मणसेन की जीत को संदर्भित करती है, जिसे बंगाल में एक मुस्लिम शासक माना जा सकता है। 1206 ई. में किसी समय लक्ष्मणसेन की मृत्यु हो गई। तबाकत–ए–नासिरी के अनुसार, मिन्हाज–ए–सिराज ने लक्ष्मण सेना की तुलना महान सुल्तान कुतुब उद–दीन ऐबक से की क्योंकि उनकी महानता के कारण उन्होंने म्लेच्छ राजा को बहुत बहादुरी से हराया था।

राजा लक्ष्मण सेन एक भक्त वैष्णव थे। वह भगवान विष्णु के चौथे अवतार भगवान नृसिंह के भक्त थे। शाही उपाधियाँ ''परम–वैष्णव'', ''परम–नरसिंह'' और ''अरिराज–माधवशंकर'' थीं। उनके शाही दरबार में, महान कवि जयदेव ने प्रसिद्ध वैष्णव पदावली गीतगोविन्द की रचना की। उनके शाही दरबार में धोई और श्रीधर दास भी मौजूद थे। श्रीधर दास सदुक्तिकर्णमृत नामक संस्कृत कविता की एक पुस्तक के लेखक थे। सेन वंश का शाही प्रतीक उग्रमाधव था और युद्ध नारा ''राधामाधबॉयोबर्जयंती'' था।

9.5 सारांश

लक्ष्मणसेन के बाद सेन वंश के बारे में अधिक जानकारी नहीं प्राप्त हुई है। ऐसा माना जाता है कि लक्ष्मणसेन के बाद क्रमशः माधवसेन, विश्वरूपसेन तथा केशवसेन शासक हुये थे। सेन वंश का अंतिम ज्ञात शासक केशवसेन को ही माना जाता है। सेन शासनकाल में संस्कृत साहित्य का काफी विकास हुआ। बल्लालसेन और लक्ष्मणसेन स्वयं साहित्यकार और साहित्यकारों के संरक्षक थे। गीतगोविन्द और पवनदूत की रचना इसी युग में हुई। उमापति शरण और गोवर्धन लक्ष्मणसेन के दरबार में रहते थे। बंगाल में कुलीन प्रथा और समाज–संबंधी सुधार के आंदोलन इसी युग में हुए। बौद्धधर्म का विकृत रूप भी यहीं से शुरू होता है। सेन वंश के बाद पुनः बंगाल कई भागों में विभक्त हो गया और उसकी एकता जाती रही।

9.6 अभ्यासार्थ प्रश्न

1. सेन वंश के शासकों पर विस्तार पूर्वक वर्णन कीजिये।

   .....

   .....

2. सेन वंश के ज्ञात ऐतिहासिक स्रोतों की व्याख्या कीजिये।

   .....

.....

3. सेन वंश का सबसे शक्तिशाली शासक कौन था?

.....

.....

9.7 संदर्भ ग्रन्थ

जायसवाल, के.पी. : हिस्ट्री ऑफ इण्डिया (150–350 ए.डी.)

मजूमदार, आर.सी. : हिस्ट्री ऑफ बंगाल (वाल्यूम 1 संपादित)

एन.आर. रॉय : बंगालिर इतिहास

पॉल, पी.एल. : द अर्ली हिस्ट्री ऑफ बंगाल, वाल्यूम 1 और 2, कलकत्ता, 1915

सरकार, जे.एन. : द हिस्ट्री ऑफ बंगाल, कलकत्ता, 1948

सेन, बी.सी. : सम हिस्टोरिकल एस्पैक्टस आफ द इनसक्रिप्शन्स ऑफ बंगाल, कलकत्ता, 1942

इकाई 10 कलचुरि वंश–स्रोत एवं प्रारंभिक इतिहास– गांगेयदेव, विक्रमादित्य एवं कर्ण

इकाई की रूपरेखा

10.0 प्रस्तावना

10.1 उद्‌देश्य

10.2 कलचुरि वंश के इतिहास के स्रोत

10.3 त्रिपुरी के कलचुरि वंश का प्रारम्भिक इतिहास

10.3.1 शंकरगण

10.3.2युवराज प्रथम

10.3.3 लक्ष्मणराज

10.4 कलचुरि सत्ता का उत्कर्ष : गांगेयदेव विक्रमादित्य (1019–1041 ई0)

10.5 कर्ण अथवा लक्ष्मीकर्ण (1041–1070 ई0)

10.6 कलचुरि वंश का पतन

10.7 सारांश

10.8 अभ्यासार्थ प्रश्न

10.9 संदर्भ ग्रन्थ

10.0 प्रस्तावना

कलचुरि प्राचीन भारत का विख्यात आभीर–त्रैकूटक राजवंश था। इस वंश की शुरुआत राजा ईश्वरसेन उर्फ महाक्षत्रप ईश्वरदत्त ने की थी। 'कलचुरि' नाम से भारत में दो राजवंश थे–एक मध्य एवं पश्चिमी भारत (मध्य प्रदेश तथा राजस्थान) में जिसे 'चेदी', 'हैहय' या 'उत्तरी कलचुरि' कहते हैं तथा दूसरा 'दक्षिणी कलचुरि' जिसने वर्तमान कर्नाटक के क्षेत्रों पर राज्य किया। चेदि प्राचीन भारत के 16 महाजनपदों में से एक था। इसका शासन क्षेत्र मध्य तथा पश्चिमी भारत था। आधुनिक बुंदेलखंड तथा उसके समीपवर्ती भूभाग तथा मेरठ इसके आधीन थे। शक्तिमती या संथिवती इसकी राजधानी थी।

कलचुरि शब्द के विभिन्न रूप– कटच्छुरी, कलत्सूरि, कलचुटि, कालच्छुरि, कलचुर्य तथा कलिचुरि प्राप्त होते हैं। विद्वान इसे संस्कृत भाषा न मानकर तुर्की के

'कुलचुर' शब्द से मिलाते हैं, जिसका अर्थ उच्च उपाधियुक्त होता है। अभिलेखों में ये अपने को हैहय नरेश अर्जुन का वंशधर बताते हैं। इन्होंने 248–49 ई. से प्रारंभ होनेवाले संवत् का प्रयोग किया है, जिसे कलचुरि संवत् कहा जाता है। पहले वे मालवा के आसपास रहनेवाले थे। छठी शताब्दी के अंत में बादमी के चालुक्यों के दक्षिण के आक्रमण, गुर्जरों का समीपवर्ती प्रदेशों पर आधिपत्य, मैत्रकों के दबाव तथा अन्य ऐतिहासिक कारणों से पूर्व जबरपुर (जाबालिपुर?) के आसपास बस गए। यहीं लगभग नवीं शताब्दी में उन्होंने एक छोटे से राज्य की स्थापना की। अभिलेखों में कृष्णराज, उसके पुत्र शंकरगण, तथा शंकरगण के पुत्र बुधराज का नाम आता है। उसकी मुद्राओं पर उसे 'परम माहेश्वर' कहा गया है। शंकरगण शक्तिशाली नरेश था। इसने साम्राज्य का कुछ विस्तार भी किया था। बड़ौदा जिले से प्राप्त एक अभिलेख में निरिहुल्लक अपने को कृष्णराज के पुत्र शंकरगण का सांमत बतलाता है। लगभग 595 ई. के पश्चात शंकरगण के बाद उसका उतराधिकारी उसका पुत्र बुधराज हुआ। राज्यारोहण के कुछ ही वर्ष बाद उसने मालवा पर अधिकार कर लिया। महाकूट–स्तंभ–लेख से पता चलता है कि चालूक्य नरेश मंगलेश ने इसी बुधराज को पराजित किया था। इस प्रदेश से कलचुरी शासन का ह्रास चालुक्य विनयादित्य (681–96 ई.) के बाद हुआ।

10.1 उद्देश्य

इस इकाई का मुख्य उद्देश्य आपको कलचुरि वंश से संबंधित जानकारी प्रदान करना है। कलचुरि वंश के ऐतिहासिक स्रोत, प्रारंभिक इतिहास तथा उसके शासकों के विषय में विस्तृत जानकारी इस इकाई में प्रदान की जायेगी।

10.2 कलचुरि वंश के इतिहास के स्रोत

कलचुरि–चेदि वंश के इतिहास को हम उसके लेखों तथा साहित्यिक ग्रन्थों से ज्ञात करते हैं। इस वंश के प्रमुख लेख इस प्रकार हैं:

1. युवराज का बिलहारी का लेख
2. लक्ष्मणराज द्वितीय का कारीतलाई अभिलेख
3. कोक्कल द्वितीय के मुकुन्दपुर तथा प्यावां के लेख
4. कर्ण का रीवां (1948–49 ई०) का लेख
5. कर्ण के वाराणसी तथा गोहरवा (प्रयाग) से प्राप्त ताम्रपत्र–अभिलेख
6. यशः कर्ण के खैरा तथा जबलपुर के लेख

कुछ लेखों में कलचुरि चेदि संवत की तिथि दी गई है। इनमें कर्ण के लेख सर्वाधिक महत्वपूर्ण हैं,जो उसकी उपलब्धियों का विवरण देने के साथ–साथ इस वंश के इतिहास का भी बोध कराते हैं।

कलचुरी नरेश युवराज के दरबार में राजशेखर ने कुछ काल तक निवास किया तथा वहीं उसने अपने दो ग्रन्थों 'काव्यमीमांसा' तथा 'विद्धशालभंजिका' की रचना की थी। इनके अध्ययन से हम तत्कालीन संस्कृति का ज्ञान कर सकते हैं। इन ग्रन्थों में राजशेखर युवराज की मालवा तथा कलिंग की विजय का उल्लेख करते हुए उसे चक्रवर्ती राजा बताता है। हेमचन्द्र के द्वाश्रयकाव्य से कर्ण तथा पाल शासक विग्रहपाल के बीच संघर्ष की सूचना मिलती है। विल्हण कृत विक्रमांकदेवचरित से कर्ण तथा चालुक्य नरेश सोमेश्वर प्रथम के सम्बन्धों पर प्रकाश पड़ता है।

पूर्व मध्यकालीन भारत में कलचुरि वंश की कई शाखाओं के अस्तित्व का प्रमाण मिलता है। कलचुरियों की प्राचीनतम शाखा छठीं शती में माहिष्मती में शासन करती थी। इसका संस्थापक कृष्णराज था। उसका वर्ग एवं बादामी के चालुक्य नरेश पुलकेशिन द्वितीय का समकालीन था। उसके पूर्वजों कृष्णराज एवं शंकरगण का महाराष्ट्र, गुजरात, राजपूताना, कोंकण आदि पर अधिकार था। पुलकेशिन् के सैनिक अभियान ने उन्हें उत्तर भारत की ओर विस्थापित कर दिया। इसके बाद कुछ समय तक कलचुरियों का इतिहास अन्धकारपूर्ण हो गया। चालुक्यों तथा प्रतिहारों के दबाव के कारण कलचुरी बुन्देलखण्ड तथा बघेलखण्ड की ओर बढ़े तथा कालंजर के दुर्ग पर अधिकार कर लिया। किन्तु शीघ्र ही प्रतिहारों ने उन्हें वहाँ से भी हटा दिया। तत्पश्चात कलचुरी गोरखपुर तथा देवरिया जिलों को भूमि पर पूर्वी उत्तर प्रदेश में फैल गए। यहाँ उनकी सत्ता का संस्थापक राजा राजपुत्र था। कहला तथा कसिया लेखों में पता चलता है कि यहाँदो कलचुरी वंश शासन कर रहे थे। गोरखपुर क्षेत्र में इस वंश के शासन का प्रारम्भ नवीं शती के प्रारम्भ में हुआ। राजपुत्र की दसवीं पीढ़ी में सोददेव राजा हुआ। राजपुत्र के बाद शिवराज तथा शंकरगण प्रथम राजा बने। इनकी किसी भी उपलब्धि के विषय में पता नहीं चलता। शंकरगण को ही संभवतः त्रिपुरी के कलचुरी नरेश कोक्कल प्रथम ने अभयदान दिया था। उसका उत्तराधिकारी गुणाम्बोधि हुआ। बताया गया है कि उसने भोजदेव से कुछ भूमि प्राप्त की तथा युद्ध में गौड़ की लक्ष्मी का अपहरण कर लिया। ऐसा लगता है कि उसने प्रतिहार नरेश भोज की ओर से पालों के विरुद्ध संघर्ष में भाग लिया था। इस प्रकार यह स्पष्ट है कि गुणाम्बोधि तथा उसके उत्तराधिकारी गुर्जर प्रतिहारों के अधीन सामन्त थे। अगला राजा भामान ने प्रतिहारों के सामन्त रूप

में धारा के परमार राजा से युद्ध कर ख्याति प्राप्त किया। इस वंश का दसवाँ राजा सोढ़देव हुआ जिसका लेख मिलता है। वह एक स्वतंत्र शासक था जैसा कि उसको राजकीय उपाधियों से प्रकट होता हैं। इस समय तक गंगा–यमुना घाटी में तुर्कों के आक्रमण तथा चन्देलों के विस्तार के कारण प्रतिहार साम्राज्य विनष्ट हो गया था, जिससे सोढ़देव को स्वतंत्र राज्य स्थापित करने में सहायता मिली। उसने घाघरा तथा गंडक के किनारे एक स्वाधीन राज्य कायम कर लिया। 'परम माहेश्वर' की उपाधि से उसका शैव होना सूचित होता है। सोढ़देव के उत्तराधिकारियों के विषय में हमें पता नहीं है। संभवतः वह इस वंश का अन्तिम स्वतंत्र राजा रहा हो। ग्यारहवीं शती में कन्नौज के गाहड़वालों के उत्कर्ष के साथ ही कचुरी सत्ता का अन्त हो गया तथा बनारस तथा कन्नौज से लेकर अयोध्या तक का क्षेत्र गाहड़वालों के अधीन आ गया। इस प्रकार सरयू पार में गोरखपुर एवं देवरिया के कलचुरियों की शाखाएं समाप्त हो गयी। अब त्रिपुरी अथवा डाहल का कलचुरी वंश शक्तिशाली हुआ।

10.3 त्रिपुरी के कलचुरि वंश का प्रारम्भिक इतिहास

कलचुरी वंशों में यह सबसे प्रसिद्ध एवं शक्तिशाली सिद्ध हुआ। इसने मध्य भारत पर तीन शताब्दियों तक शासन किया। इस कलचुरी वंश का पहला राजा कोक्कल प्रथम था, जो संभवतः 845 ई० में गद्दी पर बैठा। उसका अपना कोई लेख तो नहीं मिलता किन्तु उसकी उपलब्धियों के विषय में हम उसके उत्तराधिकारियों के लेखों से जानते है। इनमें युवराजदेव का बिलहरी तथा कर्ण के बनारस लेख उल्लेखनीय है। ज्ञात होता है कि वह अपने समय का महान् सेनानायक था। उसने कन्नौज के प्रतिहार शासक भोज तथा उसके सामन्तों को युद्ध में पराजित किया। बिल्हारी लेख में कहा गया है कि 'समस्त पृथ्वी को जीतकर उसने दक्षिण दिशा में कृष्णराज तथा उत्तर दिशा में भोज को अपने दो कीर्ति स्तम्भों के रूप में स्थापित किया था।'' बनारस लेख में कहा गया है कि उसने भोज, बल्लभराज, चित्रकूट भूपाल, हर्ष तथा शंकरगण, नामक राजाओं को अभयदान दिया था। यहाँ भोज से तात्पर्य प्रतिहार भोज तथा कृष्णराज से तात्पर्य राष्ट्रकूट कृष्ण द्वितीय से है। हम निश्चित रूप से नहीं कह सकते कि इन दोनों राजाओं को उसने किसी युद्ध में जीता था अथवा वे उसका प्रभाव मात्र स्वीकार करते थे। हर्ष, चित्रकूट भूपाल एवं शंकरगण की पहचान निश्चित नहीं है। संभवतः हर्ष प्रतिहार भोज प्रथम का गुहिल सामन्त था जो चित्तौड़ में शासन करता था। शंकरगण, गोरखपुर की कलचुरी शाखा का सामन्त शासक था। तुम्माणवंशी पृथ्वीदेव के अमोदा लेख में वर्णित है कि कोक्कल ने कर्नाटक, वंग, कोंकण, शाकम्भरी, तुरुष्क तथा रघुवंशी राजाओं को जीता था। लेकिन यह

विवरण अतिश्योक्तिपूर्ण है जिसकी पुष्टि का कोई आधार नहीं है। इन सभी विजयों के फलस्वरूप वह अपने समय का एक शक्तिशाली शासक बन बैठा। उसने चन्देल वंश की राजकुमारी नट्टादेवी के साथ अपना विवाह तथा राष्ट्रकूट वंश के कृष्ण द्वितीय के साथ अपनी एक पुत्री का विवाह किया था। इन सम्बन्धों के परिणामस्वरूप उसने अपने साम्राज्य की पश्चिमी तथा दक्षिणी–पश्चिमी सीमाओं को सुरक्षित कर लिया।

10.3.1 भांकरगण

कोक्कल के 18 पुत्र थे। इनमें उसका ज्येष्ठ पुत्र शंकरगण उसकी मृत्यु के बाद (878 से 888 ई० के बीच) चेदि वंश का राजा बना। उसने दक्षिणी कोशल के सोमवंशी शासक को हराकर पाली पर अधिकारकर लिया तथा अपने एक छोटे भाई को वहाँ का राज्यपाल नियुक्त किया। इस समय राष्ट्रकूट नरेश कृष्ण द्वितीय वेंगी के पूर्वी चालुक्य नरेश विजयादित्य तृतीय के साथ संघर्ष में उलझा हुआ था। शंकरगण एक सेना के साथ कृष्ण द्वितीय की सहायता के लिए गया परन्तु विजयादित्य ने दोनों की सम्मिलित सेनाओं को किरणपुर में परास्त कर दिया। तत्पश्चात् चालुक्यों ने किरणपुर (बालाघाट, म० प्र०) को जला दिया। इस पराजय से शंकरगण को गहरा धक्का लगा। बिल्हारी अभिलेख शंकरगण को मलय देश पर आक्रमण करने का श्रेय प्रदान करता है परन्तु यह उल्लेख संदिग्ध है कि उसने अपनी पुत्री लक्ष्मी का विवाह राष्ट्रकूट नरेश कृष्ण द्वितीय के पुत्र जगत्तुंग के साथ किया था।

10.3.2 युवराज प्रथम

शंकरगण के दो पुत्र थे– बालहर्ष और युवराज प्रथम बालहर्ष का शासन अल्पकालीन था और उसके विषय में हमें कुछ भी पता नहीं है। दसवीं शताब्दी के मध्य युवराज प्रथम शासक हुआ। वह एक विजेता था जिसने बंगाल के पाल तथा कलिंग के गंग शासकों को पराजित किया। परन्तु चन्देल नरेश यशोवर्मन से वह पराजित हो गया। इसके अतिरिक्त राष्ट्रकूट नरेश कृष्ण तृतीय ने उसके राज्य पर आक्रमण किया। इसमें कलचुरियों को करारी हार हुई तथा उनके राज्य पर कुछ काल के लिए राष्ट्रकूटों का अधिकार हो गया। परन्तु शीघ्र ही युवराज प्रथम ने इस पराजय का बदला लिया तथा एक सेना के साथ उसने राष्ट्रकूटों को परास्त कर अपने राज्य से बाहर भगा दिया। बिल्हारी अभिलेख से पता चलता है कि उसने कर्नाटक तथा लाट को जीता था। धंग के खजुराहो लेख में भी उसकी शक्ति की प्रशंसा करते हुए उसे 'प्रसिद्ध राजाओं के मस्तक पर पैर रखनेवाला' कहा गया है। राजशेखर के ग्रन्थ 'विशालभंजिका' में युवराज

को 'उज्जयिनीभुजंग' कहा गया है जो इस बात का सूचक है कि उसने मालवा को जीता था। युवराज के शासन काल में ही राजशेखर कन्नौज छोड़कर त्रिपुरी आया। वहीं रहते हुए उसने अपने दो ग्रन्थों काव्यमीमांसा तथा विद्धशालभंजिका की रचना की थी। युवराज शेव मतानुयायी था। उसने शैव सन्तों को दान दिया तथा उनके निवास के लिए गुर्गों में एक मंदिर तथा मठ बनवाया था। एक लेख में कहा गया है कि उसने डाहलमण्डल के शेव सन्त सद्भावशम्भु को तीन लाख गाँव भिक्षा में दिया था। उसकी पत्नी नोहला चालुक्य वंशीया कन्या थी जिसने बिल्हारी के निकट शिव का एक विशाल मंदिर बनवाया तथा उसके लिए कई गाँव दान में दिये। भारद्वाज वंशी ब्राह्मण भाकमिश्र युवराज का प्रधानमंत्री था। भेड़ाघाट (जबलपुर) का प्रसिद्ध 'चौसठ योगिनी मंदिर' का निर्माण भी युवराज के समय में ही हुआ था।

10.3.3 लक्ष्मणराज

युवराज प्रथम के बाद उसका पुत्र लक्ष्मणराज शासक बना। वह भी एक शक्तिशाली राजा था जिसने कलचुरी साम्राज्य का चतुर्दिक् विस्तार किया। बिल्हारी तथा गोहरवा के लेखों से उसकी विजयों के विषय में सूचना प्राप्त होती है। बिल्हारी लेख के अनुसार युवराज ने 'कोशलराज को जीतते हुए आगे बढ़कर उड़ीसा के राजा से रत्न और स्वर्ण से जटिल कलिय (नाग) की प्रतिभा प्राप्त की। इससे उसने सोमनाथ की पूजा की।' इसी प्रकार बिल्हारी लेख में कहा गया है कि उसने बंगाल के राजा को पराजित किया, पाण्ड्यराज को पराभूत किया, लाट के राजा को लूटा, गुर्जर नरेश को जीता तथा कश्मीर के राजा ने मस्तक झुकाकर उसके चरणों की पूजा किया। इन लेखों का विवरण यद्यपि प्रशस्ति प्रकार का है जिसमें अतिरंजना का पुट मिलता है तथापि इसमें कुछ ऐतिहासिक तथ्य निहित है। उसका सोमनाथ तक अभियान तथ्य पर आधारित प्रतीत होता है। दसवीं शती के द्वितीयार्ध में गुर्जर तथा लाट भारी अव्यवस्था के शिकार थे। लाट प्रदेश पर राष्ट्रकूटों के सामन्त शिलाहार वंश तथा उत्तरी गुजरात पर कन्नौज के प्रतिहारों का अधिकार था। इन दोनों शक्तियों के पतन के दिनों में इन प्रदेशों में अव्यवस्था फैल गई, जिसका लाभ उठाते हुए लक्ष्मणराज ने इन प्रदेशों से होते हुए सोमनाथ तक सफल अभियान किया होगा। कोशल से तात्पर्य दक्षिण कोशल से है। यहाँ संभवतः उड़ीसा केसोमवंशी राजा राज्य करते थे। जहाँ तक बंगाल का प्रश्न है, हमें ज्ञात है कि दसवीं शती के द्वितीयार्ध से वहाँ शासन करने वाले पालवंश की स्थिति निर्बल पड़ गई थी। ग्यारहवीं शती के प्रथमार्ध में कलचुरी बंगाल के शासकों के घनिष्ठ सम्पर्क में थे। संभव है इसी का लाभ उठाते हुए लक्ष्मणराज ने वहाँ

सैनिक अभियान कर सफलता प्राप्त की हो। यहाँ तक हम कुछ ठोस आधार पर है, लेकिन जहाँ तक कश्मीर तथा पाण्ड्य राज्य की विजय का प्रश्न है, यह शुद्ध रूप से काव्यात्मक प्रतीत होता है।

लक्ष्मणराज ने अपनी पुत्री का विवाह चालुक्य नरेश विक्रमादित्य चतुर्थ के साथ किया। अपने पिता के समान लक्ष्मणराज भी शैव मत का पोषक था। उसने शैव सन्तों को संरक्षण प्रदान किया तथा हृदयशिव के लिए बहुमूल्य उपहारों सहित वैद्यनाथ मठ का दान किया। उसका प्रधान सचिव सोमेश्वर था जिसने विष्णु का एक मंदिर बनवाया था।

लक्ष्मणराज के बाद उसका पुत्र शंकरगण तृतीय राजा बना। उसकी कोई उपलब्धि नहीं है। उसके बाद उसका छोटा भाई युवराज द्वितीय राजा बना। गोहरवा लेख में उसे 'चेदीन्द्रचन्द्र' अर्थात् चेदिवंश के राजाओं में चन्द्र कहा गया है। उसने परमेश्वर की उपाधि धारणा की। किन्तु सैनिक दृष्टि से वह निर्बल शासक था जिसे वेंगी के चालुक्य नरेश तैल द्वितीय तथा परमार नरेश मुंज ने पराजित कर दिया। त्रिपुरी पर मुख्ज ने कुछ समय तक अधिकार बनाए रखा। उसके हटने के बाद मन्त्रियों ने युवराज द्वितीय को हटाकर उसके पुत्र कोक्कल द्वितीय को राजा बना दिया। उसके समय में कलचुरियों ने अपनी शक्ति एवं मर्यादा को पुनः प्राप्त कर लिया। कोक्कल द्वितीय ने गुर्जरदेश (गुजरात) पर आक्रमण कर चालुक्य नरेश चामुण्डराज को पराजित किया। उसने कुन्तल तथा गौड़ शासकों के विरुद्ध भी सफलता प्राप्त की। उसने 1019 ई० तक राज्य किया।

10.4 कलचुरि सत्ता का उत्कर्ष : गांगेयदेव विक्रमादित्य (1019–1041 ई0)

कोक्कल द्वितीय के पश्चात् उसका पुत्र तथा उत्तराधिकारी गांगेयदेव विक्रमादित्य कलचुरिवंश का एक प्रतापी राजा हुआ। उसके राज्यारोहण के समय कलचुरी राज्य की स्थिति अत्यन्त निर्बल थी। परमार भोज तथा चन्देल विद्याधर उसके प्रबल प्रतिद्वन्द्वी थे। अतः उनके विरुद्ध अपने वंश की सत्ता सुदृढ़ बनाना गांगेयदेव का प्रमुख कर्तव्य था।

ऐसा लगता है कि अपने शासन के प्रारम्भ में वह चन्देल नरेश विद्याधर की अधीनता स्वीकार करता था। खजुराहो से प्राप्त एक चन्देल लेख से इसकी सूचना मिलती है जिसके अनुसार कलचुरि नरेश विद्याधर की गुरु के समान पूजा करता था। यहाँ कलचुरि नरेश से तात्पर्य गांगेयदेव से ही है। मिराशी का विचार है कि गांगेयदेव ने राज्यपाल के विरुद्ध अभियान में विद्याधर की ओर से

भाग लिया था। चूंकि परमार भोज भी विद्याधर से आतंकित था, अतः वह गांगेयदेव का स्वभाविक मित्र बन गया। भोज ने कल्याणी के चालुक्य नरेश जयसिंह द्वितीय के विरुद्ध जो सैनिक अभियान किया था. गांगेयदेव भी उसमें शामिल हुआ था। किन्तु जयसिंह ने उसे पराजित कर दिया। इसके साथ ही भोज के साथ उसको मित्रता भी समाप्त हो गयी। मध्य भारत पर प्रभुत्व के लिए दोनों के बीच एक युद्ध भी हुआ जिसमें गांगेयदेव पराजित हो गया। किन्तु इससे गांगेयदेव हताश नहीं हुआ। विद्याधर की मृत्यु के बाद उसने अपनी स्वतन्त्रता घोषित कर दिया तथा इस अवधि में उत्तरी भारत का सार्वभौम शासक बनने के लिए उसने अनेक विजय की। उसने अंग, उत्कल, काशी तथा प्रयाग को जीता तथा प्रयाग में उसने अपना एक निवास स्थान बनाया। काशी का क्षेत्र संभवतः उसने पाल शासकों से छीना था। प्रयाग पर उसके अधिकार की पुष्टि खैरा और जबलपुर के लेखों से होती नै दिन गांगेयदेव ने बटवृक्ष के नीचे निवास करते हुए अपनी एक सौ रानियों के साथप्राणोत्सर्ग कर मुक्ति प्राप्त किया था। इससे तथा उत्तर भारत में प्राप्त उसके बहुसंख्यक सिक्कों से वहाँ उसका अधिकार प्रमाणित होता है। सम्पूर्ण कलचुरी वंश में सिक्के प्रवर्ति्त करने वाला गांगेयदेव पहला और शायद अन्तिम राजा था। ये सिक्के लक्ष्मी शैली के हैं। राजपूत राजाओं में सर्वप्रथम उसी ने स्वर्ग सिक्के प्रचलित करवाए थे। बनारस पर गांगेयदेव के अधिकार का परोक्ष रूप से समर्थन बेहको के विवरण सेभी होता है जिसमें बताया गया है कि 1033 ई० में अहमद नियाल्तगीन ने जब बनारस पर आक्रमण किया तो वहाँ का शासक गंग (गांगेयदेव) था। गांगेयदेव ने उत्तर–पश्चिम में पंजाब तथा दक्षिण में कुन्तल तक सैनिक अभियान किया। एक नेपाली पाण्डुलिपि में उसे तीरभुक्ति (तिरहुत) का स्वामी बताया गया है। पूर्व की ओर उसने उड़ीसा तक अभियान कर विजय प्राप्त की थी। गोइखा लेख से सूचना मिलती है कि उसने उत्कल के राजा को जीतकर अपनी भुजाओं को एक विजयस्तम्भ बना दिया था।

इस प्रकार गांगेयदेव एक विस्तृत साम्राज्य का शासक बना तथा महाराजाधिराज, परमेश्वर, महामण्डलेश्वर जैसी उच्च सम्मानपरक उपाधियों को ग्रहण किया। खैरालेख से पता चलता है कि उसने 'विक्रमादित्य' की भी उपाधि ग्रहण की थी। अपने पूर्वजों की भाँति गांगेयदेव भी शैव मतानुयायी था तथा उसने भी शैव मंदिरों एवं मठों का निर्माण करवाया था।

10.5 कर्ण अथवा लक्ष्मीकर्ण (1041–1070 ई0)

गांगेयदेव के बाद उसका पुत्र कर्णदेव अथवा लक्ष्मीकर्ण शासक बना। वह अपने वंश का सर्वाधिक शक्तिशाली राजा था। उसके कुल आठ अभिलेख मिलते

हैं, जिनसे हम उसकी उपलब्धियों का ज्ञान प्राप्त करते हैं। उसने अनेक सैनिक अभियान किए। गुजरात के चालुक्य नरेश भीम के साथ मिलकर उसने मालवा के परमार वंशी शासक भोज को पराजित किया। रासमाला से पता चलता है कि कर्ण ने धारा को ध्वस्त करने के बाद राजकोष पर अधिकार कर लिया। इस युद्ध में भोज मारा गया। प्रबन्धचिन्तामणि से भी इसका समर्थन होता है। भेड़ाघाट अभिलेख में कहा गया है कि 'कर्ण की वीरता के सामने वंग तथा कलिंग के शासक कांपने लगे। बंगाल में इस समय जातवर्मन् नामक कोई राजा शासन कर रहा था। कर्ण ने अपनी कन्या वीरश्री का विवाह उसके साथ कर दिया। कर्ण ने कलिंग की विजय की तथा 'त्रिकलिंगाधिपति' को उपाधि धारण की। पूर्व की ओर गौड़ तथा मगध के पाल शासकों को उसने पराजित किया। तिब्बती परम्परा से पता चलता है कि मगध में उसने बहुसंख्यक बौद्ध मंदिरों तथा मठों को नष्ट कर दिया था। पाल नरेश विग्रहपाल तृतीय को उसने युद्ध में पराजित किया। कर्ण के पैकोर (वीरभूमि जिला) लेख से पता चलता है कि उसने वहाँ की देवी को स्तम्भ समर्पित किया था। हेमचन्द्र भी कर्ण द्वारा विग्रहपाल की पराजय का उल्लेख करता है। किन्तु ऐसा प्रतीत होता है कि कर्ण ने उसके साथ सन्धि कर ली तथा अपनी कन्या का विवाह कर उसे अपना मित्र बना लिया।

कर्ण का सबसे प्रसिद्ध संघर्ष बुन्देलखण्ड के चन्देल वंश के साथ हुआ। विद्याधर की मृत्यु वहाँ का शासन निर्बल राजाओं के हाथ में आ गया जो अपनी रक्षा करने में सक्षम नहीं थे। इसका लाभ उठाते हुए कर्ण ने चन्देल नरेश देववर्मन पर आक्रमण कर उसे परास्त कर उसके राज्य के कुछ भागों पर अधिकार कर लिया। चन्देल लेखों से भी पता चलता है कि कुछ समय के लिए उनका राज्य कर्ण के आक्रमणों से पूर्णतया विनष्ट कर दिया गया था। विल्हण कर्ण को 'कालंजर गिरि के अधिपतियों का काल' कहता है।

इस प्रकार विविध स्रोतों से स्पष्ट होता है कि कर्ण तत्कालीन मध्य भारत का सर्वशक्तिमान सम्राट बन गया। परमार तथा चन्देल राजाओं का उन्मूलन करके उसने अपनी स्थिति सार्वभौम बना ली। उसके लेखों की प्राप्ति स्थानों–पैकोर, बनारस, गोहरवा आदि से भी पता चलता है कि वह एक विस्तृत भूभाग का स्वामी था। कभी–कभी कुछ यूरोपीय इतिहासकार कर्ण की उपलब्धियों की तुलना फ्रांसीसी सेनानायक नेपोलियन से करते हैं।

किन्तु ऐसा प्रतीत होता है कि कर्ण अपनी अजेयता अधिक समय तक सुरक्षित नहीं रख सका तथा अपने शासन के अन्तिम दिनों में उसे पराजय उठानी पड़ी। चन्देल नरेश कीर्तिवर्मन् द्वारा वह पराजित कर दिया गया। इससे

कर्ण की शक्ति अत्यन्त निर्बल पड़ गयी। पूर्व में विग्रहपाल तृतीय के पुत्र नयपाल, पश्चिममें परमार नरेश उदयादित्य उससे पश्चिम में अन्हिलवाड़ के चालुक्य भीम प्रथम तथा दक्षिण में कल्याणी के चालुक्य नरेश सोमेश्वर प्रथम ने भी कर्ण को कई युद्धों में पराजित कर उसकी प्रतिष्ठा को धूल में मिला दिया। 1073 ई0 के लगभग उसका शासन समाप्त हो गया।

कर्ण भी अपने पिता के समान शैव मतानुयायी था तथा बनारस में उसने कर्णमेरु नामक शैवमंदिर बनवाया था। उसने त्रिपुरी के निकट कर्णावती (आधुनिक कर्णबेल) नामक नगर की स्थापना भी करवायी थी। उसका विवाह हूणवंशीया कन्या आवल्लदेवी के साथ हुआ था। सारनाथ के बौद्ध भिक्षुओं को भी उसने सुविधाएं प्रदान की थी। प्रयाग तथा काशी में वह दान वितरित करता था।

10.6 कलचुरि वंश का पतन

कर्ण की मृत्यु के बाद कलचुरियों की शक्ति क्रमशः क्षीण होने लगी। उसके बाद उसकी पत्नी आवल्लदेवी से उत्पन्न पुत्र यशः कर्ण राजा बना। उसके जबलपुर तथा खैरा लेखों से पता चलता है कि स्वयं लक्ष्मीकर्ण ने ही उसका राज्याभिषेक किया था। वह अपने पिता के समान शक्तिशाली नहीं था। उसकी एकमात्र सफलता, जिसका उल्लेख उसके लेखों में किया गया है, यह थी कि वह आन्ध्र के राजा को जीतकर गोदावरी नदी तट तक पहुंच गया तथा वहाँ भीमेश्वर मंदिर में पूजा की। यह पराजित राजा वेंगी का पूर्वी चालुक्य वंशी विजयादित्य सप्तम था। किन्तु वह अधिक समय तक अपना राज्य सुरक्षित नहीं रख सका। उसे गम्भीर 'चुनौती काशी–कन्नीज क्षेत्र के गाहड़वालों द्वारा मिली. जिनका उत्कर्ष चन्द्रदेव के नेतृत्व में तेजी से हुआ। उसने काशी, कन्नौज तथा दिल्ली के समीपवर्ती सभी क्षेत्रों को जीतकर अपना स्वतंत्र राज्य स्थापित कर दिया। इनस्थानों को उसने यशः कर्ण से ही जीता होगा। इसके अतिरिक्त परमार लक्ष्मदेव, कल्याणी के चालुक्य नरेश विक्रमादित्य पष्ठ, चन्देल नरेश सल्लक्षणवर्मा आदि ने भी कई युद्धों में यशः कर्ण को पराजित कर दिया।

यशः कर्ण के बाद उसका पुत्र गयाकर्ण (1123–1151 ई०) राजा बना। वह भी एक निर्बल राजा था जो अपने वंश की प्रतिष्ठा एवं साम्राज्य को सुरक्षित नहीं रख सका। चन्देल नरेश मदनवर्मा ने उसे बुरी तरह पराजित किया गया कर्ण इतना भयाक्रान्त था कि उसका नाम सुनकर ही भाग खड़ा होता था। दक्षिणी कोशल के कलचुरी सामन्तों ने भी अपनी स्वतंत्रता घोषित कर दी तथा उनके शासक रत्नदेव द्वितीय ने भी गयाकर्ण को पराजित किया। गयाकर्ण के बाद नरसिंह, जयसिंह तथा विजयसिंह के नाम मिलते हैं जिन्होंने बारी–बारी से

शासन किया। वे भी अपने साम्राज्य को विघटन से बचा नहीं सके। बारहवीं शती के अन्त तक इस वंश ने महाकोशल में किसी न किसी प्रकार अपनी सत्ता कायम रखी। अन्ततोगत्वा तेरहवीं शती के प्रारम्भ में इस वंश के अन्तिम शासक विजयसिंह को चन्देल शासक त्रैलोक्यवर्मन् परास्त कर त्रिपुरी को जीतकर अपने राज्य में मिला लिया। इस प्रकार कलचुरी–चेदिवंश का अन्त हुआ।

10.6 सारांश

कर्ण, यशःकर्ण और जयसिंह ने सम्राट की प्रचलित उपाधियों के अतिरिक्त अश्वपति, गजपति, नरपति और राजत्रयाधिपति की उपाधियाँ धारण की। कोक्कल्ल प्रथम के द्वारा अपने 17 पुत्रों की राज्य के मंडलों में नियुक्ति चेदि राज्य के शासन में राजवंश के व्यक्तियों को महत्वपूर्ण स्थान देने के चलन का उदाहरण है। राज्य को राजवंश का सामूहिक अधिकार माना जाता था। राज्य में महाराज के बाद युवराज अथवा महाराजपुत्र का स्थान था। महारानियाँ भी राज्यकार्य में महत्वपूर्ण स्थान रखती थीं। मंत्रिमुख्यों के अतिरिक्त अभिलेखों में महामंत्रि, महामात्य, महासांधिविग्रहिक, महाधर्माधिकरण, महापुरोहित, महाक्षपटलिक, महाप्रतीहार, महासामंत और महाप्रमातृ के उल्लेख मिलते हैं। मंत्रियों का राज्य में अत्यधिक प्रभाव था। कभी–कभी वे सिंहासन के लिए राज्य परिवार में से उचित व्यक्ति का निर्धारण करते थे। राजगुरु का भी राज्य के कार्यों में गौरवपूर्ण महत्व था। सेना के अधिकारियों में महासेनापति के अतिरिक्त महाश्वसाधनिक का उल्लेख आया है जो सेना में अश्वारोहियों के महत्व का परिचायक है। कुछ अन्य अधिकारियों के नाम हैं : धर्मप्रधान, दशमूलिक, प्रमत्तवार, दुष्टसाधक, महादानिक, महाभांडागारिक, महाकरणिक और महाकोट्टपाल। नगर का प्रमुख पुर प्रधान कहलाता था। पद वंशगत नहीं थे, यद्यपि व्यवहार में किसी अधिकारी के वंशजों को राज्य में अपनी योग्यता के कारण विभिन्न पदों पर नियुक्त किया जाता था। धर्माधिकरण के साथ एक पंचकुल (समिति) संयुक्त होता था। संभवतः ऐसी समितियाँ अन्य विभागों के साथ भी संयुक्त है। राज्य के भागों के नामों में मंडल और पत्तला का उल्लेख अधिक थी। चेदि राजाओं का अपने सामंतों पर प्रभावपूर्ण नियंत्रण था। राज्य–करों की सूची में पट्टकिलादाय और दुस्साध्यादाय उल्लेखनीय हैं, ये संभवः इन्हीं नामों के अधिकारियों के वेतन के रूप में एकत्रित किए जाते थे। इसी प्रकार घट्टपति और तरपति भी कर उगाहते थे। शौल्किक शुल्क एकत्रित करनेवाला अधिकारी था। विषयादानिक भी कर एकत्रित करनेवाला अधिकारी था। विक्रय के लिए वस्तुएँ मंडपिका में आती थीं जहाँ उनपर कर लगाया जाता था।

ब्राह्मणों में सवर्ण विवाह का ही चलन था किंतु अनुलोम विवाह अज्ञात नहीं थे। कुछ वैश्य क्षत्रियों के कर्म भी करते थे। कायस्थ भी समाज के महत्वपूर्ण वर्ग थे। कलचुरि नरेश कर्ण ने हूण राजकुमारी आवल्लदेवी से विवाह किया था, उसी की संतानयशः कर्ण था। बहुविवाह का प्रचलन उच्च कुलों में विशेष रूप से था। सती का प्रचलन था किंतु स्त्रियाँ इसके लिए बाध्य नहीं थीं। संयुक्त–परिवार–व्यवस्था के कई प्रमाण मिलते हैं। व्यवसाय और उद्योग श्रेणियों के रूप में संगठित थे। नाप की इकाइयों में खारी, खंडी, गोणी, घटी, भरक इत्यादि के नाम मिलते हैं। गांगेयदेव ने बैठी हुई देवी की शैली के सिक्के चलाए। ये तीनों धातुओं में उपलब्ध हैं। यह शैली उत्तरी भारत की एक प्रमुख शैली बन गई और कई राजवंशों ने इसका अनुकरण किया।

धर्म के क्षेत्र में सामान्य प्रवृत्ति समन्वयवादी और उदार थी। ब्रह्मा, विष्णु और रुद्र की समान पूजा होती थी। जैन धर्म भी बहु विख्यात था। विष्णु के अवतारों में कृष्ण के स्थान पर बलराम की अंकित किए जाते थे। विष्णु की पूजा का अत्यधिक प्रचलन था किंतु शिव–पूजा उससे भी अधिक जनप्रिय थी। चेदि राजवंश के देवता भी शिव थे। युवराज देव प्रथम के समय में शैवधर्म का महत्व बढ़ा। उसने मत्तमयूर शाखा के कई शैव आचार्यों को चेदि देश में बुलाकर बसाया और शैव मंदिरों और मठों का निर्माण किया। कुछ शैव आचार्य राजगुरु के रूप में राज्य के राजनीतिक जीवन में महत्व रखते थे। गोलकी मठ में 64 योगिनियों और गणपति की मूर्तियाँ थीं। वह मठ दूर–दूर के विद्वानों और धार्मिकों के आकर्षण का केंद्र था और उसकी शाखाएँ भी कई स्थानों में स्थापित हुई थीं। ये मठ शिक्षा के केंद्र थे। इनमें जनकल्याण के लिए सत्र तो थे ही, इनके साथ व्याख्यानशालाओं का भी उल्लेख आता है। गणेश, कार्तिकेय, अंबिका, सूर्य और रेवंत की मूर्तियाँ उपलब्ध होती हैं। बौद्ध और जैन धर्म भी समृद्ध दशा में थे। जगह जगह आज भी अत्याधिक संख्या में कल्चुरी कालीन जैन तीर्थंकर और जैन देवी–देवता यक्ष यक्षी की प्रतिमाएं भूगर्भ से प्राप्त होती रहती है। लेकिन जैन मंदिर अवशेष कम देखने में आते है। कुछ इतिहासकारों का मानना है की जैन और शैव धर्मों के देवस्थान पहले एक ही रहें होंगे।

चेदि नरेश दूर–दूर के ब्राह्मणों को बुलाकर उनके अग्रहार अथवा ब्रह्मस्तंब स्थापित करते थे। इस राजवंश के नरेश स्वयं विद्वान् थे। मायुराज ने उदात्ताराघव नाम के एक नाटक और संभवमः किसी एक काव्य की भी रचना की थी। भीमट ने पाँच नाटक रचे जिनमें स्वप्नदशानन सर्वश्रेष्ठ था। शंकरगण के कुछ श्लोक सुभाषित ग्रंथों में मिलते हैं। राजशेखर के पूर्वजों में अकालजलद, सुरानंद, तरल और कविराज चेदि राजाओं से ही संबंधित थे। राजशेखर ने भी कन्नौज जाने से पूर्व ही छः प्रबंधों की रचना की थी और

बालकवि की उपाधि प्राप्त की थी। युवराजदेव प्रथम के शासनकाल में वह फिर त्रिपुरी लौटा जहाँ उसने विद्धशालभंजिका और काव्यमीमांसा की रचना की। कर्ण का दरबार कवियों के लिए पसिद्ध था। विद्यापति और गंगाधर के अतिरिक्त वल्लण, कर्पूर और नाचिराज भी उसी के दरबार में थे। बिल्हण भी उसके दरबार में आया था। कर्ण के दरबार में प्रायः समस्यापूरण की प्रतियोगिता होती थी। कर्ण ने प्राकृत के कवियों को भी प्रोत्साहन दिया था।

कलचुरि नरेशों ने, विशेष रूप से युवराजदेव प्रथम, लक्ष्मणराज द्वितीय और कर्ण ने, चेदि देश में अनेक भव्य मंदिर बनवाए। इनके उदाहरण पर कई मंत्रियों और सेनानायकों ने भी शिव के मंदिर निर्मित किए। इनमें से अधिकांश की विशेषता उनका वृत्ताकार गर्भगृह है। इनकी मूर्तियों की कला पर स्थानीय जन का प्रभाव स्पष्ट है। ये मूर्तिफलक विषय की अधिकता और भीड़ से बोझिल से लगते हैं।

10.5 अभ्यासार्थ प्रश्न

1) कलचुरि वंश के इतिहास के विभिन्न स्रोतों के विषय में वर्णन कीजिये।

.....

2) कलचुरि वंश के शासकों के बारे में विस्तार पूर्वक विवेचना कीजिये।

.....

3) कलचुरि वंश के प्रारम्भिक इतिहास के विषय में वर्णन कीजिये।

.....

10.6 सन्दर्भ ग्रन्थ

वासुदेव विष्णु मिराशी : इंसक्रिप्शंस ऑव दि कलचुरि–चेदि इरा

आर.डी.बनर्जी : *दि हैहयाज ऑव त्रिपुरी ऐंड देयर मान्यूमेंट्स*

महाजन, वी.डी. : उत्तर भारत का राजनीतिक इतिहास (647 ई0 – 1200 ई0)

मजूमदार, आर.सी. : एनसियेण्ट इण्डिया।

मध्य प्रदेश देवास : गवर्नमेण्ट सेन्ट्रल प्रेस, 1993

सिंह, नागेन्द्र कुमार : इनसायक्लोपीडिया ऑफ जैनिज्म

इकाई 11–परमार वंश–स्रोत एवं प्रारम्भिक इतिहास–मुंज एवं भोज

इकाई की रूपरेखा

11.0 प्रस्तावना

11.1 उद्देश्य

11.2 परमार वंश के इतिहास के स्रोत

11.3 प्रारम्भिक इतिहास

11.3.1 हर्ष अथवा सीयक द्वितीय (945ई0–972ई०)

11.3.2 वाक्पति मुंज

11.3.3 सिन्धुराज

11.3.4 भोज

11.4 भोज की सांस्कृतिक उपलब्धियाँ

11.5 परमार सत्ता का अन्त

11.6 सारांश

11.7 अभ्यासार्थ प्रश्न

11.8 संदर्भ ग्रन्थ

11.0 प्रस्तावना

अग्निकुण्ड से जिन राजपूत वंशों की उत्पत्ति वर्णित है, उनमें धारा अथवा मालवा के परमार प्रमुख हैं। इस वंश के साहित्य तथा लेखों में स्पष्टतः अग्निकुण्ड की कथा का उल्लेख किया गया है। पद्मगुप्त, जो परमार काल के प्रसिद्ध कवि थे, के ग्रन्थ 'नवसाहसांकचरित' में परमार वंश की उत्पत्ति आबू पर्वत से बताई गई है। तदनुसार ऋषि वशिष्ठ इक्ष्वाकुवंश के पुरोहित थे। उनकी कामधेनु नामक गाय को विश्वामित्र ने चुरा लिया। वशिष्ठ ने गाय प्राप्त करने के लिए आबू पर्वत पर यज्ञ किया। अग्नि में डाली गई आहुति से एक धनुर्धर वीर उत्पन्न हुआ जिसने विश्वामित्र को परास्त कर गाय को पुनः वशिष्ठ को समर्पित कर दिया। प्रसन्न होकर ऋषि ने इस वीर का नाम 'परमार' रखा जिसका अर्थ है 'शत्रु का नाश करने वाला' इसी द्वारा स्थापित वंश परमार कहा गया। इस कथानक का उल्लेख धनपाल कृत तिलकमंजरी तथा परमार वंश के

उदयपुर, आबूपर्वत, वसन्तगढ़ आदि स्थानों से प्राप्त लेखों में भी हुआ है। परमारों की उत्पत्ति संबंधी इस अनुश्रुति पर टिप्पणी करते हुए गौरीशंकर ओझा ने मत व्यक्त किया है कि चूंकि इस वंश के आदि पूर्वज धूमराज के नाम का संबंध अग्नि से था, इसी कारण विद्वानों ने इस वंश को अग्निवंशी स्वीकार कर लिया। किन्तु यह पूर्णतया अनुमानपरक है जिसका कोई आधार नहीं मिलता। हलायुध की 'पिंगल सूत्रवृत्ति' में परमारों को 'ब्रह्मक्षत्र कुलीन' बताया गया है। परमार भी अपना संबंध ऋषि वशिष्ठ से जोड़ते हैं। ऐसी स्थिति में यही मानना तर्कसंगत प्रतीत होता है कि परमार पहले ब्राह्मण थे जो बाद में शासन करने के कारण क्षत्रियत्व को प्राप्त हुए। उल्लेखनीय है कि इस वंश के प्रथम शासक उपेन्द्रराज को उदयपुर लेख में 'द्विजवर्गरत्न' कहा गया है। पूर्व मध्यकाल में ब्रह्मक्षत्र परम्परा के व्यापक प्रचलन के प्रमाण मिलते हैं।

11.1 उद्देश्य

इस इकाई का मुख्य उद्देश्य आपको परमार वंश के उदय के कारणों, उनके शासकों, कार्यशैली के बारे में जानकारी प्रदान करना है।

11.2 परमार वंश के इतिहास के स्रोत

परमार वंश का इतिहास हम अभिलेख, साहित्य तथा विदेशी विवरण के आधार पर ज्ञात करते हैं। इस वंश के अभिलेख में सर्वप्रथम सीयक द्वितीय का हरसौल अभिलेख (948 ई०) है जिससे परमार वंश का प्रारंभिक इतिहास ज्ञात होता है। अन्य लेखों में वाक्पति मुंज का उज्जैन अभिलेख (980 ई०), भोज के बांसवाड़ा तथा बेतमा के अभिलेख, उदयादित्य के समय की उदयपुर–प्रशस्ति, लक्ष्मदेव की नागपुर– प्रशस्ति आदि का उल्लेख किया जा सकता है। इनमें सर्वाधिक महत्वपूर्ण उदयपुर–प्रशस्ति है जो भिलसा के समीप उदयपुर नामक स्थान के नीलकण्ठेश्वर मंदिर के एक शिलापट्ट के ऊपर उत्कीर्ण है। यह परमार वंश के शासकों के नाम तथा उनकी उपलब्धियों को ज्ञात करने का प्रमुख साधन है तथा इस प्रकार का विवरण अन्यत्र कहीं नहीं मिलता है।

परमार वंश के इतिहास का ज्ञान हमें विभिन्न साहित्यिक ग्रन्थों से भी प्राप्त होता है। इनमें सर्वाधिक महत्वपूर्ण है पद्मगुप्त द्वारा विरचित नवसाहसाङ्कचरित। पद्मगुप्त परमार नरेशों वाक्पतिमुंज तथा सिन्धुराज का राजकवि था। यद्यपि इस ग्रन्थ में उसने मुख्यतः अपने आश्रयदाता राजाओं के जीवन तथा कृतियों का ही वर्णन किया है तथापि इसमें परमार वंश के इतिहास से सम्बन्धित अनेक महत्वपूर्ण तथ्य भी लिखित हैं। हर्षचरित की प्रकृति का यह

एक चरित काव्य ही है। इसके अतिरिक्त जैन लेख मेरुतुंग के प्रबन्धचिन्तामणि से भी परमार वंश के इतिहास, विशेषकर गुजरात के चालुक्य शासकों के साथ उनके सम्बन्धों का ज्ञान होता है। वाक्पतिमुंज तथा भोज स्वयं विद्वान् तथा विद्वानों के संरक्षक थे। उनके काल में अनेक ग्रन्थों की रचना हुई। उनके अध्ययन से हम तत्कालीन समाज एवं संस्कृति का अच्छा ज्ञान प्राप्त कर सकते हैं।

मुसलमान लेखकों तथा ग्रन्थों के विवरण से भी परमार वंश के कुछ शासकों के विषय में कुछ बातें ज्ञात होती हैं। इनमें अबुलफजल की आइन–ए–अकबरी, अलबरूनी तथा फरिश्ता के विवरण आदि उल्लेखनीय हैं। मुसलमान लेखक भोज की शक्ति तथा विद्वता की प्रशंसा करते हैं।

11.3 प्रारम्भिक इतिहास

परमार वंश की स्थापना दसवीं शताब्दी ई० के प्रथम चरण में उपेन्द्र अथवा कृष्ण राज नामक व्यक्ति ने की थी। धारा नामक नगरी परमार वंश की राजधानी थी। उदयपुर लेख से पता चलता है कि उसने स्वयं अपने पराक्रम से राजत्व का उच्च पद प्राप्त किया था (शौर्याज्जितोत्तुंगनृपत्वमाणः)। लेकिन यह निश्चित नहीं हैं कि कब और किन परिस्थितियों में उपेन्द्र ने मालवा पर अधिकार किया। इस समय का राजनीतिक वातावरण काफी अशान्तपूर्ण था तथा प्रतिहारों एवं राष्ट्रकूटों में संघर्ष चल रहा था। प्रतिपाल भाटिया का अनुमान है कि वत्सराज की ध्रुव द्वारा पराजय के बाद उपेन्द्र को अपनी शक्ति विस्तार का अवसर मिला होगा। गोविन्द तृतीय के उत्तरी अभियान के दौरान उसने राष्ट्रकूटों की अधीनता स्वीकार कर लिया। किन्तु नागभट्ट के समय में प्रतिहारों के शक्तिशाली हो जाने पर उपेन्द्र तथा उसके उत्तराधिकारी उनके अधीन हो गए।' पद्मगुप्त, उपेन्द्र की प्रशंसा में लिखता है कि उसने प्रजा के अनेक करों में छूट कर दी तथा वैदिक यज्ञों का अनुष्ठान किया। उपेन्द्र के बाद कई छोटे–छोटे शासक हुए। इनमें वैरिसिंह प्रथम, सीयक प्रथम, वाक्पति प्रथम तथा वैरिसिंह द्वितीय के नाम मिलते हैं जिन्होंने 790 ई० के लगभग से 945 ई० तक शासन किया। इनकी स्थिति अधीन अथवा सामन्त शासकों जैसी थी जिनकी किसी विशेष उपलब्धि के विषय में हमें ज्ञात नहीं है। ये सभी राष्ट्रकूटों तथा प्रतिहारों की अधीनता में राज्य करते थे।

11.3.1 हर्ष अथवा सीयक द्वितीय (945ई0–972ई०)

परमार वंश को स्वतंत्र स्थिति में लाने वाला पहला शासक हर्ष अथवा

सीयक द्वितीय वैरिसिंह द्वितीय का पुत्र और उत्तराधिकारी था। उसके पिता के समय में प्रतिहारों ने मालवा पर अधिकार कर लिया था तथा परमारों को माण्डू तथा धारा से निर्वासित कर दिया था। ऐसा प्रतीत होता है कि इस समय परमारों ने भागकर राष्ट्रकूटों के यहाँ शरण ले ली थी। अस्तु परमार तथा राष्ट्रकूट सत्ता से अपने वंश को मुक्त कराना सीयक की प्राथमिकता थी। प्रतिहार साम्राज्य इस समय पतनोन्मुख स्थिति में था। इसका लाभ उठाते हुए सीयक ने मालवा तथा गुजरात में अपनी स्थिति मजबूत कर ली। तत्पश्चात् उसने अन्य क्षेत्रों में अपना विजय अभियान प्रारम्भ किया। उसके हर्सोल लेख से पता चलता है कि योगराज नामक किसी शत्रु को उसने जीता था। इसकी पहचान संदिग्ध है। संभवतः वह गुजरात के चालुक्यवंश से संबंधित प्रतिहार नरेश महेन्द्रपाल प्रथम का कोई सामन्त था। नवसाहसांकचरित उसे हूणमण्डल की विजय का श्रेय प्रदान करता है। तदनुसार सीयक ने हूण राजकुमारों की हत्या कर उनकी रानियों को विधवा बना दिया था। हूणमण्डल से तात्पर्य मध्य प्रदेश के इन्दौर के समीपवर्ती प्रदेश से है जिसे जीतकर सीयक ने अपने साम्राज्य में शामिल कर लिया था। किन्तु उसकी बढ़ती हुई शक्ति पर जेजाकभुक्ति के चन्देलों ने अंकुश लगाया। खुजराहों लेख से पता चलता है कि चन्देल शासक यशोवर्मन ने सीयक को पराजित किया था। उसे 'मालवों के लिए काल के समान' (काल–वन्मालवानाम) कहा गया है। ऐसा प्रतीत होता है कि यशोवर्मन ने परमार राज्य के किसी भाग पर अधिकार नहीं किया तथा उसका युद्ध केवल परमारों को आतंकित करने के लिए ही था।

सीयक को सबसे महत्वपूर्ण सफलता राष्ट्रकूटों के विरुद्ध मिली तथा उसने अपने वंश को राष्ट्रकूटों की अधीनता मुक्त कराया। नर्मदा नदी के तट पर राष्ट्रकूट नरेश खोटिंग की सेनाओं के साथ युद्ध हुआ जिसमें सीयक की विजय हुई। उसने राष्ट्रकूट नरेश का उसकी राजधानी मान्यखेत तक पीछा किया तथा वहाँ सेबहुत अधिक सम्पत्ति लूट कर लाया। वह अपने साथ ताम्रपत्रों की अभिलेखागार में सुरक्षित प्रतियां भी उठा ले गया। इन्हीं में से एक लेख गोविन्द चतुर्थ का था जिसपर बाद में एक ओर मुंज ने अपना लेख खुदवाया था। राष्ट्रकूटों के साथ संघर्ष में सीयक का एक सेनापति भी मारा गया। उदयपुर लेख में इस विजय का उल्लेख अत्यन्त काव्यात्मक ढंग से करते हुए कहा गया है कि सीयक ने 'भयंकरता में गरुड़ की तुलना करते हुए खोट्टिग की लक्ष्मी को युद्ध में छीन लिया।' उसकी इस विजय के परिणामस्वरूप परमार राज्य की दक्षिणी सीमा ताप्ती नदी तक जा पहुँची। इस प्रकार सीयक एक शक्तिशाली सम्राट सिद्ध हुआ जिसकी विजयों ने परमार साम्राज्य की सुदृढ़

आधारशिला प्रस्तुत किया।

11.3.2 वाक्पति मुंज

सीयक के दो पुत्र थेः मुंज तथा सिन्धुराज। इनमें पहला उसका दत्तक पुत्र था, लेकिन सीयक की मृत्यु के बाद वही गद्दी पर बैठा। इतिहास में वह वाक्पति मुंज तथा उत्पलराज के नाम से भी प्रसिद्ध है। प्रवन्धचिन्तामणि में उसके जन्म के विषय में एक अनोखी कथा मिलती है। इसके अनुसार सीयक को बहुत दिन तक कोई पुत्र नहीं प्राप्त हुआ। संयोगवश उसे एक दिन मुंज घास में पड़ा एक नवजात शिशु मिला। सीयक उसे उठाकर घर लाया तथा पालन पोषण करके बड़ा किया। बाद में उसकी अपनी पत्नी से सिन्धुराज नामक पुत्र भी उत्पन्न हो गया। किन्तु वह अपने दत्तक पुत्र से पूर्ववत् स्नेह करता रहा। मूंज में पड़े होने से ही उसका नाम मुंज रखा गया। सीयक ने स्वयं उसे अपना उत्तराधिकारी घोषित किया था। किन्तु कुछ विद्वान इस कथानक की ऐतिहासिकता में संदेह व्यक्त करते हुए मत देते हैं कि मुंजराज नाम की व्याख्या ढूंढ़ने के उद्देश्य से इसका सृजन किया गया है।

वाक्पति मुंज एक शक्तिशाली शासक था। राज्यारोहण के पश्चात् वह अपने साम्राज्य को विस्तृत करने में जुट गया। इस उद्देश्य से उसने अनेक युद्ध किए। मुंज ने कलचुरी शासक युवराज द्वितीय को हराकर उसकी राजधानी त्रिपुरी को लूटा उदयपुर लेख में इसका विवरण सुरक्षित है। ऐसा प्रतीत होता है कि मुंज त्रिपुरी पर अधिक समय तक अधिकार नहीं रख पाया तथा उसने कलचुरी राज्य से संधि कर उसकी राजधानी वापस कर दिया। हूण मण्डल के हूणों ने उसकी अधीनता स्वीकार की। इसमें मालवा क्षेत्र सम्मिलित था। गाओनी लेख से पता चलता है कि मुंज ने इस क्षेत्र में स्थित वणिका नामक ग्राम ब्राह्मणों को दान में दिया था। यह उसकी हूण क्षेत्र पर विजय एवं अधिकार का स्पष्ट प्रमाण है। इसी प्रकार उसने मेवाड़ के गुहिल वंशी शासक शक्तिकुमार को हराकर उसकी राजधानी आघाट (उदयपुर स्थित अहर) को लूटा। राष्ट्रकूट वंशी धवल के बीजापुर लेख से पता चलता है कि गुहिल नरेश ने भागकर धवल के दरबार में शरण ली। इस युद्ध में गुर्जर वंश का कोई शासक भी शक्तिकुमार की ओर से लड़ा था किन्तु वह भी मुंज द्वारा पराजित किया गया। इस गुर्जर नरेश की पहचान के विषय में मतभेद है। दशरथ शर्मा तथा एच० सी० राय इसे चालुक्य नरेश मूलराज मानते हैं। मजूमदार तथा भाटिया के अनुसार वह कन्नौज के प्रतिहारों का कोई सामन्त था। नड्डुल के चौहानोंसे भी उसका युद्ध हुआ। चौहान शासक बलिराज को हराकर उसने आबू पर्वत तथा जोधपुर के

दक्षिण का भाग छीन लिया। पश्चिम में उसने लाट राज्य पर आक्रमण किया। इस समय लाट प्रदेश पर कल्याणी के चालुक्यों का अधिकार था जहाँ तेल द्वितीय का सामन्त वारप्य तथा उसका पुत्र गोग्गौराज शासन करते थे। मुंज ने वारप्प को परास्त किया। परिणामस्वरूप उसका चालुक्य नरेश तैल से संघर्ष छिड़ गया। प्रबन्धचिन्तामणि से पता चलता है कि मुंज ने छः बार तैल की सेनाओं को पराजित किया और अन्त में अपने मंत्री रुद्रादित्य के परामर्श की उपेक्षा करते हुए उसने गोदावरी नदी पारकर स्वयं राष्ट्रकूट राज्य पर आक्रमण कर दिया। उसे राष्ट्रकूटों की शक्ति का सही अन्दाजा नहीं था। मुंज राष्ट्रकूट सेनाओं द्वारा पराजित किया गया तथा बन्दी बना लिया गया। तैल ने नर्मदा नदी तक परमार राज्य के दक्षिणी भाग पर अधिकार कर लिया। उसने कारागार में ही परमार नरेश मुंज का वध करवा दिया। प्रवन्धचिन्तामणि के अतिरिक्त कैथोम तथा गड़ग जैसे चालुक्य लेखों से भी तैल द्वारा मुंज के वध की सूचना मिलती है। इस प्रकार उसका दुःखद अन्त हुआ।

मुंज ने 992 ई० से 998 ई० तक राज्य किया। विजेता होने के साथ–साथ वह स्वयं एक उच्चकोटि का कवि एवं विद्या और कला का उदार संरक्षक था। पद्मगुप्त, धनंजय, धनिक, हलायुध, अमितगति जैसे विद्वान् उसकी राजसभा को सुशोभित करते थे। पद्मगुप्त उसको विद्वता एवं विद्या के प्रति अगाध प्रेम कीचर्चा करते हुए लिखता है कि 'विक्रमादित्य के चले जाने तथा सातवाहन के अस्त हो जाने पर सरस्वती को कवियों के मित्र मुंज के यहाँ ही आश्रय प्राप्त हुआ था। वह महान् निर्माता भी था जिसने अनेक मंदिरों तथा सरोवरों का निर्माण करवाया था। अपनी राजधानी में उसने 'मुंजसागर' नामक एक तालाब बनवाया तथा गुजरात में मुंजपुर नामक नये नगर की स्थापना करवायी थी। उज्जैन, धर्मपुरी, माहेश्वर आदि में उसने कई मंदिरों का निर्माण भी करवाया। इस प्रकार उसकी प्रतिभा बहुमुखी थी। श्रीवल्लभ, पृथ्वीवल्लभ, अमोघवर्ष आदि उसकी प्रसिद्ध उपाधियां थी।

11.3.3 सिन्धुराज

मुंज के कोई पुत्र नहीं था, अतः उसकी मृत्यु के बाद उसका छोटा भाई सिन्धुराज शासक बना। उसने कुमारनारायण तथा साहसाङ्क जैसी उपाधियां धारण की। वह भी महान् विजेता और साम्राज्य निर्माता था। राजा बनने के पश्चात् वह अपने साम्राज्य की प्रतिष्ठा को पुनर्स्थापित करने के कार्य में जुट गया। उसका सबसे पहला कार्य कल्याणी के चालुक्यों से अपने उन क्षेत्रों को जीतना था जिन पर मुंज को हराकर तैलप ने अधिकार कर लिया था। उसका

समकालीन चालुक्य नरेश सत्याश्रय था। नवसाहसांकचरित से पता चलता है कि सिन्धुराज ने कुन्तलेश्वर द्वारा अधिग्रहीत अपने राज्य को तलवार के बल पर पुनः अपने अधिकार में किया। यहां कुन्तलेश्वर से तात्पर्य सत्याश्रय से ही है। तत्पश्चात् उसने अन्य स्थानों की विजय का कार्य प्रारम्भ किया। उसकी कुछ विजयों के विषय में पद्मगुप्त सूचना देता है। वह उसे कोशल, लाट, अपरान्त तथा मुरल का विजेता बताता है। यहां कौशल से तात्पर्य दक्षिणी कोशल से हैं जो वर्तमान छत्तीसगढ़ राज्य में स्थित (रायपुर विलासपुर क्षेत्र) था। लाट प्रदेश गुजरात में था जहां कल्याणी के चालुक्य सामन्त गोग्गीराज शासन कर रहा था। सिन्धुराज ने उस पर आक्रमण कर उसे परास्त किया तथा वहीं से अपरान्त (कोकण) की विजय की जहां शिलाहार वंश का शासन था। शिलाहरों ने उसकी अधीनता मान ली। मुरल की पहचाननिश्चित नहीं है। यह राज्य संभवतः अपरान्त और केरल के बीच स्थित था। पता चलता है कि बस्तर राज्य के नलवंशी शासक ने वज्र (वैरगढ़, म० प्र०) के अनार्थ शासक वज्रकुश के विरुद्ध सिन्धुराज से सहायता की याचना की। परिणामस्वरूप सिन्धुराज ने विद्याधरों को साथ लेकर गोदावरी पार किया तथा अनार्य शासक के राज्य में जाकर उसकी हत्या कर दी। अनुग्रहीत नलशासक ने सिन्धुराज के साथ अपनी कन्या शशिप्रभा का विवाह कर दिया। विद्याधर थाना जिले के शिलाहार थे जिनका शासक अपराजित था। उत्तर की ओर उसने हुण मण्डल के शासक को हराया। उदयपुर लेख तथा नवसाहसांकचरित दोनों में हूणों का उल्लेख मिलता है। ऐसा प्रतीत होता है कि सिन्धुराज ने हूणों का पूर्णरूपेण दमन कर दिया तथा बाद में विद्रोह खड़ा करने की हिम्मत उनमें नहीं रही। इसी समय वागड के परमार सामन्त चण्डप ने विद्रोह का झंडा खड़ा कर दिया किन्तु सिंधुराज ने उसके विद्रोह को शान्त किया। किन्तु गुजरात के चालुक्य शासक मूलराज प्रथम के पुत्र चामुण् डराज के हाथों सिन्धुराज को पराजित होना पड़ा। जयसिंह सूरि की कुमारभूपालचरित तथा वाडनगर लेख से इसकी सूचना मिलती है। ऐसा प्रतीत होता है कि सिन्धुराज को पराजित हो जाने के बाद युद्धभूमि से भागकर अपनी जान बचानी पड़ी। किन्तु इस असफलता के बावजूद वह एक योग्य शासक था जिसने अपने भाई मुंज के काल में लुप्त हुई परमार वंश की प्रतिष्ठा को पुनः स्थापित किया। उसकी मृत्यु 1000 ई० के लगभग हुई।

11.3.4 भोज

इन्द्ररथ, सिन्धुराज के पश्चात् उसका पुत्र भोज परमार वंश का शासक हुआ। यह इस वंश का सर्वाधिक महत्वपूर्ण शासक था जिसके समय में राजनीतिक और सांस्कृतिक दोनों ही दृष्टियों से परमार राज्य की अभूतपूर्व

उन्नति हुई। भोज के शासन काल की घटनाओं की सूचना देने वाले आठ अभिलेख मिलते हैं जो 1011 ई० से 1046 ई० तक के हैं। उदयपुर प्रशारित से हम उनकी राजनैतिक उपलब्धियों का ज्ञान प्राप्त करते हैं। इसके अनुसार उसने 'चेदिश्वर, तोग्गल, राजा भीम, कर्नाट, लाट और गुर्जर, के राजाओं तथा तुर्की को पराजित किया।

उसका सर्वप्रथम संघर्ष कल्याणी के चालुक्यों के साथ हुआ। प्रारम्भ में उसे कुछ सफलता मिली तथा गोदावरी के आस–पास का क्षेत्र उसने जीत लिया। इस युद्ध में त्रिपुरी के कलचुरी नरेश गांगेयदेव विक्रमादित्य तथा चोलनरेश राजेन्द्र से भोज को सहायता प्राप्त हुई थी। कल्वन लेख, जो भोज के सामन्त यशोवर्मा का है. से सूचित होता है कि उसने कर्नाटक, लाट तथा कोंकण को जीता था। ऐसा प्रतीत होता है कि उसे कर्नाटक से होकर ही कोंकण को जीता था जिसमें चालुक्य साम्राज्य के उत्तर का गोदावरी का समीपवर्ती कुछ भाग उसके अधिकार में आ गया था। उसके लेखों से इसकी सूचना मिलती है। बेलगाँव लेख में बताया गया है कि वह 'भोजरूप कमल के लिए चन्द्र के समान था। मीराज लेख में पता चलता है कि उसने कोकण नरेश की समस्त सम्पति छीन लिया तथा कोल्हापुर में सैनिक शिविर लगाकर उत्तर भारत की विजय के निमित योजनाएं तैयार किया था। परन्तु चालुक्य नरेश जयसिंह द्वितीय ने उसे हरा दिया। भोजने लाट के शासक कीर्तिराज के ऊपर आक्रमण किया। वह पराजित हुआ तथा आत्मसमर्पण करने को विवश हुआ भोज के सामन्त यशोवर्मा का कल्वन से प्राप्त लेख लाट प्रदेश पर उसके अधिकार की पुष्टि करता है। ऐसा लगता है कि कीर्तिवर्मा को हटाकर भोज ने यशोवर्मा को लाट का शासक बनाया था। बताया गया है कि वह भोज की ओर से नासिक में 1500 ग्रामों पर शासन कर रहा था। लाट को जीतने के बाद उसने कोंकण प्रदेश की विजय की जहाँ शिलाहार वंश का शासन था। किन्तु कोंकण पर उसकी विजय स्थायी नहीं हुई तथा शीघ्र ही चालुक्य नरेश जयसिंह द्वितीय ने वहाँ अपना अधिकार कर लिया। भोज ने उड़ीसा की भी विजय की जहाँ का शासक इन्द्ररथ था। उसकी राजधानी आदिनगर में थी। इन्द्ररथ का उल्लेख चोल शासक राजेन्द्र के तिरुमले लेखों में भी मिलता है। कुछ विद्वानों के अनुसार उसी के सहयोग से भोज ने इन्द्ररथ को जीता होगा। उदयपुर तथा कल्वन लेखों से सूचना मिलती है कि भोज ने चेदिवंश के राजा को जीता था। यह पराजित नरेश गांगेयदेव रहा होगा जो भोज का समकालीन था। पहले गांगेयदेव तथा भोज के बीच मैत्रीपूर्ण संबंध थे। ऐसा प्रतीत होता है कि प्रतिहार क्षेत्रों पर अधिकार को लेकर दोनों में अनबन हो गई तथा भोज ने उसे पराजित

कर खुशियाँ मनायी। उदयपुर लेख से पता चलता है कि उसने तोग्गल तथा तुरुष्क को जीता था। कुछ विद्वान् इसका तात्पर्य मुसलमानों की विजय से लेते हुए प्रतिपादित करते हैं कि भोज ने महमूद गजनवी के किसी सरदार को युद्ध में हराया था। लेकिन यह निष्कर्ष संदिग्ध है। हूणों के विरुद्ध भी उसे सफलता प्राप्त हुई।

जिस समय भोज मालवा में अपने साम्राज्य का विस्तार कर रहा था. उसी समय बुन्देलखण्ड में चन्देल भी अपनी सत्ता सुदृढ़ करने में लगे हुए थे। भोज का समकालीन चन्देल सम्राट विद्याधर उससे बढ़कर महत्वाकांक्षी एवं पराक्रमी था। ग्वालियर तथा दूवकुण्ड में उसके कछवाहा वंशी सामन्त शासन करते थे। ऐसी स्थिति में दोनों के बीच संघर्ष अनिवार्य हो गया। ऐसा प्रतीत होता है कि भोज विद्याधर की बढ़ती हुई शक्ति के आगे मजबूर हो गया तथा उसके सामन्तों से उसे पराजित भी होना पड़ा। चन्देल वंश के एक लेख में कहा गया है कि ''कलचुरी चन्द्र तथा भोज विद्याधर की गुरु के समान पूजा करते थे।''

भोज की अतिशय महत्वाकांक्षा एवं युद्ध प्रियता ही अंततः उसके पतन का कारण सिद्ध हुई। ऐसा ज्ञात होता है कि अपने जीवन के अन्तिम दिनों में भोज अपने साम्राज्य की रक्षा नहीं कर सका तथा उसे भारी असफलताओं का सामना करना पड़ा। सर्वप्रथम चालुक्य नरेश सोमेश्वर द्वितीय ने भी उसकी राजधानी धारा पर आक्रमण किया। भोज पराजित हुआ तथा भाग खड़ा हुआ। चालुक्यों ने उनकी राजधानी धारा को खूब लूटा। आक्रमणकारियों ने धारा नगरी को जला दिया। सोमेश्वर की इस विजय की चर्चा नगाई लेख (1058 ई०) में मिलती है। विल्हण कृत विक्रमांकदेवचरित से भी इसकी पुष्टि होती है जिसमें कहा गया है कि भोज ने भाग कर अपनी जीवन रक्षा की। आक्रमणकारियों के लौट जाने के बाद ही वह अपनी राजधानी पर अधिकार कर सका। भोज के शासन काल के अन्त में चालुक्यों तथा चेदियों ने उसके विरुद्ध एक संघ बनाया। इस संघ ने भोज की राजधानी पर आक्रमण किया। इस आक्रमण का नेता कलचुरी नरेश लक्ष्मीकर्ण था। भोज चिन्ता में बीमार पड़ा था तथा अन्ततः उसकी मृत्यु हो गयी। उसके मरते ही कर्ण धारा पर टूट पड़ा तथा लूट–पाट कर प्रचुर सम्पत्ति अपने साथ लेता गया। चालुक्य भीम ने भी दूसरी ओर से धारा नगरी पर आक्रमण कर उसे ध्वस्त किया। इस प्रकार परमार साम्राज्य का अन्त हो गया। भोज का अन्त यद्यपि दुखद रहा तथापि इस बात से इन्कार नहीं किया जा सकता कि वह अपने युग का एक पराक्रमी नरेश था। उसके उत्कर्ष काल में उत्तर तथा दक्षिण की सभी शक्तियों ने उसका लोहा माना था। उसने

परमार सत्ता को चरमोत्कर्ष पर पहुँचा दिया। उदयपुर लेख में उसकी प्रशंसा करते हुए कहा गया है– "पृथु की तुलना करने वाले भोज ने कैलाश से मलय पर्वत तक तथा उदयांचल से अस्तांचल तक की समस्त पृथ्वी पर शासन किया। उसने अपने धनुष बाण से पृथ्वी के समस्त राजाओं को उखाड़ कर उन्हें विभिन्न दिशाओं में बिखेर दिया तथा पृथ्वी का परम प्रीतिदाता बन गया।'' हमें पता चला है कि भोज ने पूर्व में उड़ीसा, पश्चिम में गुजरात और लाट तथा दक्षिण में कोंकण को जीता था। कन्नौज के उत्तर में उसकी सेवायें हिमगिरि तक गई थी। अतः प्रशस्ति का उपर्युक्त विवरण अतिश्योक्ति नहीं कहा जा सकता।

11.4 भोज की सांस्कृतिक उपलब्धियाँ

भारतीय इतिहास में भोज की ख्याति उसकी विद्वता तथा विद्या एवं कला के उदार संरक्षक के रूप में अधिक है। उदयपुर लेख में कहा गया है कि उसने सब कुछ साधा, सम्पन्न किया, दिया और जाना, जो अन्य किसी के द्वारा संभव नहीं था। इससे अधिक कविराज भोज की प्रशंसा क्या हो सकती है। उसने अपनी राजधानी धारा नगर में स्थापित किया तथा उसे विविध प्रकार से अलंकृत करवाया। यह विद्या तथा कला का सुप्रसिद्ध केन्द्र बन गया। यहाँ अनेक महल एवं मंदिर बनवाये गए जिनमें सरस्वती मंदिर सर्वप्रमुख था। वह स्वयं विद्वान् था तथा उसकी उपाधि कविराज की थी। उसने ज्योतिष, काव्य शास्त्र, वास्तु आदि विषयों पर महत्वपूर्ण ग्रन्थों की रचना की तथा धारा के सरस्वती मंदिर में एक प्रसिद्ध संस्कृत विद्यालय की स्थापना करवायी। उसकी राजसभा पंडितों एवं विद्वानों से अलंकृत थी। उसकी राजधानी धारा विद्या तथा विद्वानों का प्रमुख केन्द्र थी। आइने अकबरी के अनुसार उसकी राजसभा में पाँच सौ विद्वान् निवास करते थे। भोज की रचनाओं में सरस्वतीकण्णभरण, श्रृंगारप्रकाश प्राकृत व्याकरण कूर्मशतक श्रृंगारमंजरी, भोजचम्पू युक्तिकल्पतरु, समरांगणसूत्रधार, तत्वप्रकाश, शब्दानुशासन, राजमृगांक आदि विशेष रूप से उल्लेखनीय हैं। ये विविध विषयों से संबंधित है। युक्तिकल्पतरु एवं समरांगणसूत्रधार वास्तुशास्त्र के ग्रन्थ है। इनसे पता चलता है कि भोज की काव्यात्मक प्रतिभा उच्चकोटि की थी। बताया गया है कि वह अच्छी कविताओं पर विद्वानों को पुरस्कार देता था। वह इतना बड़ा दानी था कि उसके नाम से यह अनुश्रुति चल पड़ी कि वह हर कवि को हर श्लोक पर एक लाख मुद्रायें प्रदान करता था।' इससे उसकी दानशीलता सूचित होती है। उसके दरबारी कवियों एवं विद्वानों में भास्करभट्ट दामोदरमिश्र, धनपाल आदि प्रमुख थे। वह विद्वानों को उनकी विद्वता पर प्रसन्न होकर उपाधियाँ भी देता था। उसकी मृत्यु पर पण्डितों को महान् दुःख हुआ था,

तभी तो एक प्रसिद्ध लोकोक्ति के अनुसार उसकी मृत्यु से विद्या और विद्वान दोनों ही निराश्रित हो गए। भोज एक महान निर्माता भी था। भोपाल के दक्षिण–पूर्व में उसने 250 वर्ग मील लम्बी एक झील का निर्माण करवाया था जो आज भी 'भोजसर' नाम से प्रसिद्ध है। यह परमारकालीन अभियांत्रिक कुशलता एवं कारीगरी का अद्‌भुत नमूना प्रस्तुत करता है। धारा में सरस्वती मंदिर के समीप उसने एक विजय स्तम्भ स्थापित किया तथा भोजपुर नामक नगर की स्थापना करवाई। चित्तौड़ में उसने त्रिभुवन नारायण का मंदिर बनवाया तथा मेवाड़ के नागोद क्षेत्र में भूमि दान में दिया। इसके अतिरिक्त उसने अन्य अनेक मंदिरों का भी निर्माण करवाया था। इस प्रकार भोज की प्रतिभा बहमुखी थी। निश्चय वह अपने वंश का सर्वाधिक यशस्वी शासक था। उसका शासन–काल राजनैतिक तथा सांस्कृतिक दोनों ही दृष्टियों से परमार वंश के चरमोत्कर्ष को व्यक्त करता है।

11.5 परमार सत्ता का अन्त

भोज ने 1010 ई० से 1060 ई० तक शासन किया। उसकी मृत्यु के साथ ही परमार वंश के गौरव का भी अन्त हो गया। भोज के उत्तराधिकारी लगभग 1210 ई० तक स्थानीय शासकों की हैसियत से शासन करते रहे परन्तु उनके शासन काल का कोई महत्व नहीं है। भोज का पुत्र जयसिंह प्रथम (1055–1070 ई०) उसके बाद गद्दी पर बैठा। इस समय धारा पर कलचुरी कर्ण तथा चालुक्य भीम प्रथम का अधिकार था। जयसिंह ने कल्याणी नरेश सोमेश्वर प्रथम के पुत्र विक्रमादित्य की सहायता प्राप्त की तथा अपनी राजधानी को शत्रुओं से मुक्त करा लिया। वह सोमेश्वर प्रथम का आश्रित राजा बन गया। किन्तु जब कल्याणी का शासक सोमेश्वर द्वितीय हुआ तो स्थिति बदल गयी। उसने कर्ण तथा कुछ अन्य राजाओं के साथ मिलकर मालवा पर आक्रमण कर दिया। युद्ध में जयसिंह पराजित हुआ तथा मार डाला गया। आक्रमणकारियों ने उसकी राजधानी को लूटने के बाद ध्वस्त कर दिया। तत्पश्चात् उदयादित्य राजा बना। प्रारम्भ में तो उसे कलचुरी कर्ण के विरुद्ध संघर्ष में सफलता नहीं मिली किन्तु बाद में उसने मेवाड़ के गुहिलोत, नाडोल तथा शाकम्भरी के चाहमान वंशों की सहायता प्राप्त कर अपनी स्थिति मजबूत बना ली। इनमें शाकम्भरी के चाहमान नरेश विग्रहराज की सहायता विशेष कारगर सिद्ध हुई तथा उदयादित्य ने कर्ण को पराजित कर अपनी राजधानी को मुक्त करा लिया। तत्पश्चात् उदयादित्य ने कुछ समय तक शान्तिपूर्वक शासन किया तथा अपना समय राजधानी के पुनरुद्धार में लगाया। उसने भिलसा के पास उदयपुर नामक नगर बसाया तथा वहाँ नीलकण्ठ के मंदिर का निर्माण करवाया।

उदयादित्य का बड़ा पुत्र लक्ष्मदेव उसके बाद राजा बना। नागपुर से उसका लेख मिलता है जिसमें उसकी उपलब्धियों का अतिश्योक्तिपूर्ण विवरण दिया गया है। इसे यथार्थ नहीं माना जा सकता। ऐसा लगता है कि मालवा के समीपवर्ती कुछ क्षेत्रों में उसे सफलता प्राप्त हुई हो। इस समय पालों की स्थिति निर्बल थी जिसका लाभ उठाते हुए लक्ष्मदेव ने बिहार तथा बंगाल में स्थित उनके कुछ प्रदेशों पर आक्रमण किया होगा। इसी प्रकार उसने कलचुरी नरेश यशःकर्ण को भी युद्ध में पराजित किया था। किन्तु मुसलमानों के विरुद्ध उसे सफलता नहीं मिली तथा महमूद ने उज्जैन पर आक्रमण कर वहाँ अधिकार जमा लिया। लक्ष्मदेव के बाद उसका छोटा भाई नरवर्मा (1094–1113 ई०) राजा बना। वह एक निर्बल शासक था जो अपने साम्राज्य को सुरक्षित नहीं रख पाया। किन्तु सांस्कृतिक दृष्टि से उसका शासन काल उल्लेखनीय माना जा सकता है। वह स्वयं एक विद्वान तथा विद्वानों का आश्रयदाता था। निर्माण कार्यों में भी उसने रुचि ली तथा मंदिर एवं तालाब बनवाये। उसने 'निर्वाण नारायण' की उपाधि धारण की थी। राजनीतिक मोर्चे पर उसे असफलता मिली। पूर्व में चन्देल शासक मंदनवर्मा ने भिलसा क्षेत्र के परमार राज्य पर अधिकार कर लिया। उत्तर पश्चिम में चाहमान शासक अजयराज तथा उसके पुत्र अर्णोराज ने नरवर्मा को हराया। अन्हिलवाड़ के चालुक्य नरेश जयसिंह सिद्धराज ने उसके राज्य पर कई आक्रमण किए जिसमें अन्ततः नरवर्मा पराजित हो गया।

नरवर्मा का उत्तराधिकारी उसका पुत्र यशोवर्मा (1133–1142 ई०) हुआ उसके समय चालुक्यों के आक्रमण के कारण मालवा की स्थिति काफी खराब हो गई थी। यशोवर्मा अपने साम्राज्य को व्यवस्थित नहीं रख पाया तथा साम्राज्य बिखरता गया। भिलसा क्षेत्र पर चन्देल मदनवर्मा ने अधिकार कर लिया। चालुक्य नरेश जयसिंह सिद्धराज ने नाडोल के चाहमान आशाराज के साथ मिलकर मालवा पर आक्रमण कर दिया। यशोवर्मा बन्दी बना लिया गया, सम्पूर्ण मालवा पर जयसिंह का अधिकार हो गया तथा उसने 'अवन्तिनाथ' की उपाधि धारण की। यशोवर्मा के अन्तिम दिनों के विषय में ज्ञात नहीं है। उसका पुत्र जयवर्मन् जयसिंह के शासन काल के अन्त में मालवा का उद्धार करने में सफल हुआ लेकिन उसका शासन भी अल्पकालिक ही रहा। कल्याणी के चालुक्य शासक जगदेकमल्ल एवं होयसल शासक नरसिंहवर्मन् प्रथम ने मालवा पर आक्रमण कर उसकी शक्ति को नष्ट कर दिया तथा अपनी ओर से बल्लाल को वहां का राजा बना दिया। किन्तु 1143 ई० के तुरन्त बाद जयसिंह के उत्तराधिकारी कुमारपाल ने बल्लाल को अपदस्थ कर भिलसा तक का सम्पूर्ण मालवा का क्षेत्र अपने साम्राज्य में मिला लिया। लगभग बीस वर्षो तक मालवा

गुजरात राज्य का अंग बना रहा। इस बीच वहाँ 'महाकुमार' उपाधिधारी कुछ राजकुमार शासन करते थे जो अर्धस्वतंत्र थे। 1175–1195 ई० के बीच विन्ध्यवर्मन, जो परमार जयवर्मन् का पुत्र था, ने चालुक्य मूलराज द्वितीय को हराकर मालवा पर अधिकार करने में सफलता प्राप्त की लेकिन वह उसके पुराने गौरव को कभी वापस नहीं ला सका। उसका पुत्र सुभटवर्मन् शक्तिशाली राजा था जिसने गुजरात पर आक्रमण कर चालुक्यों के लाट के सामन्त सिंह को अपनी अधीनता मानने के लिए विवश कर दिया। डभोई तथा काम्बे में कई जैन मंदिरों को उसने लूटा. अन्हिलवाड़ को आक्रान्त किया तथा सेना के साथ सोमनाथ तक बढ़ गया। लेकिन भीम के मंत्री लवणप्रसाद ने उसे वापस लौटने को मजबूर किया तथा यादव जैतुगी ने भी सुभटवर्मन् को पराजित कर दिया। उसके बाद उसका पुत्र अर्जुनवर्मन् मालवा का राजा बना। उसने गुजरात के जयसिंह को पराजित कर उसकी कन्या से विवाह किया। किन्तु यादव वंशी सिंघन ने उसे हरा दिया। अर्जुनवर्मन् विद्वान् तथा विद्या प्रेमी था। मदन, आशाराम जैसे विद्वान उसकी सभा में रहते थे।

अर्जुनवर्मन् के बाद क्रमशः देवपाल, जैतुगिदेव, जयवर्मन् द्वितीय तथा कई छोटे–छोटे राज्य हुए जिनके शासन काल की कोई उपलब्धि नहीं है। क्रमशः परमार वंश तथा उसके गौरव का नाश हो गया। 1305 ई० में अलाउद्दीन खिलजी ने मालवा को जीतकर वहाँ मुस्लिम सत्ता स्थापित कर दी।

11.6 सारांश

परमार सिन्धुराज के दरबारी कवि पद्मगुप्त परिमल ने अपनी पुस्तक 'नवसाहसांकचरित' में एक कथा का वर्णन किया है। ऋषि वशिष्ठ ने ऋषि विश्वामित्र के विरुद्ध युद्ध में सहायता प्राप्त करने के लिये आबु पर्वत पर यज्ञ किया। उस यज्ञ के अग्निकुंड से एक पुरुष प्रकट हुआ। दरअसल ये पुरुष वे थे जिन्होंने ऋषि वशिष्ठ को साथ देने का प्रण लिया जिनके पूर्वज अग्निवंश के क्षत्रिय थे। इस पुरुष का नाम प्रमार रखा गया, जो इस वंश का संस्थापक हुआ और उसी के नाम पर वंश का नाम पड़ा। परमार के अभिलेखों में बाद को भी इस कहानी का पुनरुल्लेख हुआ है। इससे कुछ लोग यों समझने लगे कि परमारों का मूल निवासस्थान आबू पर्वत पर था, जहाँ से वे पड़ोस के देशों में जा जाकर बस गए। किंतु इस वंश के एक प्राचीन अभिलेख से यह पता चलता है कि परमार दक्षिण के राष्ट्रकूटों के उत्तराधिकारी थे।

परमार परिवार की मुख्य शाखा आठवीं शताब्दी के प्रारंभिक काल से मालवा में धारा को राजधानी बनाकर राज्य करती थी और इसका प्राचीनतम

ज्ञात सदस्य उपेन्द्र कृष्णराज था। इस वंश के प्रारंभिक शासक दक्षिण के राष्ट्रकूटों के सामन्त थे। राष्ट्रकूटों के पतन के बाद सिंपाक द्वितीय के नेतृत्व में यह परिवार स्वतंत्र हो गया। सिपाक द्वितीय का पुत्र वाक्पति मुंज, जो १०वीं शताब्दी के अंतिम चतुर्थांश में हुआ, अपने परिवार की महानता का संस्थापक था। उसने केवल अपनी स्थिति ही सुदृढ़ नहीं की वरन् दक्षिण राजपूताना का भी एक भाग जीत लिया और वहाँ महत्वपूर्ण पदों पर अपने वंश के राजकुमारों को नियुक्त कर दिया। उसका भतीजा भोज, जिसने सन् 1000 से 1055 तक राज्य किया और जो सर्वतोमुखी प्रतिभा का शासक था, मध्युगीन सर्वश्रेष्ठ शासकों में गिना जाता था। भोज ने अपने समय के चौलुभ्य, चंदेल, कालचूरी और चालुक्य इत्यादि सभी शक्तिशाली राज्यों से युद्ध किया। बहुत बड़ी संख्या में विद्वान् इसके दरबार में दयापूर्ण आश्रय पाकर रहते थे। वह स्वयं भी महान लेखक था और इसने विभिन्न विषयों पर अनेक पुस्तकें लिखी थीं, ऐसा माना जाता है। उसने अपने राज्य के विभिन्न भागों में बड़ी संख्या में मंदिर बनवाए।

राजा भोज की मृत्यु के पश्चात चालुक्य कर्ण और कर्णाटों ने मालव को जीत लिया, किंतु भोज के एक संबंधी उदयादित्य ने शत्रुओं को बुरी तरह पराजित करके अपना प्रभुत्व पुनः स्थापित करने में सफलता प्राप्त की। उदयादित्य ने मध्यप्रदेश के उदयपुर नामक स्थान में नीलकंठ शिव के विशाल मंदिर का निर्माण कराया था। उदयादित्य का पुत्र जगद्देव बहुत प्रतिष्ठित सम्राट् था। वह मृत्यु के बहुत काल बाद तक पश्चिमी भारत के लोगों में अपनी गौरवपूर्ण उपलब्धियों के लिय प्रसिद्ध रहा। मालव में परमार वंश के अंत अलाउद्दीन खिलजी द्वारा 1305 ई. में कर दिया गया।

परमार वंश की एक शाखा आबू पर्वत पर चंद्रावती को राजधानी बनाकर, 10वीं शताब्दी के अंत में 13वीं शताब्दी के अंत तक राज्य करती रही। इस वंश की दूसरी शाखा वगद (वर्तमान बाँसवाड़ा) और डूंगरपुर रियासतों में उद्भुतुक बाँसवाड़ा राज्य में वर्त्तमान अर्थुना की राजधानी पर 10वीं शताब्दी के मध्यकाल से 12वीं शताब्दी के मध्यकाल तक शासन करती रही। वंश की दो शाखाएँ और ज्ञात हैं। एक ने जालोर में, दूसरी ने बिनमाल में 10वीं शताब्दी के अंतिम भाग से 12वीं शताब्दी के अंतिम भाग तक राज्य किया।

11.10 अभ्यासार्थ प्रश्न

1. परमार वंश के इतिहास के विभिन्न स्रोतों की व्याख्या कीजिये।

.....

2. परमार वंश के प्रारम्भिक इतिहास का वर्णन कीजिये।

.....

3. परमार वंशी शासक भोज की सांस्कृतिक उपलब्धियों का वर्णन कीजिये।

.....

4. परमार वंश के पतन के मुख्य कारणों का विस्तार पूर्वक वर्णन कीजिये।

.....

11.11 संदर्भ ग्रन्थ

मित्तल,अमरचन्द : परमार अभिलेख, लालभाई दलपतभाई भारतीय संस्कृति विद्यामंदिर पृ0 108।

अग्रवाल, कृष्ण चन्द्र : पृथ्वीराज रासों के पात्रों की ऐतिहासिकता।

गांगुली, डी.सी. : हिस्ट्री ऑफ परमार डायनिस्टी।

प्रसाद, ईश्वरी : मिडिवल इंडिया।

महाजन, वी.डी. : उत्तर भारत का राजनीतिक इतिहास।

मजूमदार, आर.सी. (एड.) : दि क्लासिकल एज।

वैद्य, सी.वी. : हिस्ट्री ऑफ मिडिवल हिन्दू इंडिया।

इकाई 12–चन्देल वंश–स्रोत एवं प्रारम्भिक इतिहास–हर्ष, यशोवर्मा, धंग, गण्ड एवं विद्याधर

इकाई की रूपरेखा

12.0 प्रस्तावना

12.1 उद्देश्य

12.2 इतिहास के स्रोत

12.3 प्रारम्भिक इतिहास

12.4 चन्देल वंश का उदय काल

12.4.1 हर्ष

12.4.2 यशोवर्मन

12.4.3 धंग

12.4.4 गण्ड

12.4.5 विद्याधर

12.5 पतन

12.6 सारांश

12.7 अभ्यासार्थ प्रश्न

12.8 संदर्भ ग्रन्थ

12.0 प्रस्तावना

प्रतिहार साम्राज्य के पतन के पश्चात् बुन्देलखण्ड के भूभाग पर चन्देल वंश के स्वतंत्र राजनीतिक इतिहास का प्रारम्भ हुआ। बुन्देलखण्ड का प्राचीन नाम जेजाकभुक्ति है। महोबा से प्राप्त एक लेख से पता चलता है कि इस वंश के तीसरे शासक जयशक्ति (जिसका प्राकृत रूप 'जेजा' या 'जेज्जा' मिलता है) ने अपने द्वारा शासित प्रदेश का नामकरण अपने नाम पर 'जेजाभुक्ति' अथवा जेजाकभुक्ति ठीक उसी प्रकार किया जिस प्रकार राजा पृथु के नाम पर पृथ्वी का नामकरण हुआ। कालान्तर में इसी का नाम जुझौती तथा बुन्देलों के नाम पर बुन्देलखण्ड भी पड़ गया। चन्देल शासन में यह भूभाग राजनैतिक एवं सांस्कृतिक दोनों दृष्टियों से उत्कर्ष की चोटी पर पहुंच गया।

जेजाकभूक्ति के चन्देल के नाम से विख्यात एक हिन्दू चन्देल राजपूत साम्राज्य था, जिन्होंने 09वीं से 15वीं शताब्दी तक भारत के पूर्वी, मध्य इत्यादि भागो पर शासन किया। उनके द्वारा शासित क्षेत्र को जेजाकभुक्ति के नाम से जाना जाता था। वे राजपूतों के हैहय–चन्देल कबीले के सबसे प्रमुख शासक परिवार थे। इस राजवंश की स्थापना हैहयवंशी चन्देल राजा चन्द्रवर्मन चन्देल ने की थी। चन्देल राजवंश की राजधानी महोबा तथा कालिंजर (जेजाकभूक्ति, उत्तर प्रदेश में) थी।

610 ईस्वी के अंत तक चेदी–चन्देल राजवंश पुष्यभूति राजवंश और कलचुरि राजवंश के सामंत राजा थे। 810 ईस्वी में चेदी–चन्देलो के राजा चन्द्रवर्मन ने प्रतिहार राजवंश को परास्त कर स्वतंत्र हुआ तथा नए राजवंश की नींव रखी। चन्देल साम्राज्य जहां भी फैलता वो जेजाकभुक्ति के नाम से जाना जाता था। जेजाभुक्ति चन्देल राज्य के प्रथम राजा जेजा या जयशक्ति के नाम पे पढ़ा इसी कारण इन्हें जेजाकभुक्ति के चन्देल कहा जाता है। चन्देल सम्राट ना ही सफल विजेता और कुशल शासक थे अपितु वास्तुकला तथा धर्म की और भी उनका रुझाव ज्यादा था। चन्देलो ने गजनवी, चौहानों, गोरी, दिल्ली सल्तनत, सूरी साम्राज्य इत्यादि अक्रमणकारियो का सफलता पूर्वक प्रतिरोध किया तथा 1545 ईस्वी तक राज्य किया। इन अक्रमणों से चन्देल राज्य कमजोर हो गया। 1545 के अंत में जो बचा हुआ चन्देल राज्य यानी जेजाकभुक्ति बुंदेलो के पास गया वो बुंदेलखंड हो गया। चन्देल वंश के शासकों की राजधानी बुंदेलखंड में थी, जिसके कारण बुंदेलखंड के इतिहास में विशेष योगदान रहा है। 1203 में चन्देल साम्राज्य के पतन के बाद चन्देलों ने लगभग चार शताब्दियों 1205–1545 तक कालिंजर से चंबल से विंध्य के छोर तक शासन किया।

12.1 उद्देश्य

इस इकाई का मुख्य उद्देश्य आपको चन्देल वंश के इतिहास, स्रोत तथा उसके शासकों के शासनकाल एवं राज्य विस्तार से संबंधित जानकारी प्रदान करना है।

12.2 इतिहास के स्रोत

चन्देल वंश के इतिहास के सर्वाधिक प्रामाणिक साधन उसके शासकों द्वारा उत्कीर्ण करवाये गए बहुसंख्यक अभिलेख हैं। इनका विवरण इस प्रकार है–

1. खजुराहो (छतरपुर, म० प्र०) के विक्रम संवत 1011 (954 ई०) तथा विक्रम

संवत 1059 अर्थात् 1002 ई० के लेख।

2. नन्यौरा (हमीरपुर, उ० प्र०) से प्राप्त विक्रम संवत 1055 अर्थात् 998 ई० का लेख।

3. मऊप्रस्तर अभिलेख।

4. छतरपुर का लेख।

5. महोबा के किले की दीवार पर अंकित विक्रम संवत 1240 अर्थात् 1183 ई० का लेख।

उपर्युक्त लेखों में खजुराहो से प्राप्त हुए लेखों का सर्वाधिक महत्व है। ये दोनों चन्देल शासक धंग देव के समय के हैं। इनमें चन्देल शासकों की वंशावली तथा यशोवर्मा और धंग की उपलब्धियों का विस्तारपूर्वक वर्णन किया गया है। इस प्रकार ये लेख चन्देल वंश इतिहास का अध्ययन करने के लिए हमारे प्रमुख साधन है। चन्देल राजाओं ने ही सर्वप्रथम देवनागरी लिपि का प्रयोग अपने लेखों में करवाया था।

चन्देल वंश के इतिहास पर प्रकाश डालने वाले ग्रन्थों में कृष्णमिश्र के प्रबोध–चन्द्रोदय, राजशेखर का प्रबन्धकोश, चन्दबरदाई कृत पृथ्वीराज रासो तथा परमाल रासो, जगनिक कृत आल्हाखण्ड आदि महत्त्वपूर्ण हैं। प्रबोधचन्द्रोदय से चन्देल तथा चेदि–राजाओं के संघर्ष का ज्ञान होता है। प्रबन्धकोश के मदनवर्म–प्रबन्ध से चन्देल नरेश मदनवर्मा के विषय में सूचना मिलती है। चन्दबरदाई तथा जगनिक के ग्रन्थ चाहमान शासक पृथ्वीराज तृतीय तथा चन्देल शासक परमर्दि के बीच संघर्ष आदि का रोचक विवरण प्रस्तुत करते हैं। ये ग्रन्थ तत्कालीन संस्कृति पर भी प्रकाश डालते हैं।

मुस्लिम लेखकों के विवरण भी चन्देल इतिहास के ज्ञान में सहायता देते हैं। इनमें इब्न–उल–अतहर, निजामुद्दीन हसन निजामी आदि के नाम उल्लेखनीय हैं। अतहर तथा निजामुद्दीन महमूद गजनवी तथा चन्देल शासक विद्याधर के बीच होने वाले संघर्ष का विवरण देते हैं तथा विद्याधर की शक्ति की प्रशंसा करते हैं। हसन निजामी के विवरण से कुतुबुद्दीन द्वारा चन्देल राज्य पर आक्रमण तथा उसे जीते जाने का वृत्तान्त ज्ञात होता है।

चन्देल शासकों द्वारा बनवाये गए अनेक मंदिर तथा मूर्तियाँ खजुराहो से मिलती हैं। इनसे जहाँ एक और उनके धार्मिक विचारों तथा विश्वासों का पता लगता है वहीं दूसरी ओर कला एवं स्थापत्य का ज्ञान करने में भी सहायता मिलती है।

12.3 प्रारम्भिक इतिहास

चन्देलों की उत्पत्ति अन्धकारपूर्ण है। लेखों में उन्हें चन्द्रात्रेय ऋषि का वंशज कहा गया है जो अत्रि के पुत्र थे। चन्देल अपना संबंध चन्द्रमा से जोड़ते हैं जो इस बात का सूचक है कि वे चन्द्रवंशी क्षत्रिय रहे होंगे। चन्देल वंश की स्थापना 831 ई० के लगभग नन्नुक नामक व्यक्ति ने की थी। उसकी उपाधि 'नृप' तथा 'महीपति' की मिलती है। इससे सूचित होता है कि वह स्वतंत्र शासक न होकर कोई सामन्त सरदार रहा होगा। इस समय की सार्वभौम सत्ता प्रतिहारों की थी। अतः नन्नुक ने उन्हीं के अधीन अपना शासन प्रारम्भ किया।

नन्नुक के बाद क्रमशः वाक्पति, जयशक्ति, विजयशक्ति तथा राहिल के नाम मिलते हैं। इनमें से प्रत्येक ने एक दूसरे के बाद सामन्त रूप में ही शासन किया तथा यथासंभव अपनी शक्ति का विस्तार करते रहे। प्रारम्भिक राजाओं में राहिल कुछ शक्तिशाली था। खजुराहों लेख में उसकी शक्ति एवं वीरता की प्रशंसा की गई है। वह एक निर्माता भी था जिससे मंदिर एवं तालाब बनवाये थे। इनमें अजयगढ़ का मंदिर तथा महोबा के समीप राहिल सागर तालाब विशेष रूप से उल्लेखनीय है।

12.4 चन्देल वंश का उदय काल

आरम्भिक चंदेल शासक प्रतिहारों की अधीनता स्वीकार करते थे, लगभग 900 ई0 तक चन्देल शासक प्रतिहारों की अधीनता में शासन करते हुए धीरे–धीरे अपनी शक्ति का विस्तार करते रहे। 900 ई0 के बाद के काल को हम चन्देल वंश का उत्थान काल कह सकते हैं।

12.4.1 हर्ष

लगभग 900 ई० तक चन्देलों ने प्रतिहारों की अधीनता में शासन किया तथा धीरे–धीरे अपनी शक्ति का विस्तार करते रहे। राहिल का पुत्र तथा उत्तराधिकारी हर्ष (900–925 ई०) एक शक्तिशाली शासक था जिसके समय में चन्देलों ने प्रतिहारों की दासता से मुक्त हुए। खजुराहो लेख में उसे 'परमभट्टारक' कहा गया हैं जो उसकी स्वतन्त्र स्थिति का द्योतक है। नन्यौरा पत्र से पता चलता है कि हर्ष की भयानक सेना ने चारोंओर आतंक फैला दिया तथा अनेक राजाओं को करद बना लिया। यह भी कहा गया है कि अपने शत्रुओं को पराजित करने के उपरान्त हर्ष ने सम्पूर्ण पृथ्वी की रक्षा की। इन

विवरणों से स्पष्ट होता है कि हर्ष अपने पूर्वगामियों की अपेक्षा अधिक शक्तिशाली था। खजुराहो लेख के अनुसार उसने प्रतिहार शासक क्षितिपाल (महीपाल) को पुनः कन्नौज की गद्दी पर बैठाया। ऐसा प्रतीत होता है कि महीपाल को राष्ट्रकूट नरेश इन्द्र तृतीय ने परास्त कर कन्नौज की गद्दी से उतार दिया था परन्तु चन्देल हर्ष की सहायता पाकर वह पुनः कन्नौज जीतने में सफल हुआ। इससे यह सूचित होता है कि प्रतिहार साम्राज्य उत्तरोत्तर निर्बल हो रहा था, तथा उसके स्थान पर चन्देल शक्ति उभर रही थी। यद्यपि हर्ष के कुछ समय बाद तक भी चन्देल प्रतिहारों के सामन्त बने रहे तथापि उनकी अधीनता नाममात्र की ही थी। हर्ष ने अपने समकालीन दो राजवंशों चौहान तथा कलचुरी के साथ वैवाहिक संबंध स्थापित कर अपनी स्थिति सुदृढ़ कर ली। उसने अपने वंश की कन्या नट्टादेवी का विवाह कलचुरी नरेश कोक्कल के साथ तथा स्वयं अपना विवाह चाहमान वंश की कन्या कंचुका के साथ किया था। कलचुरी राष्ट्रकूटों के भी सम्बन्धी थे और कोक्कल ने अपनी कन्या का विवाह राष्ट्रकूट नरेश कृष्ण द्वितीय के साथ किया था। इस प्रकार हर्ष को कलचुरियों के साथ–साथ राष्ट्रकूटों का भी समर्थन प्राप्त हो गया। अपने प्रतिहार अधिपति को खुली चुनौती दिए बगैर ही हर्ष ने धीरे–धीरे अपनी आन्तरिक एवं बाह्य शक्ति काफी मजबूत बना लिया। वह वैष्णव धर्मावलम्बी था।

12.4.2 यशोवर्मन

हर्ष के बाद उसका पुत्र यशोवर्मन (लक्ष्मणवर्मन) 930 ई० में गद्दी पर बैठा। वह एक साम्राज्यवादी शासक था। सौभाग्यवश तत्कालीन राजनीतिक परिस्थितियां उसकी महत्वाकांक्षाओं की पूर्ति के लिए सर्वथा अनुकूल थी। राष्ट्रकूटों के आक्रमण ने प्रतिहार साम्राज्य को जर्जर बना दिया था। गोविन्द चतुर्थ के समय में आन्तरिक कलह के कारण राष्ट्रकूटों की स्थिति भी दयनीय हो गई तथा वे उत्तर की राजनीति में सबल भूमिका नही निभा सकते थे। ये स्थितियाँ यशोवर्मन के लिए लाभकारी सिद्ध हुई तथा वह अपनी शक्ति एवं साम्राज्य को बढ़ाने में तत्पर हुआ। सर्वप्रथम उसने कन्नौज पर आक्रमण कर प्रतिहार साम्राज्य को समाप्तप्राय कर दिया। इसके बाद उसने राष्ट्रकूटों से कालंजर का प्रसिद्ध दुर्ग जीत लिया। खजुराहो के लेख में यशोवर्मन् को गौड़, खस, कोसल, कश्मीर, मालव, चेदि, कुरु, गुर्जर आदि का विजेता बताया गया है। उसके अनुसार वह गौड़रूपी क्रीडालता के लिए तलवार था, खसों की सेनाओं का सामना किया, कोशलों को लूटा, कश्मीर के शासक का नाश किया, मिथिला नरेश को शिथिल किया, मालवों के लिए काल के समान था, उसके सामने चेदि का शासक काँपने लगा, वह कुरूपी वृक्ष के लिए औधी के समान

था तथा गुर्जरों को जलाने वाला था।' आगे कहा गया है कि 'भय से रहित होकर उसने उस चेदि नरेश को युद्ध में बुरी तरह पराजित कर दिया जिसके पास अगणित सेना थी। क्षेत्रों की विजय के समय उसके सैनिक धीरे–धीरे उन बर्फीली चोटियों पर चढ़ने में सफल हुए जहाँ उमा ने स्वर्ग के प्रत्येक वृक्ष से लाकर फूल एकत्र कर रखा था तथा जहाँ गंगा की तेज धाराओं की ध्वनि से उसकी अश्व सेना भय के कारण अव्यवस्थित हो गई थी। उसने शिव के निवास स्थल कालंजर पर्वत को आसानी से जीत लिया जो इतना ऊँचा है कि दोपहर में सूर्य की गति को बाधित कर देता है। उसने कलिन्द तथा जह की पुत्रियों यमुना तथा गंगा को बारी–बारी से अपना क्रीड़ा–सरोवर बनाया तथा उनके तटों पर शिविर स्थापित किया, किसी भी शत्रु द्वारा अनादूत, उसके भयंकर हाथियों के स्नान द्वारा उनका जल मैला कर दिया गया।'

स्पष्टतः यशोवर्मा ने अपना प्रभाव हिमालय से लेकर मालवा तक तथा कश्मीर से लेकर बंगाल तक बढ़ा लिया। यद्यपि यह विवरण अतिरंजित लगता है तथापि इसमें संदेह नहीं कि उसने उत्तर भारत के एक बड़े क्षेत्र को रौंद डाला था। चेदि पर उसकी विजय एक वास्तविकता है। उसका समकालीन चेदि नरेश संभवतः लक्ष्मणराज अथवा उसका पूर्वगामी युवराज प्रथम था जिसकी अगणित सेनाओं को यशोवर्मन् ने भीषण युद्ध में पराजित किया होगा। गौड़नरेश पालवंशी राज्यपाल अथवा उसका पुत्र गोपाल द्वितीय रहा होगा। कश्मीर तथा खस के शासक की पहचान असंदिग्ध रूप से नहीं की जा सकती। मालवा, कोशल तथा कुरु अब भी कन्नौज के गुर्जर शासकों के अधिकार में थे जबकि मिथिला पर बंगाल और बिहार के पालों का अधिकार रहा होगा। ऐसा लगता है कि यशोवर्मन् का अपने समकालीन प्रतिहार अधिपति के साथ भीषण संघर्ष हुआ होगा। किन्तु धंग के खजुराहों लेख (वि० सं० 1011) से पता चलता है कि यद्यपि चन्देल स्वतंत्र हो गए थे तथापि वे नांममात्र के लिए हो गुर्जर–प्रतिहारों की अधिसत्ता स्वीकार करते थे।

इस प्रकार यशोवर्मन् एक पराक्रमी राजा था। एक सामन्त स्थिति से ऊपर उठकर अपनी उपलब्धियों के द्वारा उसने सार्वभौम पद को प्राप्त किया। विजेता होने के साथ–साथ वह एक महान् निर्माता भी था जिसने खजुराहो के प्रसिद्ध विष्णु मंदिर का निर्माण करवाया। इस मंदिर में उसने बैकुण्ठ की मूर्ति स्थापित करायी थी जिसे उसने प्रतिहार शासक देवपाल से प्राप्त किया था। कनिंघम ने इसकी पहचान खुजराहों स्थित 'चतुर्भुज' नाम से विख्यात मंदिर से की है। इसके अतिरिक्त यशोवर्मन ने एक विशाल जलाशय (तडागार्णव) का भी निर्माण करवाया था।

इस प्रकार उसकी प्रतिभा बहुमुखी थी। प्रजा उसके शासन से अत्यन्त संतुष्ट एवं प्रसन्न थी। अपने राज्य में उसने निर्धनों, निर्बलों एवं दीन दुःखियों की भरपूर सहायता की तथा शास्त्रों के आदेशानुसार शासन किया।

12.4.3 धंग

यशोवर्मन् ने 950 ई० तक शासन किया। उसके बाद उसका पुत्र और उत्तराधिकारी धंग (950–1102 ई०) चन्देलवंश का राजा बना। वह पुष्पादेवी से उत्पन्न हुआ था। दुधई पाषाण लेख से पता चलता है कि कृष्ण नामक धंग का कोई छोटा भाई भी था। चन्देलों की वास्तविक स्वाधीनता का जन्मदाता यही था। उसके शासन काल की घटनाओं के विषय में हमें उसके खजुराहों के लेख से विस्तृत जानकारी मिलती है। वहाँ स्थित लक्ष्मणनाथ मंदिर से प्राप्त लेख धंग की उपलब्धियों का विवरण देता है जिसके अनुसार 'उसने अपनी शक्ति एवं बाहुबल से खेल–खेल में कालंजर तक, मालव नदी के किनारे भास्वत तक, वहाँ से कालिन्दी नदी के किनारे तक वहाँ से चेदि राज्य की सीमा तक तथा वहाँ से गोपगिरि तक का क्षेत्र जीत लिया था।'

जैसा कि पहले देखा जा चुका है, इसमें से अधिकांश भाग की विजय धंग के पिता यशोवर्मा के समय में ही सम्पन्न की जा चुकी थी। धंग ने पुनः उन क्षेत्रों में अपनी पकड़ मजबूत की होगी। धंग के पूर्व चन्देल नरेश नाममात्र की प्रतिहारों की अधीनता स्वीकार करते थे। उसने कालिंजर पर अपना अधिकार सुदृढ़ किया तथा उसे अपनी राजधानी बनाई। तत्पश्चात् उसने ग्वालियर, बनारस तथा प्रयाग तक के क्षेत्र को जीतकर अपने अधिकार में कर लिया। ग्वालियर की विजय धंग की सबसे महत्वपूर्ण सफलता थी। ऐसा लगता है कि इसी की विजय के बाद चन्देलों ने प्रतिहारों की अधीनता से अपने को मुक्त कर दिया था। खजुराहो लेख के अन्त में अंकित है कि 'यशस्वी विनायक पालदेव के पृथ्वी का पालन करते समय कोई भी शत्रु उस पर अधिकार नहीं कर पाया तथा सभी का उन्मूलन कर दिया गया था। इससे स्पष्ट है कि 954–55 ई० तक चन्देल, कन्नौज की संप्रभुता को नाममात्र के लिए ही स्वीकार कर रहे थे। किन्तु इस तिथि के बाद के किसी चन्देल लेख में प्रतिहारों का उल्लेख नहीं किया गया है। इससे सूचित होता है कि इसके (954–55 ई०) बाद धंग कन्नौज का वास्तविक एवं वैधानिक सम्राट बन गया था। 1036 ई० के सासु–बहु लेख में वज्रदमन नामक एक कछवाहा शासक का उल्लेख मिलता है जिसके विषय में यह कहा गया है कि उसने कन्नौज (गाधिनगर) को जीता था। वह धंग का समकालीन था कच्छपघात अथवा कछवाहा वंश के लोग पहले

प्रतिहारों की अधीनता में ग्वालियर में शासन करते थे। वज्रदमन् ने पहले तो प्रतिहारों से ग्वालियर को जीता किन्तु बाद में उसे चन्देलों की अधीनता स्वीकार करनी पड़ी। इसके बाद कई वर्षों तक कछवाहे चन्देलों के सामन्त बने रहे। विद्याधर के समय में उनका शासक अर्जुन चन्देलों का सामन्त था। विद्याधर के पश्चात् उन्होंने मालवा के परमार वंश की अधीनता स्वीकार कर ली। आर० एस० त्रिपाठी का विचार है कि यह वज्रदमन धंग का सामन्त था तथा उसी रूप में उसने कन्नौज की विजय प्राप्त की थी।

खजुराहो शिलालेख में दावा किया गया है कि कौसल, क्रथ (बरार), कुंतल और सिंहल के शासक धंग की अधीनता स्वीकार करते थे। यह भी कहा गया है कि आंध्र, अंग, कांची और राहा के राजाओं की पत्नियाँ युद्धों में उसकी सफलता के परिणामस्वरूप उसकी जेलों में रहती थीं। मऊ शिलालेख के अनुसार उसने कन्नौज (कान्यकुब्ज) के राजा को पराजित कर सम्राट पद प्राप्त किया था।

इन प्रशंसात्मक अतिशयोक्तियों के बावजूद ऐसा लगता है कि धंग ने व्यापक सैन्य अभियान किया था। कलंजरा के दुर्ग पर अधिकार करके उसने 954 ई. के लगभग अपनी स्वाधीनता घोषित की थी। उसने कालिंजर को अपनी राजधानी बनाकर स्वयं कालंजराधिपति की उपाधि धाटण की थी। किंतु ऐसा लगता है कि बाद में धंग ने अपनी राजधानी कालिंजर से खजुराहो स्थानांतरित कर दिया, क्योंकि धंग तथा चंदेल वंश के अन्य राजाओं के प्राचीनतम अभिलेख कालिंजर से नहीं, खजुराहो से मिलते हैं।

ग्वालियर की विजय धंग की सबसे महत्त्वपूर्ण सफलता थी। सास–बहू मंदिर शिलालेख के अनुसार गोपाद्री दुर्ग (ग्वालियर किला) कच्छपघाटों के अधिकार में था। कच्छपघाट संभवत इस समय चंदेलों के सामंत थे, और उन्होंने प्रतिहारों के विरुद्ध चंदेलों की मदद की थी। नन्यौरा ताम्र अनुदानपत्र लेख से सकेत मिलता है कि वाराणसी (काशिका) क्षेत्र भी धंग के नियंत्रण में था।

पूर्वी भारत में धगदेव को अंग और राहा में सैनिक सफलता मिली थी। धंग द्वारा पराजित अंग का राजा कोई पाल रहा होगा, क्योंकि कंबोजों और चंद्रों की स्वतंत्रता की घोषणा के बाद पाल साम्राज्य का पतन हो रहा था। यहां के शासक की पहचान पाल साम्राज्य से कंबोज हड़पने वाले राजा से की जा सकती है। किंतु इस अभियान से धंग को कोई भौगोलिक लाभ नहीं हुआ

दक्षिण में आंध्र, कांची, कुंतल और सिंहल में धंग की सफलता का दावा काव्यात्मक अतिशयोक्ति ही है। संभवतः उसने विंध्य के दक्षिण में कुछ क्षेत्रों पर

आक्रमण किया था। इस समय कोसल (दक्षिणी कोसल) का शासक सोमवंशी राजा महाभावगुप्त जनमेजय रहा होगा।

दुधई पाषाणलेख से पता चलता है कि धंग का कृष्ण (कान्हपा) नामक एक छोटा भाई भी था जो राज्य के दक्षिण–पश्चिमी प्रांतों का राज्यपाल था। संभवत धंग के निर्देश पर कृष्ण के मंत्री कौहिन्य वाचस्पति ने मालवा के परमारों ओर चेदि के कलचुरियों को पराजित किया था। कौहिन्य द्वारा पराजित चेदि राजा शंकरगण तृतीय रहा होगा।

धंग वैदिक अथवा ब्राह्मण धर्म का अनुयायी था। शिव उसके विशिष्ट आराध्य देव थे। किन्तु उसके लेखों में प्रायः सभी हिन्दू देवी–देवताओं की उपासना की गई है। स्वयं ब्राह्मण धर्मानुयायी होते हुए भी वह अन्य धर्मों के प्रति सहिष्णु था। खजुराहो में उसने जैन मतानुयायियों को भी अपने धर्म के प्रचार तथा मंदिर बनवाने की सुविधा प्रदान किया था। खजुराहो से प्राप्त एक लेख से उसके काल की धार्मिक सहनशीलता सूचित होती है। घंग एक महान निर्माता भी था जिसने खजुराहो में अनेक भव्य मंदिरों का निर्माण करवाया। इनमें जिननाथ, विश्वनाथ, वैद्यनाथ आदि मंदिर विशेष उल्लेखनीय है। जिननाथ मंदिर से धंग के शासन काल का एक लेख मिला है जिसमें जैन उपासकों को उसके द्वारा दिए गए दान का विवरण सुरक्षित है। वैद्यनाथ मंदिर में उत्कीर्ण लेख से पता चलता है कि इसका निर्माण गहपति कोक्कल द्वारा करवाया गया था। खजुराहों से प्राप्त एक अन्य लेख से पता चलता है कि उसके समय में भगवान शम्भु का एक भव्य मंदिर बनवाया गया तथा उसमें मरकतमणि तथा प्रस्तर से बने हुए दो लिंग स्थापित किए गए थे।

इस प्रकार धंग का सुदीर्घ शासनकाल प्रत्येक दृष्टि से सफलताओं का काल रहा। उसने 'महाराजाधिराज' की उपाधि धारण की तथा 'जीवेम शरदः शतम' की उक्ति चरितार्थ करते हुए अन्ततः प्रयाग स्थित गंगा–यमुना के संगम के पवित्र जल में निमीलित नेत्रों से रुद्र का ध्यान करते हुए तथा पवित्र मंत्रों का जाप करते हुए शरीर त्यागकर मोक्ष को प्राप्त हुआ।

12.4.4 गण्ड

धंग के पश्चात् उसका पुत्र गण्ड चन्देल वंश का राजा बना। वह भी एक शक्तिशाली शासक था। उसके समय का कोई भी लेख हमें नहीं मिलता। लगता है कि वह अधिक आयु में शासक बना था और इसी कारण उसने न तो कोई विजय की और न कोई लेख ही लिखवाये। फिर भी इसमें संदेह नहीं कि गण्ड के काल में चन्देलों की शक्ति अक्षुण्ण रही। त्रिपुरी के कलचुरी चेदि तथा

ग्वालियर के कच्छपघात शासक उसकी अधीनता स्वीकार करते थे। गण्ड ने 1002 से 1019 ई० तक राज्य किया।

गण्ड अपने पिता धंग के समान ही वीर एवं पराक्रमी शासक था जब महमूद गजनवी ने सिन्धु नदी पारकर पंजाब पर आक्रमण किया तो गण्ड ने अन्य भारतीय नरेशों के साथ मिलकर एक संघ बनाया जिसमें कन्नौज, ग्वालियर, कालिंजर अजमेर और मालवा के शासक सम्मिलित थे।

फरिश्ता के अनुसार इस संघ के सभी शासक मुसलमानों को देश से बाहर निकालना अपना परम् कर्तव्य समझते थे। युद्ध आनन्दपाल के नेतृत्व में लड़ा गया लेकिन आनन्द पाल का हाथी भड़क गया जिससे संघ की सेना में भगदड़ मच गयी और महमूद की विजय हुई।

यद्यपि गण्ड को महमूद के सामने पराजय झेलनी पड़ी लेकिन गण्ड बड़ा वीर और साहसी शासक था। उसने महमूद से जमकर संघर्ष किया जब तुर्क सेना के सामने बड़े–बड़े राजा–महाराजा धूल के समान उड़ रहे थे तब चन्देल नरेश गण्ड द्वारा महमूद की सेना से लोहा लेना वास्तव में उसकी वीरता और पराक्रम की कहानी कहता है। गण्ड एक योद्धा ही नहीं बल्कि निर्माणकर्ता भी था। खजुराहो में जगदम्बा और चित्रगुप्त मन्दिर का निर्माण उसी ने कराया था। निःसन्देह वह एक महान चन्देल शासक था। सन् 1017 ई. में उसकी मृत्यु हो गयी।

12.4.5 विद्याधर

गण्ड के पश्चात् उसका पुत्र विद्याधर (1019–1029 ई०) शासक बना। वह चन्देल शासकों में सर्वाधिक शक्तिशाली था। उसके शासन काल की घटनाओं के विषय में हम तत्कालीन लेखों तथा मुसलमान लेखकों के विवरण से जानकारी प्राप्त करते हैं। मुसलमान लेखक उसका उल्लेख 'नन्द' तथा 'विदा' नाम से करते हैं तथा उसे तत्कालीन भारत का सबसे शक्तिशाली राजा मानते हैं। अली–इन–उल–अतहर लिखता है कि उसके पास सबसे बड़ी सेना थी तथा उसके देश का नाम खजुराहो था। विद्याधर के राजा बनते ही महमूद गजनवी के नेतृत्व में तुर्कों के हिन्दू राजाओं पर आक्रमण तेज हो गए। किन्तु योग्य और साहसी विद्याधर विचलित नहीं हुआ तथा तुर्की से कड़ी मुठभेड़ के लिए प्रस्तुत हुआ। उसे अपने वंश की मर्यादा पर बड़ा गर्व था। 1019 ई० में महमूद ने कन्नौज के प्रतिहार शासक राज्यपाल के ऊपर आक्रमण किया। राज्यपाल ने डरकर बिना युद्ध के ही आत्मसमर्पण कर दिया। जब विद्याधर को इस घटना की सूचना मिली तो वह अत्यन्त कुछ हुआ तथा उसने राज्यपाल को दण्डित

करने का निश्चय किया। मुस्लिम लेखक इब्न–उल–अतहर हमें बताता है कि विद्याधर ने कन्नौज पर आक्रमण किया तथा एक दीर्घकालीन युद्ध के पश्चात वहाँ के राजा राज्यपाल की इस कारण हत्या कर दी थी कि वह मुसलमानों के विरुद्ध भाग खड़ा हुआ तथा अपना. राज्य उन्हें समर्पित कर दिया था।' इस विवरण की पुष्टि कुछ अभिलेखों से भी होती है। इस बात का पहले उल्लेख किया जा चुका है कि ग्वालियर के कछवाहा नरेश चन्देलों के सामन्त थे। इस वंश के विक्रम सिंह के दूबकुन्ड लेख (1088 ई०) से पता लगता है कि उसके एक पूर्वज अर्जुन ने विद्याधर की ओर से युद्ध करते हुए कन्नौज के राजा राज्यपाल को मार डाला था। चन्देल वंश का एक लेख महोबा से मिलता है। उससे भी विद्याधर द्वारा राज्यपाल के मारे जाने की बात पुष्ट होती है। कुछ विद्वानों का मत है कि विद्याधर ने अपने पिता गण्ड के काल में सेनापति के रूप में ही राज्यपाल का वध किया था, न कि राजा होने के बाद। इस मत के पोषक लोग मुसलमानों के 'नन्द' की पहचान 'गण्ड' से करते हैं। किन्तु यह मत तर्कसंगत नहीं प्रतीत होता। दूबकुन्ड के लेख से स्पष्ट है कि उस समय विद्याधर ही शासन कर रहा था। उसमें उसे 'विद्याधरदेव' कहा गया है तथा उसके पिता गण्ड का नामोल्लेख नहीं मिलता। राज्यपाल का वध करने से विद्याधर को ख्याति चतुर्दिक् फैल गई तथा वह उत्तर भारत का सार्वभौम सम्राट बन गया। कन्नौज में उसने अपनी ओर से राज्यपाल के पुत्र त्रिलोचनपाल को राजा बनाया तथा उसने विद्याधर की अधीनता स्वीकार कर ली। अन्य हिन्दू शासकों ने भी उसका लोहा मान लिया। यह महमूद गजनवी को खुली चुनौती थी जिसका सामना करने के लिए वह प्रस्तुत हुआ।

चन्देलों पर महमूद का प्रथम आक्रमण 1019–20 ई० में हुआ। मुस्लिम स्रोतों से पता चलता है कि दोनों के बीच किसी नदी के किनारे भीषण युद्ध हुआ किन्तु इसका कोई परिणाम न निकला। इस युद्ध में विद्याधर ने राजनीतिक सूझ–बूझ का परिचय दिया तथा रात्रि के अन्धकार में युद्ध स्थल उपयुक्त न होने के कारण अपनी सेना को हटा लिया। महमूद भी गजनी वापस लौट गया। मुस्लिम लेखक विद्याधर के मैदान से हटने को ही महमूद की विजय मानते हैं जो उचित नहीं लगता। यदि महमूद ने वास्तव में विद्याधर को पराजित किया होता तो वह उसका पीछा करते हुए उसके राज्य में लूट–पाट एवं कल्लेयाम करता, न कि युद्ध क्षेत्र से ही गजनी वापस लौटता। अतः दुबारा शक्ति जुटाकर उसने 1022 ई० में विद्याधर के राज्य पर आक्रमण किया। सबसे पहले उसने ग्वालियर के दुर्ग का घेरा डाला जो चार दिनों तक चलता रहा। अन्ततोगत्वा दुर्गपाल ने 35 हाथियों की भेंट कर उससे पीछा छुड़ाया। तत्पश्चात् उसने

कालिंजर के दुर्ग का घेरा डाला। शक्ति तथा अभेद्यता में वह दुर्ग सम्पूर्ण हिन्दुस्तान में बेजोड़ था। ऐसा प्रतीत होता है कि महमूद दुर्ग को जीत नहीं सका तथा दोनों में संधि हो गयी। स्वयं महमूद भी विद्याधर की शक्ति से सशंकित था। मुसलमान लेखकों के विवरण से ऐसा आभास मिलता है कि दीर्घकालीन घेराबन्दी के बाद भी महमूद को कोई सफलता नहीं प्राप्त हुई। अतः मजबूर होकर उसे उससे संधि करनी पड़ी तथा महमूद वापस लौट गया। इसके बाद उसकी चन्देल राज्य पर आक्रमण करने की दुबारा हिम्मत नहीं पड़ी तथा विद्याधर और महमूद परस्पर मित्र बन गए। दोनों के बीच यह मित्रता कम से कम 1029 ई० तक बनी रही जबकि महमूद ने अपने शत्रु सेल्जुक के एक पुत्र को बन्दी बनाकर भारत में कालंजर के दुर्ग में भेज दिया था। इस प्रकार विद्याधर ही अकेला ऐसा भारतीय नरेश था जिसने महमूद गजनवी की महत्वाकांक्षाओं का सफलतापूर्वक प्रतिरोध किया। इस वीरतापूर्वक कार्य ने उसे तत्कालीन भारत के शासकों में सिरमौर बना दिया। इसके अतिरिक्त विद्याधर ने मालवा के परमार शासक भोज तथा कलचुरी शासक गांगेयदेव को भी पराजित कर अपनी अधीनता में किया। चन्देल वंश के एक अभिलेख से पता चलता है कि उपर्युक्त दोनों ही नरेश शिष्य के समान डरकर विद्याधर की पूजा किया करते थे। मदनवर्मा के समय के मऊ प्रस्तर लेख से पता चलता है कि शिवनाग उसका यशस्वी मंत्री था जो गण्ड एवं धंग के मुख्यमंत्री प्रभास का पुत्र था। बताया गया है कि सचिव पद प्राप्त करते ही उसने अपने उत्कृष्ट आचरण से पृथ्वी के समस्त राजाओं को विद्याधर का करद बना दिया तथा उसका शासन पृथ्वी पर सर्वश्रेष्ठ हो गया था। इस प्रकार वह निश्चय ही अपने समय का एक महान शासक था। उसके पितामह धंग ने जिस विशाल साम्राज्य का निर्माण किया था, विद्याधर ने अपने वीरतापूर्वक कृत्यों द्वारा उसे गौरवान्वित कर दिया। मुस्लिम लेखकों ने भी उसकी शक्ति एवं उसके साम्राज्य की मुक्तकंठ से प्रशंसा की है। उसका शासन–काल चन्देल साम्राज्य के चरम उत्कर्ष को व्यक्त करता है।इस प्रकार धंग तथा विद्याधर चन्देल शक्ति के आधार स्तम्भ तथा साम्राज्य के मुख्य निर्माता थे।

12.5 पतन

1162 में सम्राट यशोवर्मन द्वीतीय और उनके भतीजे दस्सराज और वत्सराज की हत्या हो गई और यशोवर्मन के पुत्र परमर्दीदेव उस समय मात्र 5 साल के थे, जिसके चलते चन्देल साम्राज्य के कुछ सामंत राजा परिस्थिति का लाभ उठा स्वतंत्र हो गए।

परमर्दिदेव (शासनकाल 1165–1203 ईस्वी) छोटी उम्र में चन्देल राजसिंहासन पर आरूढ़ हुए। परमर्दिदेव ने सभी विद्रोही राजाओं को हराकर उन्हे पुनः चन्देल साम्राज्य का सामंत राजा बना दिया। अब परमर्दिदेव के सामने दो राजा थे, एक काशी के राजा जयचंद और दूसरा अजमेर के राजा पृथ्वीराज चौहान, जिसमे जयचंद उनके परममित्र थे इसीलिए मित्र राज्य बन गए वही पृथ्वीराज चौहान से जयचंद के साथ की वजह से दुश्मनी हुए। परमर्दिदेव का पुत्र ब्रम्हजित एवम पृथ्वीराज की पुत्री बेला एक दूसरे से प्रेम करते थे परंतु काशी के गहरवारो से चन्देलो की मित्रता होने के कारण पृथ्वीराज ने विवाह के लिए मना कर दिया। अब युवराज ब्रम्हजित और सेनापति आल्हा चन्देल जो की परमर्दिदेव का भतीजे था, उन्होंने दिल्ली पे चढ़ाई कर दी। दिल्ली के युद्ध (1180) में पृथ्वीराज को हरा ब्रम्हजित ने बेला से विवाह किया। गौने के वक्त पृथ्वीराज के पुत्रो ने ब्रम्हजित को घायल कर मारने का प्रयास किया जिसके बाद युद्ध की परिस्थिति अब बदले में बदल गई। अब परमर्दिदेव, आल्हा और ऊदल ने अजमेर पे हमला किया और पृथ्वीराज के पुत्रो को बंदी बना महोबा ले आए। पृथ्वीराज ने 1182 में महोबा पे हमला किया, महोबा के युद्ध में जिसमे सेनापति ऊदल और युवराज ब्रम्हजित, राजकुमार इंद्रजीत और गहड़वाल के राजकुमार लक्ष्मणचंद्र धोखे मारे गए वहीं चौहान पक्ष के 2 लाख सैनिकों को मार दिया गया। युद्ध में आल्हा ने पृथ्वीराज चौहान की टुकड़ी पर हमला कर दिया। युद्ध में आल्हा ने पृथ्वीराज को बुरी तरह पराजित कर मूर्छित कर दिया, लेकिन पृथ्वीराज के निहत्था होने के कारण उन्हें गुरु के आज्ञा वश जीवनदान देना पड़ा। इस प्रकार महोबा के युद्ध में विजय चन्देलो की हुई एवं पृथ्वीराज मदनपुर में छुपते हुए अपने ननिहाल के रास्ते दिल्ली चला गया।

आल्हा के सन्यास के बाद चन्देलों और चौहानों में युद्ध फिर से शुरू हुआ। 1187 में युद्ध हुआ, इस बार युद्ध का नेतृत्व खुद परमर्दिदेव कर रहा था। कीर्तिसागर के युद्ध में परमर्दिदेव चन्देल ने पृथ्वीराज चौहान को बुरी तरह परास्त किया जाता उसे बेइज्जत कर रणभूमि से भागने पर विवश किया।

परमर्दिदेव 1203 में कुतुबद्दीन ऐबक के विरुद्ध लड़ा परंतु युद्ध में सेना के समय पे ना पहुँचने के कारण युद्ध करते हुए मारा गया। कुछ मुस्लिम स्त्रोत कहते है की सेनापति अजय देव ने परमर्दिदेव को मार दिया और चन्देल साम्राज्य पर कब्जा कर लिया, सम्राट परमर्दिदेव की मृत्यु होते हुई महोबा की सेना तुर्क सेना से हार गई।

12.6 सारांश

चन्देल राजाओं का शासन काल कला की उन्नति के लिए अत्यधिक प्रसिद्ध है। इस युग की कला के इतिहास–प्रसिद्ध उदाहरण आज भी खजुराहो (छतरपुर, म०प्र०) में विद्यमान हैं। यहाँ लगभग 30 मंदिर खड़े हैं जो विष्णु, शिव तथा जैन तीर्थंकरों की उपासना में निर्मित कराये गए हैं। मंदिरों में 'कन्डारिया महादेव' का मंदिर सर्वाधिक प्रसिद्ध है। मंदिर के गर्भगृह में शिव, गणेश तथा प्रमुख हिन्दू देवियों की मूर्तियाँ बनी हैं। यहाँ के अनेक प्रमुख मंदिरों में जगदम्बिका मंदिर, चित्रगुप्त मंदिर, विश्वनाथ मंदिर तथा पार्श्वनाथ का मंदिर विशेषरूप से उल्लेखनीय है। सभी मंदिरों के भीतरी तथा बाहरी दीवारों पर अनेक भव्य मूर्तियाँ उत्कीर्ण की गई हैं। देवी–देवताओं के अतिरिक्त अनेक अप्सराओं, नायिकाओं तथा सामान्य नारियों की मूर्तिया भी खजुराहो से प्राप्त होती हैं। कुछ मूर्तियाँ अत्यन्त अश्लील हो गई हैं जो धर्म पर तांत्रिक विचारधारा के प्रभाव को व्यक्त करती हैं। समग्ररूप से खजुराहो की कला अत्यन्त प्रशंसनीय है। यह चन्देल नरेशों की अमर कीर्ति का प्रतीक है।

12.7 अभ्यासार्थ प्रश्न

1. चन्देल वंश के इतिहास के विषय में वर्णन कीजिये।

   .....

   .....

2. चन्देल वंश के इतिहास के स्रोतों के विषय में वर्णन कीजिये।

   .....

   .....

3. चन्देल वंश के शक्तिशाली शासकों के विषय में विस्तार पूर्वक वर्णन कीजिये। चन्देल वंश के उदय के प्रमुख कारणों का उल्लेख कीजिये।

   .....

   .....

12.8 संदर्भ ग्रन्थ

बी.ए. स्मिथ : अर्ली हिस्ट्री ऑफ इंडिया

सी.वी.वैद्य : हिस्ट्री ऑफ मेडिवल हिंदू इंडिया

एन.एस. बोस : हिस्ट्री ऑफ दि चंदेलाज

केशवचंद्र मिश्र : चन्देल और उनका राजत्वकाल

हेमचंद्र रे, मजुमदार : दि स्ट्रगिल फॉर दि एंपायर

तथा पुसालकर

एस.के.मित्र : दि अर्ली रूलर्ज ऑफ खजुराहो

कृष्णदेव : दि टेंपुल ऑफ खजुराहो ऐंशेंट इंडिया, भाग15

नेमाई साधन बोस : हिस्ट्री ऑफ दि चंदेलाज

शिशिरकुमार मित्र : अर्ली रूलर्ज ऑफ खजुराहो।

इकाई 13–गुजरात का चौलुक्य वंश–स्रोत एवं प्रारम्भिक इतिहास–मूलराज, जयसिंह सिद्धराज एवं कुमारपाल

इकाई की रूपरेखा

13.0 प्रस्तावना

13.1 उद्देश्य

13.2 इतिहास के स्रोत

13.3 राजनीतिक इतिहास

13.3.1 मूलराज

13.3.2 चामुण्डराज

13.3.3 भीमदेव प्रथम

13.3.4 कर्ण

13.3.5 जयसिंह सिद्वराज

13.3.6 कुमारपाल

13.3.7 अजयपाल

13.3.8 भीमदेव द्वितीय

13.4 सारांश

13.5 अभ्यासार्थ प्रश्न

13.6 संदर्भ ग्रन्थ

13.0 प्रस्तावना

सोलंकी अग्निकुल से उत्पन्न राजपूतों में से एक थे। वाडनगर लेख में इस वंश की उत्पत्ति ब्रह्मा के चुलुक अथवा कमण्डलु से बताई गई है। उन्होंने गुजरात में दसवीं शताब्दी के उत्तरार्द्ध से तेरहवीं शताब्दी के प्रारम्भ तक शासन किया। उनकी राजधानी अन्हिलवाड़ में थी। यह निश्चित नहीं है कि दक्षिण के चालुक्य वंश से इसका कोई संबंध था या नहीं। उल्लेखनीय है कि दक्षिण के वंश का नाम 'चालुक्य' था जबकि गुजरात के वंश को 'चालुक्य' कहा

गया है। इस वंश के शासक जैन धर्म के पोषक तथा संरक्षक थे।

13.1 उद्देश्य

इस इकाई का मुख्य उद्देश्य आपको गुजरात के चालुक्य वंश के इतिहास तथा उसके शासकों के शासनकाल एवं राज्य विस्तार से संबंधित जानकारी प्रदान करना है।

13.2 इतिहास के स्रोत

गुजरात के चालुक्य वंश का इतिहास हम मुख्य रूप से जैन लेखकों के ग्रन्थों से ज्ञात करते हैं। ये लेखक चालुक्य शासकों की राजसभा में निवास करते थे। इन ग्रन्थों में हेमचन्द्र का द्वाश्रयकाव्य, मेरुतुंगकृत प्रबन्धचिन्तामणि. सोमेश्वरकृत कीर्तिकौमुदी, जयसिंहरि का कुमारभूपालचरित, आदि का उल्लेख किया जा सकता है जिनके अध्ययन से हम इस वंश के शासकों की राजनैतिक तथा सांस्कृतिक उपलब्धियों का विवरण प्राप्त करते हैं। भारतीय साहित्य के अतिरिक्त मुसलमान लेखकों अलगर्दीजी, इब्न–उल–अतहर, हसन निजामी आदि के विवरणों से तुर्कों तथा चालुक्यों के संघर्ष का परिचय प्राप्त होता है।

चालुक्य राजाओं के लेख भी मिलते हैं जो न्यूनाधिक रूप से उनके इतिहास पर प्रकाश डालते हैं। इनमें सबसे महत्वपूर्ण लेख कुमारपाल की वाडनगर प्रशस्ति (971 ई०) है जिसकी रचना श्रीपाल ने की थी। इसके अतिरिक्त तलवाड़ा, उदयपुर (भिलसा), कादि आदि के लेखों से जयसिंह, कुमारपाल, भीम द्वितीय आदि चालुक्य राजाओं की उपलब्धियों का विवरण मिलता है। सोलंकी वंश के कुछ प्रमुख इतिहास जानने के स्रोत निम्न हैं –

- वाडनगर अभिलेख– कुमारपाल से सम्बंधित
- उज्जैन अभिलेख– जयसिंह सिद्धराज से सम्बंधित
- उदयपुर अभिलेख– जयसिंह सिद्धराज से सम्बंधित
- चितौड़गढ़ अभिलेख– कुमारपाल से संबंधित
- प्रबंधचिन्तामणी ग्रन्थ– मेरुतुंगाचार्य द्वारा रचित
- कीर्ति कौमुदी ग्रंथ– सोमेश्वर द्वारा रचित
- कुमारपाल चरित ग्रंथ– हेमचंद्र सूरि की रचना

इन सभी साक्ष्यों के आधार पर चालुक्य इतिहास का वर्णन प्रस्तुत किया

जायेगा।

13.3 राजनीतिक इतिहास

अन्हिलवाड़ के चालुक्यों के उदय पूर्व गुजरात का इतिहास सामान्यतः कन्नौज के गुर्जर प्रतिहारों से संबंधित है। प्रतिहार महेन्द्रपाल का साम्राज्य गुजरात तक विस्तृत था तथा उसके उत्तराधिकारी महीपाल ने भी कम से कम 914 ई० तक यहाँ अपना अधिकार बनाए रखा। महीपाल की राष्ट्रकूट शासक इन्द्र तृतीय (915–17 ई०) द्वारा पराजय के पश्चात् प्रतिहारों की स्थिति निर्बल पड़ गयी। राष्ट्रकूटों के साथ अनवरतसंघर्ष के परिणामस्वरूप गुजरात क्षेत्र भारी अराजकता एवं अव्यवस्था का शिकार हो गया। प्रतिहारों तथा राष्ट्रकूटों के पतन के उपरान्त चालुक्यों को गुजरात में अपनी सत्ता स्थापित करने का सुअवसर प्राप्त हो गया।

13.3.1 मूलराज

गुजरात के चालुक्य शाखा की स्थापना मूलराज प्रथम (941–995 ई०) ने की थी। उसने प्रतिहारों तथा राष्ट्रकूटों के पतन का लाभ उठाते हुए नवीं शती के द्वितीयार्ध मे सरस्वती घाटी में अपने लिए एक स्वतंत्र राज्य स्थापित कर लिया। गुजराती अनुश्रुतियों से पता चलता है कि मूलराज का पिता राजि कल्याणकटक का क्षत्रिय राजकुमार था तथा उसकी माता गुजरात के अण्हिलपुर के चापोत्कट वंश की कन्या थी। उसके पिता की उपाधि 'महाराजाधिराज' का वर्णन गुजराती अनुश्रुतियों में मिलती है, किन्तु उसकी स्वतंत्र स्थिति में संदेह है। संभवतः वह प्रतिहारों का सामन्त था।

मूलराज एक शक्तिशाली राजा था। गद्दी पर बैठने के बाद वह साम्राज्य विस्तार के कार्य में जुट गया। कादि लेख से पता चलता है कि उसने सारस्वत मण्डल को अपने बाहुबल से जीता था। कुमारपालकालीन वाडनगर प्रशास्ति से पता चलता है कि उसने चापोत्कट वंश की लक्ष्मी को बन्दी बना लिया था। अनुश्रुतियों के अनुसार मूलराज सारस्वत मण्डल को ग्रहण करने मात्र से ही संतुष्ट नहीं हुआ अपितु उसने उत्तर पश्चिम तथा दक्षिण दिशा में अपने राज्य का विस्तार किया। उसकी महत्वाकांक्षाओं ने उसे अपने पड़ोसियों के साथ प्रत्यक्ष संघर्ष में ला दिया। इनमें सर्वप्रथम शाकम्भरी के सपादलक्ष शासक विग्रहराज एवं लाट का शासक वारप्प थे। वारप्प को कभी–कभी तैलप का सेनापति भी कहा जाता था जो पश्चिमी चालुक्य वंश का राजा था। प्रबंधचिंतामणि से पता चलता है कि वारप्प तथा विग्रहराज ने मिलकर मूलराज

पर आक्रमण किया। मूलराज इनका सामना नहीं कर सका तथा उसने कथा दुर्ग में शरण ली। बाद में मूलराज ने चाहमान नरेश से सन्धि कर ली तथा वारप्प पर आक्रमण करने की योजना तैयार की। द्वाश्रयमहाकाव्य से पता चलता है कि मूलराज के पुत्रचामुंडराज ने वारप्प को पराजित कर मार डाला। त्रिलोचनपाल के सूरत दानपत्र मे भी इसका सर्मथन होता है। जिसमें कहा गया है कि वारप्प के पुत्र गोगिराज ने अपने देश को शत्रुओं से मुक्त कराया था। यहाँ शत्रुओं से तात्पर्य मूलराज से ही है। सोमेश्वर कृत कीर्तिकौमुदी से पता चलता है कि मूलराज ने स्वयं वारप्प की हत्या की थी। हेमचन्द्र के द्वाश्रयकाव्य से पता चलता है कि मूलराज ने सौराष्ट्र तथा कच्छ को जीतकर अपने साम्राज्य में मिला लिया था। सौराष्ट्र का राजा ग्राह रितु जाति का आभीर था तथा उसकी नियुक्ति स्वयं मूलराज द्वारा ही की गई थी। लेकिन वह दुराचारी हो गया। उसने कच्छ के राजा लक्ष अथवा लाखा को भी अपनी ओर मिलाकर अपनी शक्ति बढ़ा ली। उसे दण्डित करने के लिए मूलराज ने उस पर आक्रमण कर उसे मार डाला। प्रबन्धचिन्तामणि से पता चलता है कि कच्छ के राजा लाखा ने ग्यारह बार मूलराज को हराया लेकिन बारहवीं बार मूलराज ने उसे मार डाला था। इस विजय के फलस्वरूप चालुक्यों का सौराष्ट्र पर अधिकार हो गया। यहाँ स्थित सोमनाथ मंदिर उनके राज्य का प्रसिद्ध तीर्थ बन गया। मेरुतुंग के अनुसार मूलराज प्रत्येक सोमवार को वहाँ दर्शन के निमित्त जाया करता था। बाद में मंडाली में उसने सोमेश्वर का मंदिर बनवाया था। मूलराज को कुछ अन्य क्षेत्रों सफलता प्राप्त हुई। राष्ट्रकूट नरेश धवल के बीजापुर लेख से पता चलता है कि मूलराज ने आबू पर्वत के परमार शासक धरणिवाराह को पराजित किया था। धरणिवाराह ने राष्ट्रकूट नरेश के दरबार में शरण ली थी। परन्तु उसे परमार वंशी मुंज तथा चौहान शासक विग्रहराज द्वितीय के हाथों पराजय उठानी पड़ी। संभवतः विग्रहराज के विरुद्ध युद्ध में वह मार डाला गया।

13.3.2 चामुण्डराज

मूलराज प्रथम का पुत्र चामुण्डराज उसकी मृत्यु के बाद 995 ई० में राजा हुआ। उसने धारा के परमार शासक सिन्धुराज के विरुद्ध सफलता प्राप्त की परन्तु वह लाट प्रदेश पर अधिकार रख सकने में सफल नहीं रहा तथा वारप्प के पुत्र गोग्गिराज ने पुनः वहाँ अपना अधिकार जमा लिया। कलचुरी नरेश कोक्कल द्वितीय ने भी उसे पराजित किया।

13.3.3 भीमदेव प्रथम

दुर्लभराज का उत्तराधिकारी उसका भतीजा भीमदेव प्रथम हुआ। वह

अपने वंश का सबसे शक्तिशाली राजा था। उसके प्रबल प्रतिद्वन्दी परमार भोज तथा कलचुरी नरेश कर्ण थे। ऐसा प्रतीत होता है कि प्रारम्भ में भोज ने भीम पर दबाव बढ़ाया तथा उसे कुछ सफलता भी मिली। उदयपुर लेख से पता चलता है कि भोज ने भीम को पराजित किया था। किन्तु शीघ्र ही भीम ने अपनी स्थिति मजबूत कर ली तथा उसने परमार नरेश भोज के विरुद्ध कलचुरी नरेश कर्ण के साथ मिलकर एक संघ तैयार किया। इस संघ ने मालवा के ऊपर आक्रमण कर धारा नगर को लूटा। कल्याणी के चालुक्य नरेश सोमेश्वर प्रथम ने भी भोज पर आक्रमण कर उसे पराजित किया, धारा को लूटा तथा माण्डु पर अधिकार कर लिया। बिल्हण के विवरण से पता चलता है कि भोज अपनी राजधानी छोड़कर भाग गया। इस प्रकार उसकी प्रतिष्ठा मर्दित हो गयी। इसी बीच परमार भोज की मृत्यु हो गई जिससे भीम तथा कर्ण के आपसी संबंध भी बिगड़ गए। इसका मुख्य कारण धारा से लूटी गई सम्पत्ति का बँटवारा था। अतः भीम ने कर्ण के विरुद्ध एक दूसरा संघ तैयार किया। इसमें परमार जयसिंह द्वितीय, जो भोज का उत्तराधिकारी था ने भी भीम की सहायता की थी। जैन ग्रन्थों से पता चलता है कि भीम ने कर्ण को भी पराजित किया था। बताया गया है कि पहले तो चेदि नरेश ने भीम से लड़ने के लिए भीलों तथा म्लेच्छों की सेना तैयार की किन्तु बाद में उसकी शर्तों पर सन्धि कर लेना श्रेयस्कर समझा। उसने भीम के वकील दामोदर को स्वर्ण मेरु सौंप दिया जिसे वह मालवा से उठा लाया था। हेमचन्द्र हमें बताता हैं कि भीम ने सिंध के राजा हम्मुक को पराजित कर उसे अपने अधीन कर लिया। वह एक शक्तिशाली राजा था जिसने कई शत्रुओं को पराजित किया था। भीम ने सिन्धु नदी पर पुल बनाकर उसके राज्य में प्रवेश कर उसे पराजित किया था। भीम की एक अन्य महत्वपूर्ण उपलब्धि आबू पर्वत क्षेत्र पर अपना अधिकार सुदृढ करना था। आबू पर्वत का क्षेत्र मूलराज के समय चालुक्यों के नियन्त्रण में था किन्तु बाद में वहाँ के शासक धन्धुक ने भीम की सत्ता को चुनौती दी। फलस्वरूप भीम ने वहाँ आक्रमण कर पुनः अपना अधिकार सुदृढ़ कर लिया। भीम के पूर्वजों का नड्डुल के चाहमान शासकों के साथ मधुर संबंध थे। किन्तु महत्वाकांक्षी भीम ने इसे उलट दिया। ऐसा प्रतीत होता है कि भीम ने इस राज्य पर कई आक्रमण किये किन्तु उसे सफलता नहीं मिली तथा उल्टे उसे पराभव सहना पड़ा। सुन्धापहाड़ी लेख से पता चलता है कि नाडुल के राजाओं– अंहिल तथा उसके चाचा अहिल, ने भीम को पराजित किया था। यह भी कहा गया है कि अंहिल के पुत्र बालाप्रसाद ने भीम को पराजित किया था। यह भी कहा गया है कि अंहिल के पुत्र बालाप्रसाद कारागार से कृष्णराज नामक शासक को मुक्त करने के लिये भीम को मजबूर किया था। यह परमार राजा था। इस प्रकार भीम नड्डुल के

चाहमानों को नतमस्तक करने में सफल नहीं हो पाया।

भीम के शासनकाल की सबसे प्रमुख घटना, जिसका उल्लेख अनुश्रुतियों तथा लेखों में नहीं मिलता, महमूद गजनवी का सोमनाथ के मंदिर पर आक्रमण है। महमूद गजनवी ने सोमनाथ मंदिर को लूटा। किन्तु भीम ने बड़ी बुद्धिमानी के साथ उससे अपनी रक्षा की। फरिश्ता लिखता है कि भीम ने तीन हजार मुसलमानों की हत्या कर दी थी। महमूद को उसके भय के कारण मार्ग बदल कर भागना पड़ा। उसके आक्रमण का भीम के शासन पर कोई प्रतिकूल प्रभाव नहीं पड़ा। महमूद गजनवी के सोमनाथ मंदिर को ध्वस्त करके चले जाने के पश्चात् भीम ने उसका पुनः निर्माण करवाया। उसने 1064 ई० तक शासन किया।

इस प्रकार भीम एक अत्यन्त नीति–निपुण एवं पराक्रमी सम्राट था जिसने अपने समय की प्रमुख शक्तियाँ को नतमस्तक कर अपने वंश एवं साम्राज्य की गरिमा को बढ़ाया। वह एक महान् निर्माता भी था तथा पत्तन में उसने भीमेश्वरदेव तथा भट्टारिका के मंदिरों का निर्माण करवाया था। उसके सामन्त विमल ने आबू पर्वत पर दिलवाड़ा का प्रसिद्ध मंदिर बनवाया था। यह वास्तु एवं स्थापत्य की अत्युत्कृष्ट रचना है।

13.3.4 कर्ण

भीम का पुत्र कर्ण एक निर्बल शासक था। उसे मालवा के परमारों ने पराजित किया। नाडोली के चौहानों ने भी उसके राज्य पर आक्रमण कर उसकी सत्ता को थोड़े समय के लिए चलायमान कर दिया। प्रबन्धचिन्तामणि से पता चलता है कि कर्ण ने आशापल्ली के भिल्ल राजा आशा के विरुद्ध सफलता प्राप्त की थी। कुमारपाल चित्तौड़गढ़ लेख में कर्ण के सदकूप पहाड़ी दर्रे के पास मालवों को जीतने का श्रेय दिया गया है। किन्तु इसकी पुष्टि अन्य स्रोतों से नहीं होती। विजयों की अपेक्षा कर्ण की रुचि निर्माण कार्यों में अधिक थी। कर्णावती नामक नगर बसाकर वहाँ उसने कर्णेश्वर का मंदिर तथा कर्णसागर नामक झील का निर्माण करवाया था। अन्हिलवाड़ के कर्णमेरु नामक मंदिर के निर्माण का श्रेय भी उसी को दिया जाता है।

13.3.5 जयसिंह सिद्धराज

कर्ण के बाद उसकी पत्नी मयणल्लदेवी से उत्पन्न पुत्र जयसिंह सिद्धराज चालुक्य वंश का एक प्रसिद्ध राजा बना। उसके कई लेख प्राप्त हुए है। राज्यारोहण के समय वह कम आयु का था, अतः उसकी माँ ने कुछ समय

तक संरक्षिका के रूप में कार्य किया। उसका एक प्रमुख कार्य सोमनाथ की यात्रा पर जाने वाले तीर्थयात्रियों के ऊपर लगने वाले कर को समाप्त करना था।

जयसिंह एक महान् योद्धा तथा विजेता था जिसने सभी दिशाओं में विजय प्राप्त की। उसकी प्रारम्भिक सफलताओं में से एक सौराष्ट्र के आभीर शासक को पराजित करना था। मेरुतुंग लिखता है कि आभीर शासक नवघन ने गिरनार से आगे बढ़ते हुए चालुक्य सेना को ग्यारह बार पराजित किया तथा वर्धमान (झल्वर) एवं दूसरे नगरों को घेर लिया। जयसिंह ने बारहवीं बार स्वयं उसके विरुद्ध अभियान करते हुए उसे मार डाला तथा अपनी ओर से सज्जन को सुराष्ट्र का दण्डाधिपति नियुक्त किया। दोहर्द लेख से भी इसकी पुष्टि होती है जहाँ बताया गया है कि जयसिंह ने सुराष्ट्र के राजा को बन्दी बना लिया था।

जयसिंह का दूसरा अभियान पश्चिम में मालवा के परमार राजाओं के विरुद्ध हुआ। मेरुतुंग के विवरण से पता चलता है कि जब जयसिंह अपनी राजधानी छोड़कर सोमेश्वर की यात्रा पर गया था तभी परमार शासक यशोवर्मन् ने उसके राज्य पर आक्रमण कर उसे रौंद डाला तथा जयसिंह के मंत्री सान्तु को अपने अधीन कर उससे अपने पाँव धुलवाये। जयसिंह जब वापस लौटा तो अत्यन्त क्रुद्ध हुआ तथा उसने मालवराज से बारह वर्षों तक लगातार युद्ध किया। अन्त में उसने परमार शासक यशोवर्मन् को युद्ध में पराजित कर उसे बन्दी बना लिया। इस विजय से उसका परमार राज्य के बड़े भाग पर अधिकार हो गया। यशोवर्मन् ने कुछ समय के लिए उसकी अधीनता स्वीकार कर ली। कुमारपालचरित से पता चलता है कि जयसिंह ने धारा को ध्वस्त कर दिया तथा नरवर्मन की हत्या कर दी। जयसिंह के लेखों से भी इसका समर्थन होता है। कुमारपाल की वाडनगर प्रशस्ति के अनुसार जयसिंह ने मालवा के अभिमानी राजा को बन्दी बना लिया था। चूंकि यशोवर्मन एवं नरवर्मन दोनों ही जयसिंह के समकालीन थे, अतः दोनों की पराजय की बात सही प्रतीत होती है। संभव है दीर्घकालीन संघर्ष में दोनों की हत्या कर दी गई हो। उज्जैन लेख से पता चलता है कि जयसिंह ने अपनी और से महादेव नामक ब्राह्मण को मालवा का शासक बनाया। अब 'अवन्तिनाथ' का विरुद नियमित रूप से जयसिंह द्वारा धारण किया जाने लगा।

मालवा तथा दक्षिणी राजपूताना के परमार क्षेत्रों के चालुक्य राज्य में सम्मिलित हो जाने के फलस्वरूप जयसिंह का चन्देल, कलचुरी, गाहड़वाल, चाहमान आदि शासकों के साथ संघर्ष होना अनिवार्य हो गया।

युद्ध कुमारपालचरित से पता चलता है कि जयसिंह ने महोबा के शासक मदनवर्मा को पराजित किया था। कीर्तिकौमुदी के अनुसार वह धारा से कालंजर गया था। किन्तु दूसरी ओर चन्देल लेखों से पता चलता है कि मदनवर्मा ने ही जयसिंह को हराया था। ऐसा लगता है कि चन्देलों के साथ संघर्ष में जयसिंह को कोई खास लाभ नहीं हुआ। जयसिंह ने अपने समकालीन शाकम्भरी चाहमान शासक अर्णोराज को पहले तो युद्ध में पराजित किया किन्तु बाद में उसके साथ अपनी पुत्री का विवाह कर मित्रता स्थापित कर लिया। जयसिंह ने सिंध की भी विजय की थी। इसका विवरण दोहद लेख में मिलता है जिसके अनुसार उसने 'सिंध के राजा को पराजित कर दिया तथा उत्तर के शासकों को अपनी राजाज्ञा शेष के समान मस्तक पर धारण करने को विवश किया। 'यह पराजित सिंध नरेश सुमरा जाति का कोई सरदार प्रतीत होता है। तलवार लेख में कहा गया है कि उसने परमर्दि को पराजित किया। हेमचन्द्रराय के अनुसार यह राजा चन्देलवंशी परमर्दि न होकर कल्याणी का चालुक्य नरेश विक्रमादित्य षष्ठ था। उसकी भी उपाधि परमर्दिदेव की थी। हेमचन्द्र जयसिंह की विजयों में बर्बरक नामक राजा की पराजय का उल्लेख करता है। वह राक्षस था जो श्रीस्थल (सिद्धपुर) तीर्थ में ब्राह्मण साधुओं को तंग करता था। जयसिंह ने अपनी सेना के साथ उस पर आक्रमण कर उसे पराजित किया तथा बन्दी बना लिया। किन्तु उसकी पत्नी पिंगलिका के इस आश्वासन पर उसे मुक्त कर दिया कि वह ब्राह्मणों को परेशान नहीं करेगा। इसके बाद बर्बरक, जयसिंह का विश्वासपात्र सेवक बन गया।

इस प्रकार जयसिंह सिद्धराज अपने समय का एक महान् विजेता एवं साम्राज्य निर्माता था जिसने चालुक्य साम्राज्य को उत्कर्ष की चोटी पर पहुंचाया। शान्ति के कार्यों में भी उसकी गहरी दिलचस्पी थी। वह विद्य और कला का उदार संरक्षक था। उसने जैन विद्वान् हेमचन्द्र तथा अन्य जैन भिक्षुओं को सम्मानित किया तथा विभिन्न सम्प्रदायों के साथ वह धार्मिक चर्चायें किया करता था। ज्योतिष, न्याय, पुराण आदि के अध्ययन के लिए उसने विद्यालय स्थापित करवाये थे। वह महान निर्माता भी था। सिद्धपुर में रुद्रमहाकाल मंदिर तथा पाटन में सहस्रलिंग नामक कृत्रिम झील उसके प्रमुख निर्माण थे। द्वयाश्रय महाकाव्य के अनुसार सहस्रलिंग के किनारे चण्डिकादेव तथा अन्य 108 मंदिरों का निर्माण उसके द्वारा करवाया गया था। इनसे जयसिंह का ह शैवभक्त होना भी प्रमाणित होता है। आबू पर्वत पर उसने एक मण्डप बनवाया तथा उसमें अपने पूर्वजों की सात गजारोही मूर्तियां स्थापित करवायी थी। स्वयं धर्मनिष्ठ शैव होते हुए भी उसने जैन मतानुयायियों के प्रति उदारता का प्रदर्शन किया।

13.3.6 कुमारपाल

जयसिंह का अपना कोई पुत्र नहीं था। अतः उसकी मृत्यु के पश्चात् कुमारपाल राजा बना। विभिन्न स्रोतों से उसके राज्यारोहण के पूर्व जीवन के विषय में जो सूचना मिलती है उसके अनुसार वह निम्न कुल (हीन उत्पत्ति) का था। इसी कारण जयसिंह उससे घृणा करता था। किन्तु जैन आचार्यों तथा मंत्री उदयन एवंसेनापति कान्हड़देव की सहायता से उसने राजगद्दी प्राप्त कर ली। बाद में वह कान्हड़देव (जो उसका बहनोई भी था) के व्यवहार से सशंकित हो उठा तथा उसे अपंग एवं अन्धा करवाकर उसके घर भिजवा दिया। किन्तु मंत्री उदयादित्य उसका विश्वासपात्र बना रहा तथा उसे मुख्यमंत्री बना दिया गया।

कुमारपाल भी एक महान् विजेता एवं कुशल योद्धा था। राज्यारोहण के बाद अपनी स्थिति मजबूत करने के लिए उसने अपना सैनिक अभियान प्रारम्भ कर दिया। उसकी विजयों का अत्यन्त विस्तृत विवरण जयचन्द्र सूरि के कुमारपालचरित में मिलता है। उसका पहला संघर्ष चाहमान शासक अणोराज के साथ हुआ। इसमें अर्णोराज का सहायक बाहड़, उदयन का पुत्र एवं जयसिंह का दत्तक पुत्र था। बाहड़ स्यवं चालुक्य गद्दी का दावेदार था। उसने जयसिंह के कुछ अधिकारियों को अपनी ओर मिला लिया था। दोनों कुमारपाल के विरुद्ध अभियान करते हुए गुजरात की सीमा तक चढ़ गए, किन्तु कुमारपाल ने बाहड़ को बन्दी बना लिया। जैन श्रोतों से पता चलता है कि अर्णोराज के साथ उसका संघर्ष लम्बा चला। इसमें अन्ततोगत्वा कुमारपालने अर्णोराज को परास्त किया। अर्णोराज ने अपनी पुत्री जल्हणादेवी का उसके साथ विवाह कर मैत्री संबंध स्थापित किया। कुमारपाल ने आबू तथा नडल में अपनी ओर सामंत शासक नियुक्त किए। चित्तौड़गढ़ में सज्जन नामक उसका सामन्त था। ऐसी स्थिति में अर्णोराज से उत्तराधिकारी विग्रहाज चतुर्थ के साथ भी उसका संघर्ष अवश्यंभावी था। विग्रहराज ने चालुक्यों को अपने क्षेत्रों से हटाने के लिए अभियान छेड़ दिया। उसने चित्तौड़गढ़ पर आक्रमण कर कुमारपाल द्वारा नियुक्त सामंत सज्जन को मार डाला तथा सोलंकियों द्वारा पूर्व में जीते गए अपने कुछ अन्य प्रदेशों पर भी अधिकार कर लिया। चाहमान लेखों में यह दावा किया गया है कि विग्रहाज ने कुमारपाल को पराजित कर दिया था। किन्तु ऐसा प्रतीत होता है कि दोनों के बीच एक प्रकार की सन्धि हो गयी। तत्पश्चात कुमारपाल ने उत्तर की ओर ध्यान दिया। जैन ग्रन्थ हमें बताते हैं कि कुमारपाल ने मालवा के शासक बल्लाल के ऊपर आक्रमण कर उसे मार डाला तथा कोकण के शिलाहार वंशीय शासक को युद्ध में जीता। इस बल्लाल की पहचान निश्चित नहीं है क्योंकि परमार लेखों में उसका नाम नहीं मिलता। संभवतः वह कोई

स्थानीय शासक था जिसने मालवा पर अधिकार कर लिया था। कुमारपाल के विरुद्ध युद्ध में उसने चाहमान शासक अर्णोराज का साथ दिया था। शिलाहार वंश का पराजित राजा मल्लिकार्जुन था। कुमारपालचरित से पता चलता है कि आबू क्षेत्र के चन्द्रावती में परमार वंश की कोई शाखा शासन करती थी। यहाँ का शासक विक्रमसिंह था जिसने कुमारपाल के विरुद्ध विद्रोह कर दिया। कुमारपाल ने वहाँ आक्रमण कर उसे बन्दी बना लिया तथा अपनी ओर से उसके भांजे यशोधवल को राजा बना दिया। अब यशोधवल वहाँ कुमारपाल का सामन्त बन गया। कुमारपाल को सुराष्ट्र में भी एक अभियान हटना पड़ा। वहाँ का राजा सुम्बर था। मेरुतुंग के विवरण से पता चलता है कि उसने कुमारपाल के प्रधानमंत्री उदयन को पराजित कर घायल कर दिया। किन्तु बाद में कुमारपाल ने उसे अपने नड्डुल के चाहमान सामन्त आल्हादान की सहायता से पराजित कर दिया। सम्बर के पुत्र को सुराष्ट्र का राजा बनाया गया जिसने चालुक्य नरेश की अधीनता मान ली।

इस प्रकार कुमारपाल अपने युग का एक महान् शक्तिशाली राजा सिद्ध हुआ। उसने जयसिंह की विरासत को अक्षुण्ण बनाए रखा तथा अपने जीवनकाल में उसमें कमी नहीं होने दिया। अपने समय की प्रमुख शक्तियों को पराजित कर उसने चालुक्य साम्राज्य की प्रतिष्ठा को बढ़ाया। भारत के धार्मिक इतिहास में उसका शासन काल अत्यन्त रुचिकर माना जा सकता है। जैन अनुश्रुतियां एक स्वर उसे अपने मत का अनुयायी घोषित करती हैं। बताया गया है कि हेमचन्द्र के प्रभाव से उसने जैन धर्म ग्रहण कर लिया। जयसिंह कृत कुमारपाल चरित से सूचना मिलती है कि उसने अभक्ष नियम स्वीकार किया तथा अपना मन जैव धर्म में लगा दिया (जैन धर्मे मनस्थापना)। तदनुसार कुमारपाल ने मांस–मदिरा का परित्याग कर दिया तथा अपने राज्य में पशुओं की हत्या पर रोक लगा दिया। राज्य में अहिंसा का पूरे जोर–शोर से प्रचार किया गया तथा इसके लिए राजाज्ञा प्रसारित कर दी गयी। नवरात्रि पर बकरे की बलि निषिद्ध कर दी गई तथा पशु हिंसा रोकने के लिए उसने अपने मंत्रियों को काशी भेजा। वह स्वयं जैन तीर्थस्थलों में गया तथा चैत्य एवं मंदिरों का निर्माण करवाया। जैन धर्म के ही प्रभाव से उसने निःसन्तान मरने वालों की सम्पत्ति का राज्य द्वारा अधिग्रहण कर लेने का अधिकार समाप्त कर दिया। सम्राट प्रतिदिन जैन मन्त्रों का जाप किया करता था। वह पूर्णतया जैन धर्म के प्रभाव में आ गया। लेकिन इस बात के भी पर्याप्त प्रमाण मिलते हैं कि शैवधर्म में भी कुमारपाल की आस्था अडिग रही। उसने सोमनाथ के मंदिर में जाकर भगवान शिव की उपासना की थी तथा उसने कुछ शैव मंदिरों का भी निर्माण

करवाया था। उसके सभी लेखों में शिव की स्तुति की गई है। अभी तक कोई लेख ऐसा नहीं मिला है जिसमें जैन धर्म की स्तुति की गई हो। इससे पता चलता है कि इस मत में भी उसकी आस्था विद्यमान थी। हेमचन्द्र राय का अनुमान है कि संभवतः कुमारपाल का जैन धर्म की ओर झुकाव भौतिक कारणों से रहा होगा। इसका उद्देश्य राज्य के समृद्ध एवं शक्तिशाली वणिक् समुदाय का सहयोग प्राप्त करना हो सकता है जो मुख्यतः जैन थे। अनवरत युद्धों के कारण राजकोष पर भारी दबाव पड़ा जिसे पूरा करने के लिए जैन समुदाय, जो उस समय उद्योग एवं वाणिज्य की रीढ़ था. से आर्थिक सहायता लेना अनिवार्य हो गया होगा।

13.3.7 अजयपाल

कुमारपाल के बाद उसका भतीजा अजयपाल राजा बना। गुजराती अनुश्रुतियों तथा मुस्लिम स्रोतों से पता चलता है कि उसने कुमारपाल की विष द्वारा हत्या करा दी थी। अजयपाल ने 1176 ई० तक राज्य किया। उसके काल में शैव प्रतिक्रिया हुई। जैन ग्रन्थों के अनुसार उसने कपर्दिन नामक ब्राह्मण, जो दुर्गा का भक्त था, को अपना प्रधानमंत्री नियुक्त किया तथा अन्य शैवों को भी प्रमुख प्रशासनिक पद दिये। उसकी उपाधि 'परममाहेश्वर 'की मिलती है। मेरुतुंग उसकी हिंसक प्रवत्ति का उल्लेख करते हुए लिखता है कि उसने अपने मंत्री कपर्दिन तथा जैन आचार्य रामचन्द्र की हत्या करा दी। इसके अतिरिक्त उसने साधुओं की हत्या करायी तथा जैन मंदिरों को ध्वस्त करवा दिया। सैनिक दृष्टि से उसकी मात्र यही उपलब्धि बताई गई है कि उसने सपादलक्ष के चाहमान शासक सोमेश्वर को पराजित किया था। उसके किसी नौकर ने छुरा भोंककर उसकी हत्या कर दी।

13.3.8 भीमदेव द्वितीय

अजयपाल के पश्चात् मूलराज द्वितीय राजा बना जो उसका पुत्र था। उसका शासन मात्र दो–ढाई वर्ष का ही रहा। उसने किसी तुर्क आक्रान्ता को पराजित किया था। इसे मलेच्छ या हमीर कहा गया है। उसके बाद उसका छोटा भाई भीम द्वितीय राजा बना। आबू तथा नागौर क्षेत्रों पर अधिकार के लिए उसका चाहमान शासकपृथ्वीराज से संघर्ष हुआ। बाद में दोनों के बीच समझौता हो गया। 1178 ई० में मुइजुद्दीन गोरी के नेतृत्व में तुर्कों ने उसके राज्य पर आक्रमण किया किन्तु काशहद के मैदान में भीम ने उन्हें बुरी तरह पराजित कर दिया। इस युद्ध में नकल के चाहमानों ने भीम का साथ दिया था। इसके बाद भी आक्रमण होते रहे। 1178 ई० में उसके राज्य पर मुसलमानों के आक्रमण हुए

जिसका भीम ने सफलतापूर्वक प्रतिरोध किया। 1195 ई० में उसने कुतुबुद्दीन को हराकर उसे अजमेर तक खदेड़ दिया। परन्तु दूसरे वर्ष (1197 ई०) वह पराजित हुआ। उसके पचास हजार सैनिक मार डाले गए तथा बीस हजार को बन्दी बना लिया गया। मुसलमानों ने उसकी राजधानी अन्हिलवाड़ को खूब लूटा तथा उस पर अधिकार किया। किन्तु मुसलमानों का अधिकार क्षणिक रहा. तथा 1201 ई० तक भीम ने पुनः अपना राज्य प्राप्त कर लिया। आबू तथा दक्षिणी राजपूताना में चालुक्यों का शासन स्थापित हो गया तथा फिर लगभग एक शती तक तुर्कों ने वहाँ आक्रमण करने का साहस नहीं किया। मुसलमानों से निपटने के बाद भीम को परमारों, यादवों के साथ–साथ आन्तरिक विद्रोहों का भी सामना करना पड़ा। परमार नरेश सुभठवर्मा ने अन्हिलवाड़ पर आक्रमण किया। किन्तु भीम के सामन्त लवणप्रसाद ने उसे पीछे ढकेल दिया। इसी समय यादव जैतुगी ने भी दक्षिणी गुजरात पर आक्रमण किया। चालुक्य यादवों का सफल प्रतिरोध नहीं कर पाये। किन्तु लवणप्रसाद ने यादव नरेश सिंघण से सौंध कर अपने राज्य को बचा लिया। किन्तु इसके बावजूद भीम की आन्तरिक स्थिति निर्बल पड़ने लगी जिससे अधीन सामन्तों को स्वाधीन होने का सुनहरा अवसर मिल गया। ज्ञात होता है कि 1223 ई० के कुछ पहले ही जैतसिंह नामक उसके ही वंश के किसी संबंधी ने भीम को पदच्युत कर राजधानी पर कुछ समय के लिए अधिकार कर लिया। किन्तु भीम अपने योग्य मन्त्रियों लवणप्रसाद एवं वीर धवल, की सहायता से पुनः राजधानी पर अधिकार करने में सफल हुआ। इससे लवणप्रसाद की महत्वाकांक्षा काफी बढ़ गयी। किन्तु फिर भी उसकी आन्तरिक स्थिति निर्बल पड़ गई जिससे अधीनस्थ सामन्तों को स्वाधीन होने का सुनहरा अवसर उपलब्ध हो गया।

13.4 सारांश

भीमदेव द्वितीय गुजरात के चालुक्य (सोलंकी) राजपूतों का अन्तिम शासक था। इसके पश्चात् उसके मन्त्री लवणप्रसाद ने गुजरात में बघेलवंश की स्थापना की। 1240 ई० के लगभग उसके उत्तराधिकारियों ने अन्हिलवाड़ पर अधिकार कर लिया। बघेलवंश ने गुजरात में तेरहवीं शताब्दी के अन्त तक शासन किया। इसके बाद गुजरात का स्वतन्त्र हिन्दू राज्य दिल्ली सल्तनत में मिला दिया गया।

सोलंकी वंश मध्यकालीन भारत का एक राजपूत राजवंश था। गुजरात के सोलंकी वंश का संस्थापक मूलराज प्रथम था। उसने अन्हिलवाड़ को अपनी राजधानी बनाया था। सोलंकी गोत्र राजपूतों में आता है। सोलंकी राजपूतों का

अधिकार गुर्जर देश और कठियावाड राज्यों तक था। ये 9वीं शताब्दी से 13वीं शताब्दी तक शासन करते रहे। इन्हे गुर्जर देश का चालुक्य भी कहा जाता था। यह लोग मूलतः सूर्यवंशी व्रात्य क्षत्रिय हैं और दक्षिणापथ के हैं परंतु जैन मुनियों के प्रभाव से यह लोग जैन संप्रदाय में जुड गए। उसके पश्चात भारत सम्राट अशोकवर्धन मौर्य के समय में कान्य कुब्ज के ब्राह्मणो ने इन्हें पूनः वैदिकों में सम्मिलित किया।

13.7 अभ्यासार्थ प्रश्न

1. गुजरात के चौलुक्य वंश के स्रोततथा प्रारम्भिक इतिहास के विषय में वर्णन कीजिये।

   .....

   .....

   गुजरात के चौलुक्य वंश के शक्तिशाली शासकों के बारे में विस्तार पूर्वक बताइये।

   .....

   .....

   गुजरात के चौलुक्य वंश के उदय और पतन के संदर्भ में विवेचना कीजिये।

   .....

   .....

13.8 संदर्भ ग्रन्थ

मजूमदार, रमेश चन्द्र : द एज ऑफ इम्पीरियल यूनिटी

दीक्षित, दुर्गा प्रसाद : पॉलिटिकल हिस्ट्री ऑफ द चालुक्य ऑफ बादामी

सी.वी.वैद्य : हिस्ट्री ऑफ मेडिवल हिंदू इंडिया

महाजन, वी.डी. : भारत का राजनीतिक इतिहास

बी.ए. स्मिथ : अर्ली हिस्ट्री ऑफ इंडिया

डी.सी. सरकार : सक्सेसर्स ऑफ द सात वाहनाज इन द लोवर डेक्कन

इकाई 14–चाहमान वंश–स्रोत–सिंहराज, विग्रहराज चतुर्थ एवं पृथ्वीराज तृतीय

इकाई की रूप रेखा

14.0 प्रस्तावना

14.1 उद्देश्य

14.2 ऐतिहासिक स्रोत

14.3 राजनीतिक इतिहास

14.4 चाहमान साम्राज्य का उत्कर्षः सिंहराज

14.5 चौहान सत्ता का चर्मोत्कर्ष विग्रहराज चतुर्थ

14.6 पृथ्वीराज तृतीय

14.7 सारांश

14.8 अभ्यासार्थ प्रश्न

14.9 संदर्भ ग्रन्थ

14.0 प्रस्तावना

बारहवीं शती का सर्वाधिक शक्तिशाली एवं विस्तृत साम्राज्य चाहमानों का था। इसका आविर्भाव जांगल देश में हुआ जिसे बाद में सपादलक्ष कहा गया। इसकी राजधानी अहिच्छत्रपुर में थी। इस स्थान की पहचान मारवाड़ (प्राचीन नागपुर) में की जाती है। पहले बीकानेर राज्य के भू–भाग को जांगल कहा जाता था। संपादलक्ष का अर्थ है सवा लाख ग्रामों वाला क्षेत्र। संभवतः जांगलदेश में इतने ही गाँव थे जिसके कारण यह नाम भी प्रचलित हो गया। यहाँ के पहले राजा का नाम वासुदेव मिलता है जिसने अजमेर के उत्तर में साम्भर (शाकम्भरी) क्षेत्र पर अपना अधिकार कर लिया। दशरथ शर्मा का विचार है कि चाहमान नामक व्यक्ति इस वंश का संस्थापक अथवा आदि पुरुष था। इसी कारण इस वंश को चाहमान अथवा चौहान कहागया। शाकम्भरी नाम स्थानीय देवी का था जिसके चाहमान उपासक थे। साहित्यिक ग्रन्थों–पृथ्वीराज विजय तथा सुरजनचरित, से पता चलता है कि इसी देवी की कृपा से वासुदेव ने साम्भर से क्षेत्र प्राप्त किया था। कथाओं के अनुसार चौहान वंश की उत्तपत्ति ऋषियो द्वारा आबू पर्वत पर किए गए यज्ञ के अग्निकुंड मे से हुयी। इस

राजवंश के संस्थापक राजा वासुदेव चौहान माने जाते हैं।

इतिहासविदों का मत है कि, चौहानवंशीय जयपुर के साम्भर तालाब के समीप में, पुष्कर प्रदेश में और आमेर–नगर में निवास करते थे। सद्य वे उत्तरभारत में विस्तृत रूप से फैले हैं। उत्तरप्रदेश राज्य के मैनपुरी बिजनौर जिले में अथवा नीमराणा राजस्थान में बहुधा निवास करते हैं। ओर नीमराणा से ये उत्तरप्रदेश ओर उत्तर हरियाणा में फैल गये। चौहान क्षत्रिय अपने आप को वचस चौहान कहते हैं।

14.1 उद्देश्य

इस इकाई का मुख्य उद्देश्य आपको चाहमान वंश के इतिहास तथा उसके शासकों के शासनकाल एवं राज्य विस्तार से संबंधित जानकारी प्रदान करना है।

14.2 ऐतिहासिक स्रोत

शाकम्भरी के चाहमान वंश का इतिहास हमें उसके शासकों द्वारा खुदवाये गए लेखों तथा समकालीन साहित्य में ज्ञात होता है। इस वंश के प्रारम्भिक इतिहास तथा वंशावली का ज्ञान हमें विग्रहराज द्वितीय के हर्ष (जयपुर, राजस्थान) प्रस्तर अभिलेख तथा सोमेश्वर के समय के बिजोलिया प्रस्तर अभिलेख से होता है। प्रथम की तिथि विक्रम संवत 1030 अर्थात् 973 ई० तथा द्वितीय की तिथि विक्रम संवत 1226 अर्थात 1169 ई० है। इनमें इस वंश के राजाओं की राजनैतिक तथा सांस्कृतिक उपलब्धियों का विवरण प्राप्त होता है। विग्रहराज चतुर्थ के समय का दिल्ली शिवालिक स्तम्भलेख, जिसकी तिथि विक्रम संवत 1220 अर्थात 1164 ई0 है, दिल्ली तथा समीपवर्ती क्षेत्रों में उसकी विजय की सूचना देता है।

चाहमान युग की साहित्यिक रचनाओं में सर्वप्रथम उल्लेख जयानक भट्ट द्वारा रचित 'पृथ्वीराजविजय' नामक महाकाव्य का किया जा सकता है। इसकी रचना पृथ्वीराज तृतीय के समय में की गई थी। इसमें वर्णित घटनाओं की पुष्टि अभिलेखों से भी हो जाती है। इस प्रकार यह ग्रन्थ इस काल की घटनाओं की जानकारी का प्रमुख स्रोत है। अन्य रचनाओं में जयचन्द्र का हम्मीर–महाकाव्य है, जो चाहमान वंश के इतिहास तथा परम्पराओं का आदिकाल से विवरण देता है, किन्तु इसका विवरण पृथ्वीराजविजय के विवरण जैसा प्रामाणिक नहीं है।चन्दबरदाई के पृथ्वीराज रासो का भी महत्वपूर्ण स्थान है। यद्यपि यह ग्रन्थ अतिरंजित आख्यानों से पूर्ण है, तथापि चाहमान तथा अन्य समकालीन राजपूत

वंशों इतिहास से सम्बन्धित कुछ उपयोगी बातें इससे ज्ञात हो जाती हैं। इसी प्रकार का दूसरा ग्रन्थ 'बीसलदेवरासो' है जो इस काल के सांस्कृतिक इतिहास जानने का प्रमुख साधन है।

अभिलेखों तथा साहित्यिक ग्रन्थों के अतिरिक्त समकालीन मुसलमान लेखकों के विवरण भी चाहमान इतिहास से सम्बन्धित कुछ सूचनाएँ प्रदान करते हैं। इनमें अलबरूनी, उत्पी, हसननिजामी, मिनहाजुद्दीन, फरिश्ता आदि के नाम उल्लेखनीय है। इनके विवरण से हम चाहमान तुर्क संघर्ष के विषय में ज्ञात करते हैं। साथ ही साथ ये लेखक पूर्व मध्ययुगीन समाज तथा संस्कृति का भी न्यूनाधिक विवरण देते हैं।

14.3 राजनीतिक इतिहास

प्राचीन काल में चाहमान वंश की कई शाखाएँ थी, जो कन्नौज के प्रतिहारों की सामन्त थी। इनमें शाकम्भरी वाली शाखा ने ही सामन्त स्थिति से ऊपर उठकर सार्वभौम स्थिति प्राप्त किया था। वासुदेव के बाद सामन्तराज शासक बना। इन दोनों के संबंधों के विषय में कुछ भी पता नहीं है। बिजौलिया लेख तथा पृथ्वीराज विजय में कहा गया है कि अनेक सामन्त उसकी सत्ता स्वीकार करते थे। इससे ऐसा प्रतीत होता है कि वह कुछ शक्तिशाली राजा था जिसने अपने राज्य का विस्तार किया। उसका उत्तराधिकारी नरदेव अथवा पूर्णतल्ल था, जो एक साधारण शासक था। उसे 'नृप' कहा गया है। उसके पश्चात् सामन्त का पुत्रअजयराज अथवा जयराज राजा बना। कुछ विद्वानों के अनुसार उसने अजमेर के दुर्ग (अजयमेरु) का निर्माण करवाया तथा नगर की स्थापना की। उसके बाद विग्रहराज, चन्द्रराज तथा गोपेन्द्रराज बारी–बारी से शासक बने जिनकी उपलब्धियां शून्य है। गोपेन्द्र का पुत्र तथा उत्तराधिकारी दुर्लभराज प्रथम प्रतिहार नरेश वत्सराज का सामन्त था तथा अपने स्वामी की ओर से त्रिकोण संघर्ष में भाग लिया था। पृथ्वीराज विजय में उसे चन्द्रराज का पुत्र कहा गया है। ज्ञात होता है कि उसने गौड़ नरेश धर्मपाल को युद्ध में पराजित किया तथा गौड़ देश का उपभोग किया था।

दुर्लभराज का पुत्र गूवक उसके बाद राजा बना। वह एक शक्तिशाली राजा था जिसके विषय में हर्ष अभिलेख का कथन है कि उसने नागावलोक की सभा में वीर के रूप में प्रसिद्धि पाई थी (श्रीमन्त्रागावलोक प्रवरनृपसभालब्धवीर प्रतिष्ठः)। यह नागावलोक निश्चयतः प्रतिहार वत्सराज का पुत्र और उत्तराधिकारी नागभट्ट द्वितीय था। संभव है उसने भी नागभट्ट की युद्धों में सहायता कर योद्धा के रूप में अपने को प्रतिष्ठित कर दिया हो। उसने श्रीहर्षदेव के मंदिर का

निर्माण करवाया था। उसका पुत्र चन्द्रराज द्वितीय (शशिनृप) उसका उत्तराधिकारी हुआ जिसकी कोई उपलब्धि नहीं है। किन्तु उसका पुत्र गूवक द्वितीय अपने पितामह के समान वीर और साहसी था। उसने अपनी बहन कलावती का विवाह भोज के साथ करके प्रतिहारों के साथ अपने वंश का घनिष्ठ संबंध स्थापित कर दिया। इस संबंध ने भोज की प्रतिष्ठा में भी वृद्धि कर दी जैसा कि प्रतापगढ़ लेख से सूचित होता है। गूवक द्वितीय के बाद उसका पुत्र चन्दनराज राजा बना। हर्ष प्रस्तर लेख से पता चलता है कि उसने युद्ध में तोमर राजकुमार रुद्र को पराजित कर मार डाला था। (हत्वा रुद्रेन भूपम् समरभुवि बलाद्येन लब्धा जयश्रीः)। यह संभवतः दिल्ली क्षेत्र का शासक था। इसके साथ ही चाहमानों तथा तोमरों के बीच दीर्घकालीन संघर्ष का सूत्रपात हुआ। रुद्र की महारानी रुद्राणी अथवा आत्मप्रभा शिव की महान् भक्त थी। उसने पुष्कर झील के किनारों पर एक हजार शिवलिंगों की स्थापना करवाई। अपने नेक कार्यों के कारण वह 'योगिनी' नाम से भी विख्यात हो गयी।

चन्दनराज का पुत्र और उत्तराधिकारी वाक्पतिराज अपने पिता के उपरान्त राजा बना। पृथ्वीराजविजय में उसे 188 विजयों का श्रेय प्रदान किया गया है। इस समय राष्ट्रकूटों के आक्रमण के कारण प्रतिहार साम्राज्य की स्थिति निर्बल पड़ गई थी। वाक्पतिराज ने इसका लाभ उठाते हुए अपनी शक्ति का विस्तार करना प्रारम्भ कर दिया। इस क्रम में उसने तंत्रपाल को पराजित किया। हर्ष लेख में कहा गया है कि वाक्पति ने अपनेस्वामी की आज्ञा से अनन्त देश की ओर तेजी से उदण्डता के साथ आते हुए तंत्रपाल को वापस लौटने के लिए मजबूर किया।' यह तंत्रपाल प्रतिहार नरेश महीपाल का कोई अधिकारी या सामन्त प्रतीत होता है। इससे ऐसा प्रतीत होता है कि वाक्पतिराज की शक्ति बढ़ती जा रही थी और उसके पास तीव्रगामी अश्वों की एक सबल सेना थी। अब वह सामन्त स्थिति से छुटकारा पाने का प्रयास भी कर रहा था। उसने अपनी स्थिति मजबूत करने के लिए चन्देल नरेश हर्ष के साथ वैवाहिक संबंध स्थापित कर लिए। बिजौलिया लेख उसे 'विन्ध्यपति' कहता है। संभव है उसने मेवाड़ स्थिति बिजौलिया को जीता हो जिसे 'विन्ध्यावती' भी कहा जाता था। इस प्रकार वाक्पतिराज एक शक्तिशाली शासक था। सर्वप्रथम उसी ने अपने वंश में 'महाराज' की उपाधि धारण की। वह शिव का उपासक था जिसने पुष्कर में एक भव्य शैवमंदिर का भी निर्माण करवाया था। उसने चाहमान वंश को इतना शक्तिशाली बना दिया कि वह प्रतिहार सत्ता की अधीनता से मुक्त होने में समर्थ हो गया।

14.4 चाहमान साम्राज्य का उत्कर्षः सिंहराज

दसवीं शताब्दी के मध्य से प्रतिहारों की शक्ति का अंत प्रारम्भ हो गया। देवपाल (948–950 ई०) इस वंश का अन्तिम महान् शासक था। उसी के राज्यकाल अथवा उसके तुरन्त बाद ही चाहमान नरेश सिंहराज ने प्रतिहारों की अधीनता से मुक्त होने का जोरदार प्रयास किया तथा स्वयं महाराजाधिराज की उपाधि धारण कर ली। उसके अधिपति का इतिहास तथा संस्कृति देवपाल अथवा विजयपाल ने अपनी सत्ता पुनः स्वीकृत कराने के उद्देश्य से जो सेना भेजी, उसे सिंहराज ने पराजित किया तथा तोमरवंशी सलवण की हत्या कर उसके कई सहायकों को बन्दी बना लिया। उनके बचाव का कोई उपाय न देखकर प्रतिहार सम्राट को स्वयं उसके सम्मुख उपस्थित होकर उनकी मुक्ति के लिए निवेदन करना पड़ा। हर्ष प्रस्तर लेख में यह विवरण सुरक्षितहै। इससे स्पष्ट संकेत मिलता है कि चाहमान संप्रभु साम्राज्य स्थापित करने की दिशा में तेजी से अग्रसर हो चुके थे तथा प्रतिहार नरेश उन्हें नियंत्रित करने में असमर्थ थे। दसवीं शती के अन्त तक आते–आते चाहमानों ने प्रतिहार सत्ता का जुआ पूर्णतया उतार फेंका।

सिंहराज के बाद उसका पुत्र तथा उत्तराधिकारी विग्रहराज द्वितीय हुआ। सच्चे अर्थों में वही अपने वंश का स्वतंत्र राजा था। हर्ष लेख में कहा गया है कि उसने अपने वंश की राजलक्ष्मी का उद्धार किया था। 'पृथ्वीराजविजय' तथा 'प्रबन्धचिन्तामणि' से ज्ञात होता है कि उसने गुजरात के चालुक्य शासक मूलराज प्रथम के ऊपर आक्रमण किया। मूलराज पराजित हुआ तथा उसने भाग कर कन्थादुर्ग में शरण ली। विग्रहराज उसके राज्य से होता हुआ भृगुकच्छ गया, जहाँ उसने आशापुरी देवी का मंदिर बनवाया। 'प्रबन्धचिन्तामणि' से पता चलता है कि इसी समय तिलंग देश के तैलिप (कल्याणी के चालुक्य नरेश तैल द्वितीय) की सेना ने वारप्प के नेतृत्व में गुजरात पर आक्रमण किया था। मूलराज दोनों का सामना करने में विफल रहा तथा उसने भागकर कन्थादुर्ग में शरण ली थी। हम्मीर काव्य से पता चलता है कि मूलराज, विग्रहराज द्वारा मार डाला गया। लेकिन यह कथन सही नहीं लगता। द्वाश्रयकाव्य से पता चलता है कि मूलराज तथा उसके पुत्र चामुण्ड ने वारण्य पर आक्रमण कर उसे पराजित किया तथा मार डाला था। ऐसा प्रतीत होता है कि मूलराज ने विग्रहराज के सम्मुख आत्मसमर्पण किया तथा इसके बाद दोनों ने मिलकर लाट प्रदेश के शासक वारप्प पर आक्रमण कर उसे मार डाला। इसी विजय के उपलक्ष्य में विग्रहराज ने भृगुकच्छ में मंदिर का निर्माण करवाया होगा। इस प्रकार विग्रहराज एक शक्तिशाली राजा था, जिसने दक्षिण की ओर नर्मदा तक सैनिकअभियान

किया। उसके अश्वशक्ति काफी बड़ी थी। आत्मसमर्पण करने वाले शत्रुओं के प्रति वह बड़ा उदार एवं सहिष्णु था। पृथ्वीराजविजय से पता चलता है कि उसने श्री हर्षदेव के मंदिर के निर्वाह के लिए क्षत्रचर एवं शंकरंक नामक दो गाँव दान में दिए थे।

विग्रहराज द्वितीय के बाद निम्न शासकों ने शासन किया –

दुर्लभराज द्वितीय

गोविन्दराज द्वितीय

वाक्पतिराज द्वितीय

वीर्याराम

चामुण्डराज

दुर्लभराज तृतीय

विग्रहराज तृतीय

पृथ्वीराज प्रथम

अजयराज शासक

अर्णोराज हुआ

अर्णोराज के चार पुत्रों में सबसे शक्तिशाली विग्रहराज चतुर्थ सिद्ध हुआ जिसने अपने अन्य भाईयों को अपदस्थ कर गद्दी प्राप्त किया।

14.5 चौहान सत्ता का चर्मोत्कर्ष विग्रहराज चतुर्थ

चौहान वंशी राजाओं में विग्रहराज चतुर्थ (1153–1163 ई०) सर्वाधिक शक्तिशाली शासक था। उसका शासन चाहमान वंश में एक युगान्तकारी अध्याय है। उसने अपने समकालीन उत्तर भारत के प्रायः समस्त राजवंशों को पराजित कर अपने वंश को सार्वभौम स्थिति में ला दिया। परमार साम्राज्य के विघटन के पश्चात् देश की पश्चिमोत्तर सीमा को रक्षा का भार चाहमानों पर ही आ पड़ा तथा विग्रहराज ने सफलतापूर्वक उसका निर्वहन किया। उसने लाहौर के यामिनी वंश की शक्ति का भी विनाश किया तथा उसके बारम्बार होने वाले आक्रमणों से देश की रक्षा की।

विग्रहराज चतुर्थ की विजयों में सबसे महत्त्वपूर्ण विजय दिल्ली की विजय है। यहाँ तोमरवंशी शासकों का शासन था। बिजोलिया लेख से इस विजय का

पता चलता है। दिल्ली के तोमर शासकों के विरुद्ध चौहान शासकों का संघर्ष बहुत पहले से ही चल रहा था, किन्तु अभी तक उन्हें सफलता नहीं मिली थी। तोमर वंश की स्वाधीनता समाप्त कर उसे अपना सामंत बना लेना ही विग्रहराज चतुर्थ की सबसे बड़ी सफलता थी। दशरथ शर्मा के अनुसार पराजित तोमर वंश राजा तंवर था।

एक लेख के अनुसार विग्रहराज चतुर्थ ने ढिल्लिका तथा असिका पर अधिकार किया था। यहाँ ढिल्लिका से तात्पर्य दिल्ली तथा असिका से तात्पर्य हाँसी से है। पहले तोमर प्रतिहारों की अधीनता स्वीकार करते थे। प्रतिहार साम्राज्य के पतनोपरांत तोमर कुछ समय के लिये स्वतंत्र हो गये। गहड़वाल लेख चंद्रदेव के समय दिल्ली पर अधिकार का दावा करते हैं। तोमरों के साथ 2 गहड़वालों को भी विग्रहराज चतुर्थ के हाथों पराजित होना पड़ा था। अब तोमर राज्य चाहमानों के अधीन एक सामंत राज्य बन गया था। विग्रहराज को अपने समकालीन चालुक्य तथा परमार राजाओं के विरुद्ध भी सफलता मिली। उसके पिता अर्णोराज को चालुक्य शासक कुमारपाल के हाथों पराजित होना पड़ा था।

अब तोमर राज्य चाहमानों के अधीन एक सामंत राज्य बन गया। विग्रहराज को अपने समकालीन चालुक्य तथा परमार राजाओं के विरुद्ध सफलता मिली। उसके पिता अर्णोराज को चालुक्य शासक कुमारपाल के हाथों पराजित होना पड़ा था। अतः इस कलंक को धोने के लिये विग्रहराज ने चालुक्यों के विरुद्ध संघर्ष छेड़ दिया। उसने कुमारपाल को पराजित कर मेवाड तथा मारवाड़ पर अपना अधिकार कर लिया। नाडोल, चित्तौड तथा जालौर पर भी उसने अपना अधिकार सुदृढ़ कर लिया। इन स्थानों में चालुक्यों के सामंत शासन कर रहे थे। चित्तौड़ में सज्जन नामक सामंत था. जिसे विग्रहराज के आक्रमण में मार डाला गया। नाडोल पर आक्रमण कर उसने कुंतपाल को हराया तथा पूरे प्रदेश को रौंद डाला। जालौर को जला दिया तथा पल्लिका को तहस नहस कर दिया। इसकी स्थिति मथुरा तथा भरतपुर के बीच बताई गयी है।

विग्रहराज के दिल्ली–शिवालिक लेख से पता चलता है, कि उसने तुर्क आक्रमणकारी से देश की रक्षा की थी। उसका समकालीन लाहौर का तुर्क शासक खुसरुशाह था, जिसने उसके राज्य पर आक्रमण किया। पता चलता है, कि तुर्क आक्रमणकारी बघेरा तक बढ़ आये थे। यह स्थान राजस्थान में अजमेर के समीप स्थित था। किन्तु विग्रहराज के भीषण प्रतिरोध के कारण उन्हें वापस लौटना पड़ा। ऐसा लगता है, कि उसने तुर्कों के कुछ प्रदेश भी जीत लिये।

बिजौलिया लेख में उल्लेखित हांसी ऐसा ही प्रदेश था, जहां भारत में मुस्लिम राज्य की बाहरी चौकी थी। ललितविग्रहराज नाटक में कहा गया है, कि विग्रहराज ने मित्रों, ब्राह्मणों तीर्थो तथा देवालयों की रक्षा के निमित्त तुर्की से युद्ध किया था।

विग्रहराज चतुर्थ के समय में चौहानों का काफी विस्तृत साम्राज्य था। इसमें सतलज तथा यमुना नदियों के बीच स्थित पंजाब का एक बड़ा भाग, उत्तर पूर्व में उत्तरी गंगा घाटी का एक भाग भी सम्मिलित था। इस प्रकार विग्रहराज उत्तर भारत का वास्तविक सार्वभौम सम्राट था, जिसने अपने वंश की प्रतिष्ठा को चरम सीमा पर पहुंचाया।

विग्रहराज चतुर्थ ने परमभट्टारक, परमेश्वर, महाराजाधिराज जैसी उपाधियां धारण की। विग्रहराज चतुर्थ इतिहास में 'बीसलदेव' नाम से प्रसिद्ध है।

जयानक नामक विद्वान विग्रहराज चतुर्थ को कविबान्धव कहता है, जिसके निधन से यह शब्द ही विलुप्त हो गया। सोमदेव ने उसे विद्वानों में सर्वप्रमुख कहा है। उसने हरिकेलि नामक नाटक की रचना की। इसकी कुछ पंक्तियां अजमेर स्थित ढाई दिन का झोपड़ा की सीढ़ियों पर उत्कीर्ण हैं। यह नाटक भारवि के किरातार्जुनीयम के अनुकरण पर लिखा गया है।

विग्रहराज चतुर्थ स्वयं विद्वान होने के साथ साथ विद्वानों का आश्रयदाता भी था, उसके दरबार में सोमदेव नामक विद्वान निवास करता था। सोमदेव ने ललितविग्रहराज नामक ग्रंथ लिखा। इसमें उसने अपने आश्रयदाता की प्रशंसा की है। इस नाटक की पंक्तियों को पाषाण खंडों पर उत्कीर्ण कराकर अजमेर के सरस्वती मंदिर में रखा गया था, जिसे कालांतर में तुर्क आक्रमणकारियों ने ध्वस्त कर दिया। वह कला और स्थापत्य को पोषक भी था। उसने अजमेर नगर को भव्य कलाकृतियों एवं स्मारकों से अलंकृत करवाया। इनमें सरस्वती मंदिर का निर्माण सबसे अधिक उल्लेखनीय है, जिसे भारतीय कला की अत्युत्कृष्ट रचनाओं में स्थान दिया गया है।

विग्रहराज चतुर्थ ने बीसलसर नामक झील का निर्माण करवाया था। इस झील को आधुनिक काल में विस्ल्या अथवा बिसलिया झील कहा जाता है। यह झील पुष्कर झील के समान है। विग्रहराज चतुर्थ के बाद क्रमशः अपरगांगेय, पृथ्वीराज द्वितीय तथा सोमेश्वर शासक हुये।

14.6 पृथ्वीराज तृतीय

सोमेश्वर के पश्चात् उसकी रानी कर्पूरदेवी से उत्पन्न पुत्र पृथ्वीराज

चौहान वंश का सबसे प्रसिद्ध शासक हुआ। वह पृथ्वीराज तृतीय कहा जाता है। कथाओं में उसे 'रायपिथौरा' कहा गया है। प्रसिद्ध कवि चन्दबरदाई उसकी राजसभा में निवास करता था जिसने पृथ्वीराज रासो नामक महाकाव्य की रचना की थी। ज्ञात होता है जब पृथ्वीराज अवयस्क था तभी उसके पिता की मृत्यु हो गयी। अतः उसकी माता ने योग्य मन्त्री कैम्बास की सहायता से संरक्षिका के रूप में कुछ समय तक शासन का सफलतापूर्वक संचालन किया। इसके अतिरिक्त उसके चाचा भुवनेकमल्ल ने भी प्रशासनिक कार्यों में उसे सहयोग प्रदान किया। हम्मीरकाव्य तथा पृथ्वीराज रासो से पता चलता है कि पृथ्वीराज को अत्यन्त निपुणता के साथ विविध विद्याओं और कलाओं की शिक्षा प्रदान की गयी। धनुर्विद्या में उसने विशेष निपुणता प्राप्त की तथा अपने समय का वह सर्वश्रेष्ठ धनुर्धर था। 1180 ई० के लगभग वह वयस्कता को प्राप्त हुआ तथा शासन का भार उसने स्वतन्त्र रूप से ग्रहण किया। राजा होने के पश्चात् वह अपनी शक्ति एवं साम्राज्य के विस्तार में जुट गया।

अपने साम्राज्य विस्तार एवं शक्ति को सुदृढ़ करने की प्रक्रिया में सर्वप्रथम उसकी भिड़न्त अपने चाचा नागार्जुन से हुई। नागार्जुन विग्रहराज चतुर्थ का पुत्र तथा अपरगांगेय का कनिष्ठ भाई था जो पृथ्वीराज की अल्पायु का लाभ उठाकर राजगधी पर अधिकार करना चाहता था। पृथ्वीराजविजय से पता चलता है कि उसने गुडपुर नगर पर अधिकार कर लिया। कुछ स्रोतों में उसे अजमेर का भी शासक बताया गया है। इस स्थान की पहचान हरियाणा के गुड़गांव से की गई है जो पहले तोमरों के अधिकार में था। पृथ्वीराज अत्यन्त कुद्ध हुआ तथा उसने एक बड़ी सेना लेकर गुडपुर के दुर्ग का घेरा डाला। नागार्जुन जान बचाकर कायरों की भाँति भाग खड़ा हुआ किन्तु उसके सेनापति देवभट तथा अन्य अधिकारियों ने युद्ध जारी रखा। पृथ्वीराज ने उन सबको न केवल परास्त किया, अपितु उसके सभी सहयोगियों को मौत के घाट उतार दिया। शत्रुओं के सिर काट करअजमेर के दुर्ग के बाहर लटका दिए गए। ऐसा शायद भविष्य में विद्रोहियों को चेतावनी देने के लिए किया गया। हिन्दू शासकों में ऐसे क्रूरतम प्रतिशोध के उदाहरण बहुत कम मिलते हैं।

इसके पश्चात् पृथ्वीराज ने मदानक राज्य पर आक्रमण कर उसे अपने अधीन कर लिया। इसके बाद उसका जेजाकभुक्ति के चन्देल वंश के साथ भी संघर्ष हुआ। पृथ्वीराज एक महान् योद्धा था। 1182 ई० में चन्देल वंश के राजा परमर्दिदेव को पराजित कर उसकी राजधानी महोबा पर उसने अधिकार कर लिया। रासो से पता चलता है कि पृथ्वीराज ने विजय करते हुए कालंजर के प्रसिद्ध दुर्ग का घेरा डाला। वहाँ चन्देल राजा परमर्दि पकड़ा गया तथा बन्दी

बनाकर उसके सामने लाया गया। वहाँ से किसी प्रकार भाग कर उसने आत्महत्या कर लिया। यह भी पता चलता है कि महोबा के युद्ध में गहड़वाल शासक जयचन्द्र ने आल्हा तथा ऊदल नामक बनाफर सरदारों के साथ चन्देल नरेश की सहायता की थी। किन्तु पृथ्वीराज ने इन सबको करारी मात दी। पृथ्वीराज का मदनपुर से प्राप्त लेख (1182 ई०) जेजाकभुक्ति पर उसके आक्रमण तथा उसके लूटे जाने का वर्णन प्रस्तुत करता है। ऐसा प्रतीत होता है कि पृथ्वीराज स्थायी रूप से चन्देलों के भूभाग पर अधिकार करने में सफल नहीं हुआ तथा शीघ्र ही महोबा और कालंजर के ऊपर चन्देलों का आधिपत्य हो गया। कालिंजर लेख (1201 ई०) के आधार पर यह निष्कर्ष निकलता है जिसमें परमर्दि को 'दक्षिणाधिपति' कहा गया है। संभव है ताराइन के द्वितीय युद्ध के तत्काल बाद ही परमर्दि ने महोबा तथा कालंजर के ऊपर अपना अधिकार कर लिया हो।

पृथ्वीराज रासो में यह भी उल्लेख मिलता है कि पृथ्वीराज ने गुजरात के चालुक्य शासक भीम को मार डाला। बताया गया है कि पृथ्वीराज के चाचा कान्हदेव ने भीमदेव के चाचा सारंगदेव के सात पुत्रों कोउस समय मार डाला था जब वे चाहमान दरबार में टिके हुए थे। इस पर भीम अत्यन्त क्रोधित हुआ जिसने प्रतिशोध में चाहमान राज्य पर आक्रमण कर दिया। उसने पृथ्वीराज के पिता सोमेश्वर की हत्या कर दी तथा नागोर के दुर्ग पर अधिकार कर लिया किन्तु पृथ्वीराज ने गुजरात नरेश भीम पर आक्रमण कर उसकी हत्या की तथा नागोर पर पुनः अधिकार कर लिया। लेकिन यह विवरण ऐतिहासिक नहीं लगता। पृथ्वीराजविजय से ही पता चलता है कि सोमेश्वर की स्वाभाविक मृत्यु हुई तथा चालुक्य भीम, जैसा कि कादी दानपत्र से सूचित होता है, कम से कम 1238 ई० तक शासन करता रहा। तथापि चालुक्य चाहमान संघर्ष की घटना सही प्रतीत होती है। प्रहलादनदेव रचित 'पार्थपराक्रमव्यायोग' नाटक से पता लगता है कि आबू के चालुक्यों के परमार सामन्त धारावर्ष ने जांगल देश के राजा के रात्रि में किए गए आक्रमण को विफल कर दिया था। जिनपति सूरि के खतरगच्छपट्टावली से भी इसका समर्थन होता है जहां बताया गया है कि दोनों वर्गों का युद्ध 1187 ई० के पूर्व ही समाप्त हो गया था। दोनों राजवंशों के युद्ध का कोई परिणाम नहीं निकला तथा परस्पर संधि हो गयी। चालुक्य नरेश का प्रधान मन्त्री प्रतिहार जगदेव चाहमान नरेश से शत्रुता मोल नहीं लेना चाहता था और वह संधि को बनाए रखने का बहुत इच्छुक था।

पृथ्वीराज जैसे साम्राज्यवादी शासक के समक्ष कन्नौज का गहड़वाल नरेश जयचन्द्र एक बड़ी चुनौती बना हुआ था। वह भी समान रूप से

महत्वाकांक्षी था तथा पृथ्वीराज को अपनी प्रभुसत्ता के मार्ग में बड़ी बाधा मानता था। ऐसी दशा में दोनों के बीच संघर्ष अवश्यंभावी हो गया। इस संघर्ष का मुख्य कारण दिल्ली भूभाग था जिस पर दोनों अधिकार करना चाहते थे। गहड़वालों तथा चाहमानों में शत्रुता पहले से ही विद्यमान थी। चाहमान नरेश विग्रजराज चतुर्थ ने जयचन्द्र के पिता विजयचन्द्र को पराजित कर दिल्ली प्रदेश पर अधिकार कर लिया था। अतः यह स्वाभाविक था कि जयचन्द्र के मन में अपने पैतृक प्रदेश को पुनः हस्तगत करने की भावना जागृत होती। संयोगवश दोनों में संघर्ष की स्थिति शीघ्र उपस्थित हुई। पृथ्वीराज रासो से पता चलता है कि जयचन्द्र की रूपवती कन्या संयोगिता पृथ्वीराज से प्रेम करने लगी जयचन्द्र ने राजसूय यज्ञ तथा स्वयंवरका आयोजन किया। इस अवसर पर पृथ्वीराज को नीचा दिखाने के लिए उसने उसे आमंत्रित नहीं किया। पृथ्वीराज स्वयंमेव कुछ चुने हुए सहायकों के सात छद्म रूप में कन्नौज जा पहुंचा तथा संयोगिता को बलपूर्वक भरी सभा से उठा ले आया। इस प्रक्रिया में उसके कुछ विश्वस्त एवं वहादुर सैनिकों को प्राण गंवाने पड़े। इससे दोनों के पहले से ही बिगड़े संबंध और भी कटुतापूर्ण हो गए। अनेक विद्वान् पृथ्वीराज संयोगिता कथा को ऐतिहासिक नहीं मानते। किन्तु हम इसे कोरी कल्पना नहीं कह सकते क्योंकि इसका उल्लेख समकालीन तथा उत्तरकालीन अनेक ग्रन्थों में हुआ है। मुस्लिम लेखक भी इसकी ओर संकेत करते हैं। ऐसा प्रतीत होता है। कि यह घटना तराइन के प्रथम युद्ध (1191 ई०) के बाद घटित हुई थी। पृथ्वीराज ने जयचन्द्र की शक्ति और प्रतिष्ठा दोनों को धूमिल कर दिया। अब जयचन्द्र पृथ्वीराज का पक्का शत्रु बन गया तथा अपने अपमान का बदला लेने का अवसर ढूंढ़ने लगा। एक प्रचलित मत के अनुसार उसने स्वयं मोहम्मद गोरी के पास पृथ्वीराज पर आक्रमण करने तथा उसे सहायता देने के वचन के साथ अपना निमंत्रण भेजा था। इसका समर्थन तो पुष्ट प्रमाणों से नहीं होता लेकिन पुरातन प्रवन्धसंग्रह से पता चलता है कि जब मोहम्मद गोरी के हाथों पृथ्वीराज की तराइन के द्वितीय युद्ध में पराजय की बात जयचन्द्र ने सुनी तो उसने अपनी राजधानी में खुशियां मनायी।

मोहम्मद गोरी का आक्रमण तथा चाहमान साम्राज्य का अंत

पृथ्वीराज तृतीय के शासन काल की अति महत्त्वपूर्ण घटना गोरी का आक्रमण है। उल्लेखनीय है कि उसके पूर्वज विग्रहराज चतुर्थ ने कई बार म्लेच्छों (मुसलमानों) को पराजित कर अपनी वीरता का परिचय दिया था। हम्मीर महाकाव्य से पता चलता है कि पृथ्वीराज ने भी मुसलमानों को मिटा देने की प्रतिज्ञा कीथी। लेकिन राजनीतिक सूझ–बूझ और दूरदर्शिता की कमी के

कारण वह अपने उद्देश्य की पूर्ति में असफल रहा। गजनी में अपनी स्थिति मजबूत कर लेने के बाद मोहम्मद गोरी ने 1178 ई० में गुजरात पर आक्रमण किया। चालुक्य नरेश भीम ने उसे काशहद के युद्ध में बुरी तरह पराजित कर दिया। इस समय पृथ्वीराज तटस्थ रहा तथा उसने चालुक्य नरेश की कोई सहायता नहीं की। इसके पूर्व गोरी ने नाडोल के चाहमान राज्य पर भी आक्रमण कर लूट–पाट किया था। किन्तु पृथ्वीराज ने उन्हें भी कोई सहायता नहीं दी। गोरी ने भारतीय शासकों के आपसी मनमुटाव एवं संघर्ष का लाभ उठाते हुए अपना अभियान प्रारम्भ किया। पृथ्वीराजविजय से पता चलता है कि गुजरात पर आक्रमण के पूर्व उसने पृथ्वीराज के पास समर्पण करने तथा उसे अपना सम्राट मान लेने का संदेश एक दूत के माध्यम से भिजवाया था। इस पर पृथ्वीराज अत्यन्त कुपित हुआ तथा उसने गोरी की प्रतिष्ठा धूल में मिला देने की प्रतिज्ञा की। भारतीय स्रोतों से पता चलता है कि 1191 ई० में तराइन के प्रथम युद्ध के पूर्व दोनों में कई युद्ध हुए थे तथा हर बार तुर्क आक्रान्ता को मुंह की खानी पड़ी थी। इसके विपरीत मुसलमान लेखक केवल दो युद्धों का ही उल्लेख करते हैं।

1186 ई० में पंजाब पर अधिकार कर लेने के बाद पृथ्वीराज तथा मोहम्मद गोरी की सीमाएं एक दूसरे से मिलने लगी। गोरी को पता था कि अजमेर के चाहमानों को पराजित किए बिना भारत विजय का उसका स्वप्न पूरा नहीं हो सकता। अतः उसने बाद के छः वर्षों को चाहमान शक्ति को कुचलने की योजना बनाने तथा तदनुसार तैयारी करने में ही व्यतीत किए। दोनों की सेनाओं के बीच 1191 ई० में तराइन (हरियाणा के करनाल जिले में स्थित आधुनिक तरावड़ी) के मैदान में खुला संघर्ष हुआ जिसे तराइन का प्रथम युद्ध कहा जाता है। सभी स्त्रोतों भारतीय तथा विदेशी से पता चलता है कि इस युद्ध में पृथ्वीराज ने मोहम्मद गोरी को बुरी तरह पराजित किया। संभव है इसके पूर्व भी पृथ्वीराज ने गोरी को पराजित किया हो। पृथ्वीराज के सामन्त गोविन्दराज ने तराइन के प्रथम युद्ध में गोरी को बुरी तरह घायल कर दिया। उसको सेना में भगदड़ मच गई तथा तुर्की सैनिक भागते हुए अपने क्षेत्र मुल्तान में सुरक्षित पहुंच गए। इस युद्ध में पृथ्वीराज तथा उसकेबहादुर राजपूत सरदारों एवं सैनिकों ने अद्भुत रणकुशलता एवं सैनिक चातुर्य प्रदर्शित किया। पृथ्वीराज ने घोर अदूरदर्शिता का परिचय दिया तथा भागती हुई मुसलमानी सेना का उसने पीछा नहीं किया। मिनहाजुद्दीन हमें बताता है कि पराजित होने के बाद गोरी की सेना बिना किसी कष्ट के स्वदेश लौट गई तथा चौहानों ने उसे परेशान नहीं किया। वस्तुतः यह चाहमान सम्राट की सामरिक दृष्टि से सबसे बड़ी भूल ही

कही जायेगी कि उसने शौर्य भावना के चक्कर में अपने शत्रु की स्थिति से पूरा लाभ नहीं उठाया। इस युद्ध के बाद पृथ्वीराज उसकी ओर से निश्चिंत होकर रंगरेलियां मनाने में व्यस्त एवं मस्त हो गया। वह अपनी नवविवाहिता पत्नी संयोगिता से इतना आसक्त हो गया कि प्रशासनिक कार्यों के लिए उसके पास समय नहीं रहा। अब वह विजेता तथा कूटनीतिज्ञ न होकर सुरासुन्दरी का शौकीन हो गया। दूसरी ओर उसका प्रतिद्वन्दी मोहम्मद गोरी अपनी पराजय का बदला लेने एवं अपमान धोने के लिए निरन्तर तैयारियां करता रहा। इस बीच पृथ्वीराज से अपमानित कई भारतीय राजाओं ने भी उससे भेंट कर सहायता का आश्वासन दिया। जमून के राजा विजयदेव ने अपने पुत्र नरसिंहदेव को गोरी की सेना के साथ लड़ने के लिए प्रस्तुत किया। घर्तक के राजा ने भी उसकी सहायता की बहुत संभव है कि गहड़वाल शासक जयचन्द्र की सहानुभूति भी उसके साथ रही हो जिसका उल्लेख रासो के रचयिता ने किया है। पृथ्वीराज की इस उदासीनता का परिणाम घातक निकला। गोरी को शक्ति जुटाने का पूरा मौका मिल गया तथा दूसरी बार उसने अधिक शक्ति के साथ पुनः आक्रमण किया। तराइन के द्वितीय युद्ध (1192 ई०) में पृथ्वीराज पराजित हुआ और उसकी निर्दयतापूर्वक हत्या की गयी। मुसलमानों ने राजपूत सेना का भीषण संहार किया तत्पश्चात् उसकी राजधानी अजमेर को आक्रान्ताओं ने ध्वस्त कर दिया तथा वहाँ के निवासियों को मौत के घाट उतार दिया। मुसलमान सेनाओं ने चौहान राज्य के सभी प्रमुख नगरोंपर अपना अधिकार कर लिया। इस प्रकार पृथ्वीराज की राजनीतिक भूल एवं अदूरदर्शिता के परिणामस्वरूप शक्तिशाली चौहान साम्राज्य धराशायी हो गया। तराइन का द्वितीय युद्ध भारतीय इतिहास के निर्णायक युद्धों में माना जाता है। इसने भारतीय भूमि में मुस्लिम सत्ता स्थापित होने का मार्ग प्रशस्त कर दिया।

14.7 सारांश

यद्यपि तराइन युद्ध में पृथ्वीराज पराजित हुआ, फिर भी इस बात से इन्कार नहीं किया जा सकता कि वह अपने समय का महान् योद्धा तथा सेनानायक था। तराइन के द्वितीय युद्ध के पहले तक वह अजेय बना रहा तथा उसने अपने समय की सभी प्रमुख शक्तियों को करारी मात दी थी। उसका साम्राज्य अत्यन्त विशाल था जो सतलज से बेतवा नदी तक तथा हिमालय पर्वत से आबू पर्वत की तलहटी तक विस्तृत था। उसकी अनेकानेक विजयों ने उसे उत्तर भारत का सर्वश्रेष्ठ वीर बना दिया था। टाड के अनुसार 108 सामन्त बराबर उसकी सेवा में लगे रहते थे जिनमें से अधिकतर पराजित राजा और राजकुमार ही थे। उसका शरीर बलिष्ठ, सुन्दर एवं आकर्षक था। मुस्लिम

लेखक भी उसकी शक्ति की प्रशंसा करते हैं। योद्धा होने के साथ–साथ वह विद्वान् तथा विद्वानों का महान् संरक्षक भी था। उसकी राजसभा में लब्धप्रतिष्ठ विद्वान् निवास करते थे जिनमें जयानकभट्ट, विद्यापति गौड़, पृथ्वीभट्ट, वागीश्वर, जनार्दन, विश्वरूप आदि उल्लेखनीय हैं। चन्दबरदाई उसका राजकवि था जिसका ग्रन्थ पृथ्वीराज रासो हिन्दी साहित्य का प्रथम महाकाव्य माना जाता है।

ऐसा प्रतीत होता है कि पृथ्वीराज की पराजय के बाद भी कुछ समय तक अजमेर में चाहमान सत्ता बनी रही तथा गोरी ने सम्पूर्ण प्रदेश को अपने साम्राज्य में शामिल नहीं किया। उसने पृथ्वीराज के अवयस्क पुत्र को वहां का राजा बनाया जो उसकी अधीनता में कार्य करता रहा। इसके विपरीत हम्मीर काव्य था विरुद्धविधिध्वंसक के अनुसार पृथ्वीराज के पश्चात् उसका भाई हरिराज कुछ समय के लिए राजा बना। उसने अजमेर पर आक्रमण कर गोरी द्वारा नियुक्त पृथ्वीराज के अवयस्क पुत्र से सिंहासन छीनने का प्रयास किया। किन्तु गोरी के सेनापति कुतुबउद्दीन ऐबक ने उसे पराजित किया। अपने सम्मान की रक्षा के लिए हरिराज ने अजमेर के दुर्ग में आत्मदाह कर लिया। तत्पश्चात (1194 ई० में) मुसलमानों का अजमेर पर अधिकार हो

14.8 अभ्यासार्थ प्रश्न

1. विग्रहराज 'बीसलदेव'एक महान शासक था। विवेचना कीजिये।

   .....

   .....

2. पृथ्वीराज तृतीय के चरित्र पर प्रकाश डालिये तथा मुहम्मद गोरी के साथ होने वाले युद्धों का वर्णन कीजिये।

   .....

   .....

3. चाहमान वंश के विभिन्न ऐतिहासिक स्रोतों की विस्तार पूर्वक व्याख्या कीजिये।

   .....

   .....

14.9 संदर्भ ग्रन्थ

म्हाजन, वी.डी. : उत्तर भारत का राजनीतिक इतिहास।

राय, एच.सी. : डायनेस्टिक हिस्ट्री ऑफ नार्दन इण्डिया।

चन्द्र, सतीश : हिस्ट्री ऑफ मिडिवल इण्डिया।

लाल, के.एस. : द लिगेसी ऑफ मुस्लिम रूल इन इण्डिया।

सिंह आर.बी. : हिस्ट्री ऑफ द चाहमानाज।

सोमानी, आर.वी. : पृथ्वीराज चौहान एण्ड हिज टाइम।

इकाई 15 कश्मीर के राजवंश –स्रोत–कल्हण की राजतरंगिणी–कार्कोट वंश, उत्पल वंश एवं लोहार वंश

इकाई की रूपरेखा

15.0 प्रस्तावना

15.1 उद्देश्य

15.2 ऐतिहासिक स्रोत

15.3 कल्हण की राजतरंगिणी

15.4 कार्कोट वंश

15.5 उत्पलवंश

15.6 प्रथम लोहरवंश और कश्मीर की अवनति का प्रारम्भ

15.7 द्वितीय लोहर वंश

15.8 सारांश

15.9 अभ्यासार्थ प्रश्न

15.10 संदर्भ ग्रन्थ

15.0 प्रस्तावना

कश्मीर का नाम ऋषि कश्यप के नाम पर बसाया गया था। और कश्मीर के पहले राजा भी महर्षि कश्यप ही थे। उन्होंने अपने सपनों का कश्मीर बनाया था। कश्मीर घाटी में सर्वप्रथम कश्यप समाज निवास करता थाद्य भारतीय उपमहाद्वीप के सबसे उत्तरी भौगोलिक क्षेत्र कश्मीर का इतिहास अति प्राचीन काल से आरम्भ होता है।

बुर्जहोम पुरातात्विक स्थल (श्रीनगर के उत्तरपश्चिम में 16 किलोमीटर (9. 9 मील) स्थित) में पुरातात्विक उत्खनन, ने 3000 ईसा पूर्व और 1000 ईसा पूर्व के बीच सांस्कृतिक महत्व के चार चरणों का खुलासा किया है।, अवधि I और II नवपाषाण युग का प्रतिनिधित्व करते है। III अवधि ईएलआई मेगालिथिक युग (बड़े पैमाने पर पत्थर के मेन्शर और पहिया लाल मिट्टी के बर्तनों में बदल गया) और अवधि IV प्रारंभिक ऐतिहासिक अवधि (उत्तर–महापाषाण काल) से संबंधित है। यहाँ का प्राचीन विस्तृत लिखित इतिहास है राजतरंगिणी, जो कल्हण द्वारा 12वीं शताब्दी ई. में लिखा गया था। तब तक यहां पूर्ण हिन्दू राज्य रहा था।

यह अशोक महान के साम्राज्य का हिस्सा भी रहा। लगभग तीसरी शताब्दी में अशोक का शासन रहा था। तभी यहां बौद्ध धर्म का आगमन हुआ, जो आगे चलकर कुषाणों के अधीन समृध्द हुआ था। उज्जैन के महाराज विक्रमादित्य के अधीन छठी शताब्दी में एक बार फिर से हिन्दू धर्म की वापसी हुई। उनके बाद नागवंशी क्षत्रिय सम्राट ललितादित्या शासक रहा, जिसका काल 697 ई. से 738 ई. तक था। ''आइने अकबरी के अनुसार छठी से नौ वीं शताब्दी के अंत तक कश्मीर पर शासन रहा।'' अवंती वर्मन ललितादित्य का उत्तराधिकारी बना। उसने श्रीनगर के निकट अवंतिपुर बसाया। उसे ही अपनी राजधानी बनाया। जो एक समृद्ध क्षेत्र रहा। उसके खंडहर अवशेष आज भी शहर की कहानी कहते हैं। यहां महाभारत युग के गणपतयार और खीर भवानी मन्दिर आज भी मिलते हैं। गिलगिट में पाण्डुलिपियां हैं, जो प्राचीन पाली भाषा में हैं। उसमें बौद्ध लेख लिखे हैं। त्रिखा शास्त्र भी यहीं की देन है। यह कश्मीर में ही उत्पन्न हुआ। इसमें सहिष्णु दर्शन होते हैं। चौदहवीं शताब्दी में यहां मुस्लिम शासन आरंभ हुआ। उसी काल में फारस से से सूफी इस्लाम का भी आगमन हुआ। यहां पर ऋषि परम्परा, त्रिखा शास्त्र और सूफी इस्लाम का संगम मिलता है, जो कश्मीरियत का सार है। भारतीय लोकाचार की सांस्कृतिक प्रशाखा कट्टरवादिता नहीं है।

15.1 उद्देश्य

इस इकाई का मुख्य उद्देश्य आपको कश्मीर के विविध राजवंशों, एंतिहासिक स्रोतों तथा कल्हण की राजतरंगिणी से संबंधित जानकारी प्रदान करना है।

15.2 ऐतिहासिक स्रोत

भारत के अन्य भागों की अपेक्षा कश्मीर का इतिहास अधिक अच्छे, क्रमबद्ध और व्यवस्थित रूप में मिलता है। इसका सारा श्रेय कल्हण की राजतरंगिणी को है, जिसे उसने 1148–49 ई० में लिखकर तैयार किया। यह ग्रन्थ, हर्षचरित अथवा विक्रमांकदेवचरित जैसे अन्य भारतीय ऐतिहासिक काव्यों अथवा प्रशस्तियों की तुलना में एक आश्चर्यजनक रूप में आधुनिक इतिहास लेखन की पद्धति का पूर्वरूप प्रस्तुत करता है। इस बात पर यहाँ विचार करने का स्थान नहीं है कि कश्मीरियों में इतिहास लेखन की कुशलता का विकास बौद्धधर्म के प्रभाव, विदेशी लोगों से निकटता अथवा मुसलमानी (अरबी) प्रभाव आदि के कारण हुआ अथवा उसके अन्य कारण थे। लेकिन विषय की पूर्णता, सत्य को जानने का प्रयत्न, स्रोतों की छानबीन और ऐतिहासिक वस्तुपरकता का जो उदाहरण कल्हण प्रस्तुत करता है, वह अत्यन्त प्रशंसनीय है। यह नही कहा

जा सकता है कि वह अपने समय के प्रभावों और विश्वासों, यथा––कट्टर हिन्दू धर्म में विश्वास, कर्मफल की अनिवार्यता, नियति को निश्चितता, राजा के पाप–पुण्यों का प्रजा के पाप–पुण्यों से सम्बन्ध, जादू टोने में विश्वास और परम्पराओं तथा प्रथाओं में श्रद्धा आदि से मुक्त था। किन्तु यह स्पष्ट है कि विभिन्न शासकों के वर्णन में वह न्याय–अन्याय तथा सही और गलत के बारे में अपना निश्चित मत व्यक्त करता है। उसमें यदि स्थानीय अथवा क्षेत्रीय देशभक्ति के भाव दिखायी देते हैं तो उसे अस्वाभाविक नहीं माना जा सकता और उसका तथ्यातथ्य पर कोई गलत प्रभाव पड़ता नहीं दिखायी देता। तत्त्वतः कल्हण एक कवि था और राजतरंगिणी अर्थात् राजाओं की सरिता को उसने कवित्व के कलकल से सत्रिविष्ट किया।

राजतरंगिणी के अतिरिक्त कवि क्षेमेन्द्र के ग्रन्थ, जोनराज की राजतरंगिणी, नीलमत पराण, चीनी यात्रियों के विवरण, अल्बीरूनी और कुछ अन्य विदेशी यात्रियों के उल्लेख, कुट्टनीमत काव्य, अन्य साहित्यिक सामग्री, पुरातात्विक सामग्री, कश्मीर के प्राचीन इतिहास पर आधुनिक पुस्तकों से कश्मीर के इतिहास के विषय में जानकारी प्राप्त होती है।

15.3 कल्हण की राजतरंगिणी

कल्हण जात्या ब्राह्मण था। उसका पिता चम्पक कदाचित् कश्मीर के राजा हर्ष (11वीं शती के अन्त) का मंत्री रह चुका था और 1134 ई० तक जीवित था। इसका कोई प्रमाण नहीं है कि कल्हण स्वयं राज्य के किसी अधिकारी पद पर था या नहीं। उसने जयसिंह के समय जब राजतरंगिणी पूरी की, उस समय कश्मीर गृहकलह और अशान्ति का शिकार हो रहा था।

राजतरंगिणी में कुल आठ तरंग हैं और आठ हजार श्लोक हैं। प्रथम तीन तरंगों में अत्यन्त प्राचीनकाल का कश्मीर का परम्परागत इतिहास है। उसके स्रोत भी आनुश्रुतिक ही हैं, जिन्हें विशेष छानबीन किये बिना ही वह मान लेता है। चौथे से छठे तरंगों में कार्कोट और उत्पल वंशों का इतिहास है, जिसमें वह पूर्ववर्ती और उन राजवंशों के समय लिखे हुए ग्रन्थों का उपयोग करता है। सातवें और आठवें तरंगों में लोहरवंशों का इतिहास अंकित है, जिसके बारे में कुछ सुनी हुई बातों, समकालिक लोगों के साक्ष्य और व्यक्तिगत ज्ञान का वह उपयोग करता है। इस प्रकार कल्हण के वृत्तों में राज– तरंगिणी के प्रथम तीन तरंगों की अपेक्षा अन्तिम पाँच तरंग अधिक प्रामाणिक और विश्वसनीय हैं, जिसके फलस्वरूप हम सातवीं से 12वीं शती तक का कश्मीरी इतिहास अपेक्षाकृत अधिक सही और पूर्णरूप में पाते हैं। राजतरंगिणी से यह स्पष्ट प्रतीत होता है कि कल्हण की पुरातत्त्वों की जानकारी में विशेष रुचि थी और उसने सिक्कों

के साक्ष्य का पूरी तरह उपयोग किया। वर्ण्य विषयों में वह अपने को राजनीतिक इतिहास तक ही सीमित नहीं रखता, अपितु राजदरबार के वर्णनों, राजवंशों के विशेष ब्यौरों, कलह तथा षडयन्त्रों और प्रशासन के गुणात्रगुणों तथा अन्य विशेष बातों को भी व्यक्त करता है। 1 राजा–रानियों के भले–बुरे सभी कार्य उसे आकृष्ट करते हैं तथा सैन्य व्यवस्था की बारीकियों से वह हमें परिचित कराता है। कल्हण की सबसे बड़ी विशेषता यह है कि वह ऐतिहासिक युग की घटनाओं का तैथिक क्रम अत्यन्त परिश्रमपूर्वक देता है और इतने दिनों बाद भी उसके द्वारा निश्चित तिथियों में साधारणतया 25–30 वर्षों से अधिक का अन्तर नहीं पाया गया है। कल्हण की परम्परा आगे भी चलती रही। जोनराव ने मुसलमानी सुलतान जैनुल आबदीन (1420–1470 ई०) के समय तक कल्हण की राजतरंगिणी को आगे बढ़ाया तथा प्रथम राजतरंगिणी के इतिहास में लगभग 300 वर्षों का इतिहास और जोड़ा। उसके बाद भी उसके शिष्यों ने वह परम्परा जारी रखी।

15.4 कार्कोट वंश

कार्कोटवंश के शासक अपने को नागकुल से जोड़ते थे। इस वंश का सर्वप्रथम शासक दुर्लभवर्धन था, जिसे चीनी वृत्तों में तु–लो–प कहा गया है। 627 से 649 ई० तक उसका समय माना गया है। चीनी वृत्तों के अनुसार वह चीन से कि–पिन् (काबुल) तक के रास्ते का नियन्त्रण करता था। श्वान् च्वांग उसी के समय में कश्मीर गया था। वह उसकी भीतरी राजनीतिक अवस्था का कोई विवरण तो नहीं देता. किन्तु इतना अवश्य बताता है कि सिन्धु के पूर्व का तक्षशिला प्रदेश, उरशा (हजारा अथवा अबोटाबाद), सिंहपुर, पूँच तथा राजापुर (राजोरी) कश्मीर के अधीन थे। दुर्लभवर्धन का पुत्र और उत्तराधिकारी प्रतापादित्य (द्वितीय) अथवा दुर्लभक हुआ, जिसके अनेक सिक्के प्राप्त हुए हैं। उन पर उसे श्रीप्रताप कहा गया है। उसने प्रतापपुर नामक नगर बसाया। उसे नरेन्द्रप्रभा से तीन पुत्र उत्पन्न हुए चन्द्रापीड वज्रादित्य. तारापीड उदयादित्य और मुक्तापीड ललितादित्य' जो उसके पचास वर्षों के शासन के बाद क्रमशः कश्मीर के राजा हुए।

चन्द्रापीड

चन्द्रापीड के शासनकाल की केवल एक ही विशेष बात ज्ञात होती है कि उसनेअरबों तथा तिब्बितियों के विरुद्ध सहायता के लिए 713 ई० में चीन के शासक के पास एक दूत भेजा। वह बड़ा ही न्यायप्रिय शासक था। कल्हण हमें बताता है कि किस प्रकार उसने स्वयं एक चर्मकार के घर जाकर त्रिभुवनस्वामी का एक मन्दिर बनवाने के लिए उसकी कुटिया माँगी। कहानी यह है कि जब

उसके मन्त्रियों ने उस चर्मकार के घर के पास मंदिर बनवाने की योजना चालू को तो राजा ने उन्हीं को दोषी ठहराते हुए मंदिर कहीं और बनवाने की आज्ञा दी। लेकिन चर्मकार ने स्वयं राजा के पास उपस्थित होकर यह कहा कि वह भी उसी प्रकार का मनुष्य है जैसा राजा तथा उसकी कुटिया उसके लिए वैसी ही है, जैसे राजा के लिए उसका महल। तथापि यदि राजा स्वयं चलकर उसके घर के पास खड़े होकर उसे आदरपूर्वक मांगे तो वह सहर्ष उसकी बात मान लेगा। चन्द्रापीड ने बिना किसी घमंड के वैसा ही किया तथा चर्मकार के यहाँ जाकर उसका घर खरीदा और मंदिर का निर्माण कराया। चन्द्रापीड नौ वर्षों के शासन के बाद अपने भाई तारापीड के षडयन्त्र का शिकार हुआ और जादू–टोने द्वारा मार डाला गया। तारापीड उसका उत्तराधिकारी हुआ, किन्तु वह अपनी बदनामी को घो नहीं सका। चार वर्षों के शासन के बाद वह भी हत्या का शिकार हुआ और वंश का सबसे प्रतापी राजा मुक्तापीड ललितादित्य गद्दी पर बैठा। ललितादित्य के गद्दी धारण करने के समय के सम्बन्ध से विद्वानों में मतभेद है। शं० प० पण्डित (गउडवहो की भूमिका, पृष्ठ 28–29) एवं सु० चं० राय महोदय (अर्ली हिस्ट्री ऐण्ड कल्चर ऑफ कश्मीर, पृष्ठ 47) उसे कल्हण के आधार पर क्रमशः 695 ई० अथवा 699 ई० मानते हैं। किन्तु चीनी साक्ष्यों को अधिक प्रामाणिक मानते हुए कनिंघम् (ऍशियेण्ट ज्याग्रफी, 1924, पृष्ठ 90–92) उसे 727 ई० स्वीकार करते हैं, जिससे स्टाइन और बहूलर सहमत हैं। डॉ० मजुमदार (क्लासिकल एज, पृष्ठ 133), बमजाई (पूर्वनिर्दिष्ट, पृष्ठ 111) और भरतसिंह (क्वार्टर्ली रिव्यू ऑफ दि हिस्टॉरिकल स्टडीज, कलकत्ता, जिल्द 3, 1963–4, पृष्ठ 89) ललितादित्य की राज्यारोहण तिथि 724 ई० मानते हैं। जन्–युन्– हुआ का अद्यतन मत यह है कि ललितादित्य 732–733 ई० के आसपास गद्दी पर बैठा और उसी वर्ष अपनी मान्यता प्राप्त करने के लिए उसने चीन के राजा के यहाँ दूत भेजा।

मुक्तापीड ललितादित्य

यशोवर्मा पर विजय पाने के पूर्व भी ललितादित्य काफी शक्तिशाली हो चुका था। कल्हण कहता है कि काबुल के शाही राजकुमार उसके दरबार में नौकरी करते थे। इन शाही राजाओं को अरबों से भय था और असम्भव नहीं है कि ललितादित्य ने भी सिन्धु नदी की ओर बढ़कर उन्हें दबाया हो। उसका दक्षिण और दक्षिण–पश्चिम में बढ़ने का प्रयत्न ही यशोवर्मा से शत्रुता का कारण हुआ होगा। लेकिन यशोवर्मा को हराने तथा उत्तरी भारत में अपने को प्रमुख राजनीतिक सत्ता स्वीकार करा लेने मात्र से वह संतुष्ट होने वाला नहीं था। उसने आगे बढ़कर दिग्विजय की और उसकी सेनाएँ कलिंग तक चढ़ गयीं। गौडदेश के राजा' ने उसे हाथियों की भेंट देकर उसकी अधीनता मान ली। पुनः

कर्णाट देश की रानी रट्टा को अधीनता स्वीकार करने को विवश करते हुए वह कावेरी के किनारों तक पहुँच गया। वहाँ से पश्चिम की ओर मुड़कर सप्तकोंकणों को जीतता हुआ वह द्वारका पहुँचा, जहाँ से अवन्ति होता हुआ उत्तर की ओर लौटा। कम्बोजों, तुधारों, मुमुनि (सिन्ध के ऊपरी कोठों में अरबों की कोई शाखा), भाटों (तिब्बतियों), दरदों, प्राग्ज्योतिष, खीराज्य और उत्तरकुरुओं पर भी उसकी विजयों के वर्णन प्राप्त होते हैं'। लेकिन यह कहना बड़ा कठिन है कि कल्हण के इस विवरण में कितनी ऐतिहासिकता है। सभी प्राचीन राजाओं की दिग्विजयों की ऐसी ही गतानुगतिक चर्चाएँ मिलती हैं। लेकिन उन्हें एकदम कपोल कल्पित मानना सही नहीं होगा। कल्हण अन्य कवियों की पाँत में अनैतिहासिक और अनुत्तरदायित्त्वपूर्ण विवरणों के लिए खड़ा नहीं किया जा सकता और संभव है किघटनाओं के बहुत पहले घटने के कारण उसके पास उनको तथ्य की कसौटी पर कसने के प्रमाण कम रहे हों और अतिरंजन का पुट आ गया हो। इस दृष्टि से ललितादित्य की सुदूर दक्षिण की विजय सम्बन्धी चर्चा की ऐतिहासिकता पर सन्देह किया जा सकता है। तुषारों (तुकों) के ऊपर उसकी विजय को यादगारें कश्मीर में अलबरूनी के समय तक थी। भाटों अथवा तिब्बतियों को दबाने के लिए उसने चीन के सम्राट् के पास सहायता के लिए दूत भेजा था, यह हम पीछे देख चुके हैं। यद्यपि उसे चीन से कोई सहायता नहीं मिली, लेकिन वह तिब्बतियों के विरुद्ध अपने प्रयत्न में सफल रहा। इसमें सन्देह नहीं कि अपनी विशाल विजयों के कारण ललितादित्य अपने समय का सर्वप्रमुख भारतीय शासक बन गया, जिसकी विजयें सम्भवतः गुप्त सम्राटों के बाद सर्वाधिक विस्तृत थीं। राजतरंगिणी से स्पष्ट है कि उसने कश्मीरी लोगों के मन में एक बहुत बड़ा स्थान बना लिया तथा बहुत दिनों तक उसकी अनुश्रुतियाँ वहाँ चलती रहीं। ललितादित्य की मृत्यु(760–762 ई०) दुखान्त रही। उसके अन्त के बारे में कई अनुश्रुतियाँ मिलती हैं। लगता है, अपने राज्य के पास के किसी पहाड़ी प्रदेश पर आक्रमण के सिलसिले में वह अपनी सेना से पृथक् हो गया तथा बर्फीले भागों में घिरकर ठण्ड से मर गया। उसने 36 वर्षों तक शासन किया।

ललितादित्य एक बहुत बड़ा वास्तु–निर्माता था। कल्हण उसके अनेक महलों, 'भवनों और मंदिरों के निर्माण का उल्लेख करता है'। मार्त्तण्डतीर्थ में उसके बनवाए हुए मार्त्तण्ड मन्दिर के अवशेष आज भी मिलते हैं, जो अपनी टूटी हुई आधुनिक अवस्था में भी अपनी विशालता, सौन्दर्य और स्थापत्य की शैली और अलंकरण से हमें सहज हो आकृष्ट करते हैं। उसने परिहासपुर नामक एक नगर भी बसाया और स्वयं वहाँ रहने लगा। स्वयं हिन्दू होते हुए भी वह बौद्ध भिक्षुओं और विषयों के प्रति उदार था। कञ्चज के राजा यशोवर्मा को

हराने के बाद उसने कदाचित् उसके भवभूति और वाक्पतिराज नामक राजदरबारी कवियों को कश्मीर बुलाकर अपने राजदरबार में रखा। लेकिन ऐसा प्रतीत होता है कि ललितादित्य की भौतिक और राजनीतिक शक्ति ने उसे मदान्ध बनादिया। मंत्रियों आदि का नियंत्रण उस पर नहीं रह सका और कम से कम दो कार्य उसने ऐसे किये, जो उसकी उपलब्धियों पर काले धब्बे बन गये। मदिरा की झक्क में उसने एक बार प्रवरपुर नामक नगर को जला डालने की आज्ञा दे दी। सौभाग्यवश मंत्रियों ने उसकी आज्ञा का उल्लंघन कर दिया। लेकिन दूसरी घटना तो बिल्कुल ही अक्षम्य है, जिसमें उसने गौडदेश के राजा को निर्वाधरूप से कश्मीर आने का निमंत्रण देकर बीच में ही धोखे से मरवा डाला।

ललितादित्य के कमजोर उत्तराधिकारी

ललितादित्य के बाद कई पीढ़ियों तक कार्कोट राजगद्दी पर कमजोर और अल्पशासी राजा बैठते रहे। उसके जेठे पुत्र कुवलयापीड ने केवल एक वर्ष राज्य करके राजगद्दी त्याग दी। बाद में ललितादित्य की एक दूसरी रानी से उत्पन्न पुत्र वज्रादित्य (वप्पियक) राजा हुआ, जिसे क्रूर और दुराचारी होने के कारण सात वर्षों के अल्पशासन के बाद ही मृत्यु का शिकार होना पड़ा। उसके बाद उसके तीन लड़के– पृथिव्यापीड, संग्रामपीड (प्रथम) तथा जयापीड क्रमशः राजा हुए मुसलमान इतिहास लेखक अल–बिलाधुरी कहता है कि खलीफा के सिन्ध–स्थित गवर्नर हिशाम (868– 772 ई०) ने कश्मीर पर आक्रमण और विजय कर अनेक बन्दी और गुलाम बनाये। यह आक्रमण कश्मीर के इन्हीं कमजोर राजाओं में किसी के समय हुआ होगा। लेकिन कश्मीर से तात्पर्य यहाँ पंजाब के उस प्रदेश से प्रतीत होता है जो मुल्तान के ऊपर की ओर पड़ता था। उसे अरबों ने धीरे–धीरे अपने अधिकार में कर लिया। जयापीड (विनयादित्य) अपने पिता और भाइयों की अपेक्षा अधिक शक्तिशाली हुआ और उसने ललितादित्य मुक्तापीड की शक्ति पुनरुज्जीवित करने का प्रयत्न किया। लेकिन यह नहीं कहा जा सकता कि उसमें वह सफल हुआ। गद्दी पर बैठने के शीघ्र ही बाद उसने दिग्विजय के लिए प्रस्थान किया किन्तु उसकी अनुपस्थिति में जज्ज ने कश्मीर की गद्दी पर अधिकार कर लिया। लगता है, उसका प्रभाव जयापीड की सेना पर भी पड़ा, जिसके सैनिकों ने धीरे–धीरे उसका साथ छोड़ दिया। उसे सम्भवतः विवश होकर गंगा के किनारे होते हुए वेश छिपाकर पुण्ड्रवर्धन तक जाना पड़ा, जहाँ के राजा की पुत्री सेविवाह कर वह कश्मीर का और अपनी खोयी हुई गद्दी प्राप्त करने के लिए लौटा लौटते समय उसके पीछे छूटे हुए कुछ सैनिक पुनः उसके साथ हो गये और रास्ते में उसने कन्नौज के राजा (वज्रादित्य) को हराया। कश्मीर लौटकर उसने जज्ज को हराया और पुनः

गद्दी पर अधिकार कर लिया। युद्ध मेंकल्हण उपर्युक्त घटनाओं को बहुत सीधे ढंग से रखता है। लेकिन यह स्पष्ट दिखायी देता है कि जयापीड अपनी उपर्युक्त दिग्विजय यात्रा में कन्नौज को छोड़कर कोई अन्य राज्य जीत नहीं सका, जिसका कारण कश्मीर के भीतर ही जज्ज के नेतृत्त्व में होने वाली क्रान्ति थी। यह सौभाग्य ही था कि जयापीड अपनी गद्दी पुनः वापस पा सका। उसके बाद उसकी दूसरी दिग्विजय यात्रा का भी विवरण मिलता है। लेकिन उसमें कल्पना और चमत्कार के पुट इतने अधिक हैं कि उसे सही समझना कठिन जान पड़ता है। विजित राजाओं की पहचान भी नहीं की जा सकती। अपने जीवन के अन्तिम दिनों में जयापीड लालची हो गया और प्रजा को करों के अत्यधिक भार से सताने लगा, जिससे ब्राह्मण भी अछूते नहीं बचे। उसका शासनकाल आठवीं शताब्दी के अन्तिम भाग में था। उसके अनेक सिक्के प्रायः सारे कश्मीर से मिले हैं।

जयापीड के उत्तराधिकारियों के समय कार्कोटों की शक्ति घटती ही गयी। उसके पुत्र ललितापीड ने बारह वर्षों के शासनकाल को अपने पिता की अर्जित सम्पत्ति को उड़ाने मात्र में बिता दिया। उसके अनेक उत्तराधिकारियों के केवल नाममात्र मिलते हैं, जिनमें किसी के भी सिक्के नहीं मिलते। चिपट जयापीड (बृहस्पति) के मामाओं ने उसके अल्पायु होने के कारण अपना नाजायज प्रभाव स्थापित कर लिया और छत्तीस वर्षों तक वे अपने मन से राजाओं को गद्दी पर बिठाते–उतारते रहे। लेकिन बाद में वे आपस में ही लड़ने लगे। 855–6 ई० में शूर नामक प्रधान मंत्री ने उत्पलापीड को गद्दी से उतारकर अवन्तिवर्मन् को राजा बनाया, जो उत्पल नामक एक नये राजवंश का संस्थापक हुआ।

15.5 उत्पलवंश

अवन्तिवर्मन् (855–883ई०)

अवन्तिवर्मन् योग्य और प्रजाहितचिन्तक था। प्रधान मंत्री शूर का उस पर बड़ा प्रभाव था। उसका सुख्य नामक एक अन्य मंत्री बहुत बड़ी इंजीनियरी–बुद्धि का व्यक्ति था। वितस्ता (झेलम) नदी के बहाव मार्ग से पहाड़ों को हटाकर तथा उसके किनारेबाँध बाँधकर उसने बहुत सी भूमि बाढ़ से बचायी तथा खेती योग्य बनवायी। कहा गया है कि उसने झेलम का मार्ग ही बदल दिया और उसे दूसरी ओर से बहाकर तथा सिन्धु नदी से उसके संगम के पूर्वस्थान को छुड़ाकर दूसरी जगह मिलाया। परिणामस्वरूप अन्न की उपज बढ़ गयी और दाम सस्ते हो गये। अवन्तिवर्मन् ने अवन्तिपुर नामक नगर और अनेक मंदिरों का निर्माण कराया।

शंकरवर्मन् (833–902 ई०)

अवन्तिवर्मन् की मृत्यु के बाद गद्दी के लिए लड़ाई छिड़ गयी, लेकिन अन्त में शंकरवर्मन् की विजय हुई। वह एक बहुत बड़ा विजेता साबित हुआ तथा दर्वाभिसार (पंजाब में गुजरात से उत्तर झेलम और चेनाव नदियों के बीच का प्रदेश), त्रिगर्त (कांगड़ा) और गुजरात (पंजाब) के राजाओं को या तो युद्ध में हराकर या भय दिखाकर अपनी अधीनता मानने को विवश किया। गुजरात (पश्चिमी पाकिस्तान) के राजा अलखान से उसने तक्क प्रदेश छीन लिया। गुर्जर प्रतीहार शासक मिहिरभोज अथवा महेन्द्रपाल जैसे कन्नौज के शक्तिशाली सम्राट् को भी उसके सामने दबना पड़ा। कल्हण कहता है कि शंकरवर्मन् ने भोज से कुछ भूमि छीनकर अपने अधीनस्थ थाक्कियकराज को दे दिया। लेकिन उद्भाण्डपुर के शाही राजा के विरुद्ध उसका अभियान असफल रहा। साथ ही शंकरवर्मन् का प्रशासन बहुत सफल नहीं था और कायस्थों ने उसके राज्य का कुछ हिस्सा हथिया लिया।

902 ई० के आसपास शंकरवर्मन् का अल्पवस्यक पुत्र गोपालवर्मन् उत्तराधिकारी हुआ। उसकी माँ सुगन्धा उसकी संरक्षिका बनी। किन्तु प्रभाकर नामक दुराचारी मंत्रीकी साजिश से गोपालवर्मन् मारा गया। तथापि सुगंधा राज्य पर अधिकार बनाए रखने में सफल रही। लेकिन राजदरवार में इतने षडयन्त्र चल रहे थे कि किसी स्थायी सत्ता का उदित होना कठिन हो गया। इस बीच तन्त्रिन् नामक एक सैनिक जाति राजनीतिक हस्तक्षेप और सैनिक उपद्रव मचाती रही। 914 ई० में सुगन्धा मंत्रियों द्वारा कैद कर ली गयी और अन्ततः मार डाली गयी। तदुपरान्त राजाओं का गद्दी पर बैठाया और उतारा जाना एक क्रम सा हो गया। 939 ई० तक यही स्थिति बनी रही। इस बीच राजदरबार षडयन्त्र और हत्याओं का केन्द्र बना रहा। इस प्रयोग का अन्तिम शासक उन्मत्तावन्ति (937–939 ई०) ठीक अपने नामानुरूप साबित हुआ। उसके समय क्रूरता और अत्याचार अपनी चरम सीमा पर पहुँच गया, यहाँ तक कि उसने अपने भाइयों और पिता को भी मरवा डाला। किन्तु वह स्वयं भी किसी भयंकर बीमारी से पीड़ित होकर 939 ई० में चल बसा। ब्राह्मणों ने उसी वर्ष प्रभाकर के पुत्र यशस्कर को चुनकर कश्मीर का राजा बनाया। इस प्रकार उत्पलवंश का अन्त हो गया और यशस्कर एक नया ब्राह्मण राजवंश कश्मीर की राजगद्दी का अधिकारी हुआ।

यशस्कर (929–948 ई०) और उसके उत्तराधिकारी

यशस्कर ने नौ वर्षों (939–948 ई०) तक शासन किया। उस बीच कश्मीर ने पुनः शान्ति की साँस ली। कल्हण उसकी न्यायप्रियता और बुद्धिमानी

की प्रशंसा करता हुआ उसकी प्रशासकीय प्रतिमा के अनेक उदाहरण देता है। 948 ई० में उसकी मृत्यु के बाद उसका अल्पवस्यक पुत्र संग्रामदेव राजा बनाया गया किन्तु एक साल के भीतर ही उसके मंत्री पूर्वगुप्त ने उसे मारकर गद्दी हथिया ली। वह स्वयं भी एक डेढ़ वर्षों के भीतर ही कालकवलित हो गया। उसका पुत्र क्षेमगुप्त दुर्गुणी और कामुक सिद्ध हुआ, जिसके शासनकाल (950–958 ई०) की कोई विशेषता नहीं है। उसकी लोहरवंशी रानी दिद्दा का उस पर अत्यधिक प्रभाव था। उसके सिक्कों पर उसके नाम के साथ 'दि = दिद्दा अंकित हैं, जो दिद्दा के प्रभाव का द्योतक है। लोगों ने उसका नाम ही दिद्दाक्षेम रख दिया।

दिद्दा

दिद्दा का व्यक्तित्त्व अनेक दृष्टियों से अत्यन्त प्रभावशाली था। अपने अल्पवस्यकपुत्र अभिमन्यु (958–1972 ई०) की ओर से प्रायः सम्पूर्ण शासन पर वह हावी हो गयी। अपने पति के समय के फल्गुण नामक मंत्री सहित अनेक प्रभावशाली कर्मचारियों को उसने निकाल दिया तथा उनके कई विद्रोहों का सफलतापूर्वक सामना किया। अपने शत्रुओं को दबाने के लिए वह हर प्रकार के उपायों को अपनाने में तत्पर थी'। शक्ति के भोग से उसके प्रति उसका मोह और भी बढ़ गया। 972 ई० में अपने पुत्र और राजा अभिमन्यु की मृत्यु से भी उसका शक्ति के प्रति व्यामोह कम नहीं हुआ। जादू–टोने में उसका विश्वास था, जिनके प्रयोगों द्वारा उसने अपने दो पौत्र राजाओं–नन्दिगुप्त और त्रिभुवनगुप्त को मरवा डाला। इस बीच फल्गुण को उसने पुनः मंत्री नियुक्त कर दिया था। किन्तु उसकी भी मृत्यु हो गयी। उसके बाद दिद्य पूर्णरूपेण स्वेच्छाचारिणी हो गयी। तुंग नामक एक खसजातीय साहसी एवं महत्त्वाकांक्षी व्यक्ति से उसका प्रेमसम्बन्ध हो गया। तुंग मूलतः एक भैंस चरानेवाला था और कश्मीर राज्य में सन्देशवाहक के रूप में नियुक्त हुआ था। तुंग से रक्षा पाकर उसने 980 ई० में भीमगुप्त नामक राजा (अपने ही पौत्र) को मारकर स्वयं को रानी घोषित कर दिया तथा अगले तेईस वर्षों तक शासन करती रही। तुंग का प्रभाव बढ़ता गया और रानी चालाकी एवं घूस के प्रयोग द्वारा अपने विरुद्ध उठनेवाली हर चुनौती को पार करती गयी। खुले विद्रोह तथा ब्राह्मणों के उपवास आदि सभी उसके सामने बेकार साबित हुए।

दिद्दा चरित्र से गर्हित, षडयन्त्री और कुटिल होते हुए भी राजनीतिक सूझ–बूझ और चातुरी से युक्त थी। उसमें प्रशासकीय प्रतिभाएँ भी भरपूर थीं। उन्हीं गुणों के कारण वह गद्दी प्राप्त करने में सफल हुई थी। अपने पुत्र नन्दिगुप्त को स्मृति में उसने श्रीनगर में दिद्दामठ (आधुनिक कश्मीर में दिदमार

नामक स्थान) बनवाया तथा सारे विद्रोहों के बावजूद कश्मीर के शासन को सफलता और शान्तिपूर्वक लगभग पचास वर्षों तक चलाया। अपने जीते जी ही उसने अपने मातृपक्ष के भतीजे संग्रामराज को अपना युवराज नियुक्त कर दिया था, जो उसकी मृत्यु (1003 ई०) के बाद कश्मीर में लोहरवंश का संस्थापक सिद्ध हुआ।

15.6 प्रथम लोहरवंश और कश्मीर की अवनति का प्रारम्भ

संग्रामराज बुद्धिमान होते हुए भी निर्बल था। उसके शासन के प्रारम्भिक दिनों में तुंग का प्रभाव पूर्ववत् बना रहा। किन्तु उसकी ढलती हुई अवस्था के साथ–साथ उसके प्रशासन में ढीलाई आती गयी और उसके अनेक विरोधी उठ खड़े हुए। इन विरोधों का मल कारण था रंग का कृपापात्र प्रदेश्वर नामक एक कायस्थ। राजकीय पदाधिकारीस्थिति पर काबू न रख सका, जिसका प्रतिफल उसक पुत्र और उसके उत्तराधिकारी हरिराज को अपने शासन के अत्यल्प (22 दिनों) समय के भीतर ही अपनी हत्या के साथ. (1029 ई०) चुकाना पड़ा। हरिराज का उत्तराधिकारी अनन्त हुआ।

अनन्त (1028-1063 ई०)

अनन्त के शासन के प्रारम्भिक दिनों में रुद्रपाल और दिद्दापाल नामक दो विस्थापित शाही राजकुमारों का बड़ा प्रभाव था। अनन्त में व्यक्तिगत योग्यता और शौर्य का अभाव था। तथापि उसने त्रिभुवन नामक अपने ही सेनापति द्वारा संचालित विद्रोह को सफलतापूर्वक दबाया तथा दरद शासक अचमंगल के आक्रमण से कश्मीर की रक्षा की। बाद में उसने अपनी धर्मात्मा रानी सूर्यमती' अथवा सुभटा के प्रभाव से अनेक मंदिरों के निर्माण कराये और दान आदि भी दिये। किन्तु अत्यधिक व्यय करने और पान खाने की उसकी खर्चीली आदत ने उसे विदेशी व्यापारियों का ऋणी बना दिया। उसे कर्ज देने वालों में परमार राजा भोज का एक व्यापारिक प्रतिनिधि भी था, जिसने कुछ दिनों के लिए अनन्त का मुकुट ही बन्धक रख लिया था। अनन्त का यह दिवालियापन तभी समाप्त हो सका, जब सूर्यमती ने शासनसूत्र पर और कड़ाई से अपना हाथ रखा एवं हलधर नामक प्रधानमंत्री ने आर्थिक और प्रशासनिक सुधार की अनेक योजनाएँ लागू की। इस अवसर का लाभ उठाकर अनन्त ने आसपास के पहाड़ी प्रदेशों की विजय योजनाएँ बनायीं। चम्पा (छम्ब) के शासक साल अथवा सालवाहन को गद्दी से उतारकर अपने नामांकित को उसकी गद्दी देना तथा दर्वाभिसार, त्रिगर्त और भर्तुल पर अपना आधिपत्य स्वीकृत कराना अनन्त की मुख्य सैनिक उपलब्धियाँ थीं। लेकिन उरशा और बल्लापुर पर उसके अभियान असफल रहे। विल्हण नामक कश्मीरी कवि (जो बाद में कल्याणी के चालुक्य

दरबार में रहने लगा था) ने अपने ग्रंथ विक्रमांकदेवचरित में चम्पा और दर्वाभिसार पर उसके आधिपत्य का उल्लेख किया है जिसका आंशिक समर्थन कल्हण की राजतरंगिणी से भी होता हैं। अनन्त ने अपनी रानी सूर्यमती के कहने से 1063 ई० में अपने पुत्र कलश कोराजगद्दी दे दी, लेकिन उसके क्रियाकलापों से असंतुष्ट होकर उसने 1076 में पुनः वास्तविक शासन अपने कब्जे में ले लिया। आगे पिता–पुत्र में सौहार्द और सामंजस्य की और भी कमी होती गयी और अनन्त ने ऊबकर 1080 ई० में आत्महत्या कर ली। इसका कलश पर कुछ सुधारक प्रभाव पड़ा और धीरे–धीरे उसमें उत्तरदायित्त्व की भावना बढ़ी। क्रमशः वह प्रशासन को हर प्रकार से ठीक करने में लग गया। आसपास के राज्यों ने उसकी अधिसत्ता स्वीकार कर ली। इसका प्रमाण यह है कि 1087–88 ई० में पहाड़ी क्षेत्रों के आठ राजे उसकी राजधानी में एक साथ उपस्थित हुए। उस सभा में पश्चिम में उरश से लेकर पूर्व में कस्तवत तक के राजा शामिल थे। उनको दी जाने वाली सुख–सुविधा और भव्य स्वागत की चर्चा कल्हण, वामन नामक मंत्री की प्रशंसा करते हुए उपस्थित करता है। कलश के पुत्र हर्ष की षडयन्त्री रुझान के कारण उसके अन्तिम दिन दुःखमय बीते और उसे विवश होकर अपने छोटे पुत्र उत्कर्ष को अपना उत्तराधिकारी घोषित करना पड़ा। किन्तु वह उस पद को संभाल न सका और एक विद्रोह के फलस्वरूप केवल बयालीस दिनों के शासन के पश्चात् हर्ष द्वारा अपदस्थ कर कारागार में डाल दिया गया, जहाँ उसने आत्महत्या कर ली।

हर्ष (1089-1101 ई०)

1089 ई० में हर्ष ने अपनी खोयी हुई गद्दी पुनः प्राप्त की और अगले बारह वर्षो (1100 ई०) तक शासन करता रहा। उसके जीवन में अनेक उतार–चढ़ाव आ चुके थे और कई दृष्टियों से वह कश्मीर के परवर्ती शासकों में प्रमुख कहा जा सकता है। कल्हण उसके अनेक गुणावगुणों तथा परस्परविरोधी और वेमेल कार्यों का विस्तृत विवरण उपस्थित करता है, जिनके बारे में वह स्वयं अपने पिता चम्पक से सुन चुका था। अपने शासन के प्रारम्भिक वर्षों में हर्ष को अनेक सफलताएँ प्राप्त हुई। उसने अपने भाई विजयमल्ल का विद्रोह दबाने में सफलता पाई और राजदरबार की शान–शौकत में भी वृद्धि की गुणी, पंडित एवं कवि उसके यहाँ शरण और प्रश्रय पाते रहे और कश्मीर छोड़कर चालुक्य दरबार में गया हुआ बिल्हण भी पश्चात्ताप करने लगा। लगता हैराज्य की सुख–समृद्धि की काफी वृद्धि हुई और खजाना धनधान्य से भर गया। राजापुरी अर्थात् राजौरी के शासक को युद्ध में परास्तकर हर्ष की सेनाओं ने कर वसूल किया। किन्तु ऐसा प्रतीत होता है कि हर्ष की प्रारम्भिक सफलताओं ने उसे मदान्ध बना दिया और उत्तरोत्तर उसके क्रियाकलाप निंद्य होते गये। गलत

ढंग के चाटुकारों से वह मिर गया और राजदरबार षडयन्त्रों का अखाड़ा बनने लगा। उसने अपने अनेक निकट सम्बन्धियों को विद्रोह और षड़यन्त्र के सन्देह में अथवा कभी–कभी तो बिना दोष के ही मौत के घाट उतार डाला। उसका खर्च इतना बढ़ गया कि उसे चलाने के लिए जब नये करों की आय पर्याप्त नहीं हुई तो वह मन्दिरों और मठों की सम्पत्ति को छीनने अथवा छद्मपूर्वक लेने एवं रत्नजटित मूर्तियों को लूटने से भी बाज न आया। उसके ये कृत्यः मुसलमानी आक्रामकों के समान थे और कदाचित् इसी कारण कल्हण उसे 'तुरुष्क' कहता है। उसने अपनी सेना में मुसलमानों को नियुक्त भी कर रखा था। ६०६६ ई० में भयंकर बाढ़ आयी तथा सारे राज्य में अकाल छा गया। किन्तु हर्ष के उत्पीड़न तब भी बन्द नहीं हुए और डामरों (जमींदारों) के ऊपर उसका अत्याचार बन्द नहीं हुआ। परिणामतः, असन्तोष और विरोध की आग सुलगने लगी और डामरों ने उच्छल नामक राजपरिवार के ही एक सदस्य के नेतृत्त्व में विद्रोह कर दिया। उच्छल ने गद्दी पर अपना दावा उपस्थित किया किन्तु युद्ध में उसकी हार हुई। तथापि सुस्सल नामक अपने ही एक दूसरे भाई के विद्रोह का लाभ उठाकर उसने पुनः अपनी सेनाओं और समर्थकों को इकट्ठा किया और हर्ष की सेनाओं को परास्त किया। हिरण्यपुर (आधुनिक रण्यिल) में ब्राह्मणों ने उसका अभिषेक भी कर दिया। हर्ष के राजदरबार में आतंक और अविश्वास का वातावरण बढ़ता गया। श्रीनगर पर सुस्सल और उच्छल क्रमशः दक्षिण और उत्तर की ओर से चढ़ गये। हर्ष का राजमहल जला डाला गया और पहले तो हर्ष अपना प्राण बचाने के लिये भागा किन्तु अन्त में वीरतापूर्वक लड़ता हुआ मारा गया।

15.7 द्वितीय लोहर वंश

उच्छल (1001–1099 ई०)

उच्छल को हर्ष की राजगद्दी छीन लेने में सफलता तो मिली, लेकिन उसे डामर सरदारों और अपने महत्त्वाकांक्षी भाई सुस्सल से बराबर खतरा बना रहा। अतः सुस्सलको उसने लोहर की सामन्ती देकर प्रसन्न करने का प्रयत्न किया। लेकिन डामर सरदारों के भय से मुक्त होने के लिए उसे षडयन्त्र का सहारा लेना पड़ा। तथापि वह प्रजापालक था और साधारण जनता को खुश करने के लिए उसने कायस्थों (राजकार्य में लगे हुए स्वार्थी और टेढ़े–मेढ़े रास्तों वाले अधिकारियों) को दण्डित किया। सुस्सल आदि गद्दी के अनेक दावेदारों को उसने युद्ध में हराया, किन्तु कश्मीर के षडयन्त्री वातावरण में विद्रोहियों की कमी नहीं थी। परिणामतः, 1111 ई० के एक षडयन्त्र में वह मारा गया और लगभग एक वर्ष की अव्यवस्था के बाद सुस्सल राजा हुआ। इस बीच में दो अन्य राजे

गद्दी पर बिठाए और उतारे जा चुके थे।

सुस्सल (1112-1120 ई० तथा 1121–1128 ई०)

सुस्सल का स्वभाव कई बातों में अपने भाई उच्छल से मिलता जुलता था। किन्तु उसे भी विरोधियों से सदा भय बना रहा। अविश्वास के वातावरण में उसका आन्तरिक प्रशासन अनेक कठिनाइयों से भरा था, जिनके मूल में डामरों का विद्रोही स्वरूप था। उन्हें वह पूर्णतया दबाने में कभी सफल नहीं हुआ। हर्ष के पौत्र भिक्षाचर के नेतृत्त्व में विद्रोहियों ने उसे श्रीनगर छोड़कर लोहर भाग जाने को विवश कर दिया और डामरों एवं राजदरबारियों की सहायता से भिक्षाचर श्रीनगर में 1121 ई० में राज्याभिषिक्त कर दिया गया। किन्तु वह भी अयोग्य निकला और कुछ महीनों के भीतर ही सारे राज्य में आपसी झगड़ों और अव्यवस्था का माहौल छा गया, जिसे भिक्षाचर दूर नहीं कर सका। सुस्सल इस मौके का लाभ उठाकर छह मास के भीतर ही अपनी राजगद्दी प्राप्त करने में पुनः सफल हो गया। आगे चलकर भिक्षाचर ने कई युद्धों में सुस्सल की सेनाओं को दबाया किन्तु उसे कोई उल्लेखनीय सफलता नहीं मिली। तथापि राजधानी श्रीनगर को विद्रोहियों ने कई बार घेरा, जिसके फलस्वरूप वहाँ 1129 ई० में अकाल पड़ गया। सुस्सल ने घबड़ाकर पहले तो राजगद्दी त्याग देने की सोची किन्तु अन्ततः उस विचार से विरत होकर भिक्षाचर की हत्या के लिए षडयन्त्र रचा। किन्तु उत्पल नामक मुख्य षडयन्त्रकारी के फूट जाने से वह स्वयं 1928 ई० में मारा गया। तथापि भिक्षाचर गद्दी प्राप्त करने में सफल नहीं हुआ। सुस्सल के जेठे लड़के जयसिंह ने उसके कुछ विश्वासपात्र सेनाध्यक्षों और अफसरों की सहायता से पहले ही श्रीनगर पहुँचकर राजगद्दी पर अधिकार जमा लिया।

जयसिंह (1128–1154 ई०)

जयसिंह कल्हणकृत राजतरंगिणी के विवरण का अन्तिम शासक है। उसी के समय (1148–49 ई०) में वह अमर कृति पूरी की गयी। घटनाओं की आत्मिक जानकारी होने के कारण कल्हण ने जयसिंह के शासन सम्बन्धी जो विवरण दिए हैं, वे बहुत ही अधिक और विस्तृत हैं। जिस समय जयसिंह राजगद्दी पर बैठा, कश्मीर की दशा अत्यन्त शोचनीय थी। राजकोष खाली था, जनता तबाह थी और डामरों के मन बढ़े हुए थे और वे इस प्रकार आचरण कर रहे थे कि मानों वे ही राजा हो। उनके दुर्गनिवास (उपवेशन) उनकी शक्ति के गढ़ थे, जिनपर कब्जा करने के लिए सैनिक अभियानों की आवश्यकता थी। सुस्सल ने उन्हें दबाने के अनेक प्रयत्न किए थे किन्तु उसे कोई विशेष सफलता हाथ नही लगी थी। जयसिंह को स्वयं भी गद्दी उनके उपद्रवों के बीच ही मिली थी। उसने भी इन समस्याओं के लिए कूटनीति और अनैतिक षडयन्त्रों का

सहारा लिया। किन्तु अपने उद्देश्यों की प्राप्ति के लिए वह जो निश्चय करता था, उनपर दृढ़ न रह सकना उसकी एक कमजोरी थी। साथ ही राजदरबारी कृ पापात्रों का भी उसपर अनुचित और अनावश्यक प्रभाव था, जिसके वशीभूत होकर उसने अनेक गलत काम किये।

1130 ई० में भिक्षाचर राजगद्दी प्राप्त करने के प्रयत्न में जयसिंह के सैनिकों द्वारा पकड़कर मार डाला गया। लोठन नामक सुस्सल का एक विरोधी अपने भाई सल्हण के साथ कई वर्षों से लोहर के किले में बन्द कर रखा गया था। राजकीय नौकरों और अधिकारियों को मिलाकर वह वहाँ से निकल भागा और विद्रोहकर वहाँ का शासक बन बैठा। उसके हाथ लोहर के राजकोष का सारा धन भी लग गया। किन्तु थोड़े ही दिनों में जयसिंह के भाई मल्लार्जुन ने उसे अपदस्थकर लोहर पर कब्जा कर लिया। उसने भयवश जयसिंह की अधिसत्ता स्वीकार कर ली। किन्तु जयसिंह ने लोहर पर अपना प्रत्यक्ष अधिकार कर लेने तक चौन नहीं ली। इसके लिए उसे कई विद्रोहों का सामना करना पड़ा, डामरों में फूट के बीज बोने पड़े और छिपे–छिपे अपने ही कुछ विश्वासपात्र अधिकारियों की हत्या भी करनी पड़ी। इस प्रकार उसे कुछ दिनों की शान्ति प्राप्त हुई। इस बीच उसने अनेक प्राचीन मठों और मन्दिरों का जीर्णोद्धार कराया और जनता की भलाई के अनेक कार्य किये। उसने समकालीन भारतीय राज्यों से अन्तरराज्यीय सम्बन्ध भी स्थापित किये। अलंकार नामक उसके सांधिविग्रहिक और राज्यस्थानीय ने एक सभा की, जिसमें कन्नौजराज गोविन्दचन्द्र गाहडवाल का प्रतिनिधि सुहल और कोंकण के शिलाहार राजा अपरादित्य का प्रतिनिधि तेजकण्ठ शामिल हुए। इसकी चर्चा अलंकार के भाई मंख कवि ने अपने ग्रन्थ श्रीकण्ठचरित में की हैं। किन्तु उत्तर में दरदों के अपने पड़ोसी राज्य पर आक्रमण में उसे असफलता हाथ लगी। परिणामतः दरदों के राजा ने उसके विरुद्ध होने वाले कई विद्रोहों में विद्रोहियों का साथ दिया। लोटन उन विद्रोहियों में प्रमुख था। लेकिन 1144 ई० में वह कैद कर लिया गया भोज नामक एक दूसरा विद्रोही भी हारा और साथ ही उसके सहायक डामर सरदार भी चित्र–भित्र हो गये और अन्ततः भोज को आत्मसमर्पण करना पड़ा। इन समस्याओं से छुटकारा पाकर जयसिंह ने अपने शासन के अन्तिम दिन शान्तिपूर्वक बिताये। कल्हण उसकी रानी रड्डा उसके पुत्रों तथा परिवार की अनेक बातों का विवरण प्रस्तुत करता है।

15.8 सारांश

कल्हण की राजतरंगिणी में 1148–49ई. (उसके रचनाकाल) तक को जो घटनाएँ वर्णित हैं। लेकिन जोनराज ने 1459 ई० में अपना जो विवरण आगे

जोड़ा उससे ज्ञात होता है कि जयसिंह ने उस तिथि के बाद भी पाँच वर्षों तक शासन किया तथा बाद में भी लगभग २०० वर्षों तक कश्मीर में हिन्दू शासन बना रहा। लेकिन इस बीच के सभी राजे कमजोर और नगण्य हुए। लोहार वंश के आरम्भ में वहाँ यन्त्र विद्रोह राजनीतिक कमजोरी और आर्थिक अवनति का जो क्रम शुरू हुआ था, उससे कश्मीर की राजनीतिक शिथिलता बढ़ती ही गयी और अन्त में मुसलमानों ने उस पर 1339ई. में अधिकार कर लिया।

15.9 अभ्यासार्थ प्रश्न

1. कल्हण की राजतरंगिणी का वर्णन कीजिये।

   .....

   .....

2. कश्मीर के राजवंशों के विषय में विस्तार से बताइये।

   .....

   .....

3. कश्मीर के राजवंश के ऐतिहासिक स्रोतों की व्याख्या कीजिये।

   .....

   .....

15.10 संदर्भ ग्रन्थ

महाजन, वी.डी. : उत्तर भारत का राजनीतिक इतिहास

पाठक, विशुद्धानन्द : उत्तर भारत का राजनीतिक इतिहास

राय, एस.सी. : अर्ली हिस्ट्री एण्ड कल्चर ऑफ कश्मीर

स्टेन, एम.ए. : कल्हण की राजतरंगिणी, वाल्यूम–I

कपूर, एम.एल. : किंगडम ऑफ कश्मीर, श्रीनगर।

बमजाई, पी.एन.के. : ए हिस्ट्री ऑफ कश्मीर, पॉलिटिकल सोशल कल्चरल फ्राम द अर्लिएस्ट टाइम टू प्रेसेंट डे

शान्तिपुरम् (सेक्टर-एफ), फाफामऊ, प्रयागराज - 211013

"अपने भाइयों को मै सचेत करना चाहता हूँ कि मोम न बनें और आसानी से पिघल न जायें। छोटी-छोटी सी बातों के लिए ही हम अपनी भाषा को या संस्कृति को न बदलें।"

राजर्षि पुरूषोत्तमदास टंडन

उत्तर प्रदेश राजर्षि टण्डन मुक्त विश्वविद्यालय
प्रयागराज

शान्तिपुरम् (सेक्टर-एफ), फाफामऊ, प्रयागराज - 211013
www.uprtou.ac.in
टोल फ्री नम्बर- 1800-120-111-333